प्रस्तावना

आधुनिक जगत् में नागरिक स्वतन्त्रता में सभा-स्वातंत्र्य का स्थान महत्त्वपूर्ण माना जाता है। नागरिक के लिए जीवन-विकास और सफलता की दृष्टि से कुछ मौलिक अधिकार आवश्यक हैं। वह जिस समाज-व्यवस्था में जन्मा है, जिस राज्य-व्यवस्था का नागरिक है, उसमें अपनी दृष्टि से उचित परिवर्तन करने का अधिकार रखता है। उसके लिए अपने विचार और अपना अभिप्राय व्यक्त करने का अधिकार आवश्यक है। व्यक्ति ही अपना अभिप्राय व्यक्त कर सकता है। वह उसकी निजी वस्तु होती है इसलिए उसे उसको कहने का पूरा अधिकार होना चाहिए। भाषण-स्वातंत्र्य और संघ-स्वातंत्र्य का अधिकार श्वासोच्छ्वास के समान आवश्यक है। इस अधिकार के बिना नागरिकता अपूर्ण है, जीवन अपूर्ण है, राज्य अस्थिर तथा समाज गति-हीन है।

अपना मत समर्थन करना ही भाषण-स्वातंत्र्य का अधिकार है। किसी प्रकार अनेक व्यक्तियों का एकत्र होकर अपने विचार व्यक्त करना सभा करने का अधिकार है। इन्हें मौलिक अधिकार माना जाता है। जो कुछ एक व्यक्ति कर सकता है, उसे अनेक कर सकते हैं, और उन्हें ऐसा करने का अधिकार है। इसे ही संघ बनाने का अधिकार कहा जाता है। यह अधिकार भी मौलिक माना जाता है। इसे तथा अन्य अधिकारों को नागरिकों का मौलिक अधिकार तथा उनकी मौलिक स्वतन्त्रता माना जाता है। इन्हें राज्य-व्यवस्था में स्थान प्रदान किया जाता है। ये मौलिक अधिकार अथवा मौलिक स्वतन्त्रता कहीं-कहीं संविधान द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं और कहीं-कहीं संकेत द्वारा प्रतिष्ठित किये जाते हैं। कहीं-कहीं राज्य-कार्य के लिए संविधान होता है और उसमें ही इन अधिकारों को मान्यता प्रदान कर दी जाती है। जहाँ संविधान होता है वहाँ इन अधिकारों का समावेश उसी में कर दिया जाता है। कहीं-कहीं संविधान अपने-आपमें स्वतंन्त्र नहीं होता। अनेक नियमों से निश्चित किया जाता है कि राज्य-व्यवस्था किस प्रकार चलाई जाय। वहाँ नागरिक अधिकारों का उल्लेख किसी एक विधान में नहीं होता वरन् अनेक स्थानों पर होता है। इन अधिकारों को उनके नियमों द्वारा मान्य किया जाता है या उनका अस्तित्व स्वीकार करके उनकी मर्यादाएँ बना दी जाती हैं।

वाले कानूनों में कोई राजनैतिक, धार्मिक, अथवा वर्ग-सम्बन्धी भेद-भाव नहीं होगा।"[1] बेलजियम के संविधान की १९वीं धारा में बिना अनुमति के, किन्तु बिना शस्त्र एकत्रित होने का अधिकार दिया गया है। केवल खुली जगहों पर सभाएँ करने पर कुछ प्रतिबन्ध लगाये गए हैं परन्तु वे शान्ति के संरक्षण की दृष्टि से लगाये गए हैं। युगोस्लाविया के संविधान की धारा ३४ में शस्त्र-रहित एकत्र होने तथा संघशः काम करने की स्वतन्त्रता दी गई है।[2] खुली जगह में सभा करने के लिए पुलिस को सूचना-मात्र देनी पड़ती है।[3] पुलिस नागरिकों को पोलैण्ड के संविधान की धारा १०९ के अनुसार सभा-स्वातंत्र्य तथा संघ-स्वातंत्र्य प्रदान किया गया है। इस्टोनिया के संविधान की धारा १८ तो और भी अधिक व्यापक है। उसमें कहा गया है—"सब लोगों को शस्त्र-रहित व शान्ति-पूर्वक एकत्रित होने का अधिकार है। सबको संघ बनाने का अधिकार है। हड़ताल करने का अधिकार है और उस पर केवल शान्ति-रक्षण की मर्यादा है।"[4] शस्त्र-रहित व शान्ति-पूर्वक एकत्रित होने तथा संघ बनाने का अधिकार चेकोस्लोवाकिया के संविधान की धारा ११३ में इस प्रकार दिया गया है—"सब जर्मनों को सूचना दिये बगैर अथवा अनुमति प्राप्त किये बिना शस्त्र-रहित और शान्तिपूर्वक एकत्रित होने का अधिकार है। खुली जगह में सभा करने की सूचना पुलिस-अधिकारियों को दी जानी चाहिए।" यह धारा १९१९ के जर्मन-संविधान में मौजूद थी। सार्वजनिक शान्ति-भंग की प्रत्यक्ष सम्भावना न होने पर पुलिस को सभा बन्द करने का अधिकार नहीं था। १९१८ के संविधान की धारा १५ के अनुसार सोवियत रूस में इसी प्रकार की व्यवस्था थी—"पूर्ण सभा-स्वातंत्र्य हो, इसलिए यह संघ गण-तन्त्र अपने नागरिकों का स्वतन्त्रता पूर्वक सभाएँ करने और जुलूस आदि निकालने का अधिकार मान्य करता है। और ऐसी सब सार्वजनिक इमारतें और उनकी दिया-बत्ती तथा

---

[1] The right to assemble peaceably and without arms, and to form associations is guaranteed for purposes not opposed to public morality. The laws regulating the manner in which these rights are to be exercised shall contain no political, religious or classical distinctions.

[2] To assemble in meetings and to take collective action.

[3] Open air meetings to be notified to police authorities.

[4] Right to strike is assured.

भंग करना अपराध होगा। भंग करने वाले के विरुद्ध दावा किया जा सकेगा। दूसरी ओर यदि अधिकार न हो तो सभा भंग करने वाले के विरुद्ध दावा नहीं किया जा सकता। क्योंकि वह अपराधी नहीं माना जा सकेगा। उपद्रव अथवा ऊधम करने के लिए सभा भंग करने वाले के विरुद्ध मुकदमा चल सकेगा। अधिकार होने पर उसका उपभोग करते समय राज-सत्ता को आवश्यक व्यवस्था और संरक्षण करना पड़ता है। अधिकार न होने पर सार्वजनिक शान्ति-रक्षा के अलावा सरकार का कोई कर्तव्य नहीं होता। संविधान द्वारा मान्य अधिकार और संकेत द्वारा--परम्परा द्वारा--मान्य किये हुए अधिकार में महत्त्वपूर्ण अन्तर होता है। नियम-सिद्ध अधिकारों के ऊपर यदि कोई आक्रमणकारी अपने काम का औचित्य स्थापित करने के लिए बाध्य होता है तो ऐसे आक्रमणों के विरुद्ध कानूनी उपाय नहीं होता। यदि न्यायालय यह निर्णय भी दे दे कि प्रतिबन्ध अनुचित था, तो भी कानून द्वारा प्राप्त अधिकारों का अतिक्रमण न होने के कारण पुलिस के विरुद्ध कुछ नहीं किया जा सकता। नियमानुसार अधिकार होने पर आवश्यक व्यवस्था करनी पड़ती है। सभा करने का कानूनी हक हो तो उसके लिए स्थान की व्यवस्था करना सरकार का कर्तव्य होता है। उस स्थिति में सार्वजनिक स्थान पर सभा करना भी एक अधिकार हो जाता है। जहां अधिकार मान्य नहीं होता वहां सार्वजनिक स्थान पर सभा करने का अधिकार भी उत्पन्न नहीं होता। यद्यपि अनेक वर्षों से शनिवार वाडे (पूना) के सामने के मैदान पर सभाएं होती आ रही हैं, फिर भी उसे कानूनी अधिकार नहीं माना जा सकता। स्थानिक स्वराज्य संस्थाएं या अधिकारी, सार्वजनिक स्थानों पर होने वाली सभाओं पर जब चाहे प्रतिबन्ध लगा सकते हैं। वैसी स्थिति में सार्वजनिक स्थानों का उपयोग सभाओं के लिए अधिकारपूर्वक नहीं किया जा सकता।

उपर्युक्त विवेचना से व्यक्त है कि नागरिक अधिकारों को संविधान अथवा कानूनों में स्पष्ट रूप से मान्यता प्राप्त होना आवश्यक है। स्वयं इंग्लैंड में भी इसे महसूस किया जा चुका है, जिसका प्रमाण १६०८ के सार्वजनिक सभा अधिनियम में प्राप्त है।[1] इस अधिनियम के अनुसार संसद् का चुनाव घोषित होने के समय से पूरा होने तक की अवधि में चुनाव के लिए की गई सभा में किसी का अनुशासन-हीन व्यवहार करना, या सभा का काम बन्द करने का प्रयत्न करना[2] अथवा उसे भंग कर देना केवल अनुशासन-हीनता

[1] The Public Meetings Act 1908.

[2] Behaving in disorderly manner and not promoting the transaction of business.

या उपद्रव का काम नहीं, बल्कि सभा भंग करने का एक स्वतन्त्र अपराध माना जाता है। उसे गैर कानूनी तथा रिश्वत आदि से दूषित कार्य का अपराधी ठहराया जाता है।[1] इसका अर्थ यह है कि केवल चुनाव की धूम-धाम के काल में ही सभा करने का अधिकार होता है। यदि यह व्यवस्था सच्चा लोकमत जानने के लिए हो तो इसका सर्वत्र और सब कामों में होना आवश्यक है। नागरिक को अपना मत व्यक्त करने का अधिकार होना ही चाहिए और उसे संविधान अथवा कानून द्वारा मान्य किया जाना चाहिए।

एकत्रित होने का—सभा करने का, विचार व्यक्त करने का अधिकार, संविधान द्वारा मान्य किया गया हो, अथवा संकेत द्वारा या परंपरा से सिद्ध हो। आज के संसार में महत्त्व का और मौलिक अधिकार माना जाता है। विचार-प्रसार का, वह एक प्रभावशाली साधन है। व्यक्ति के विकास तथा समाज की उन्नति के लिए वह परम आवश्यक है। व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को व्यापक बनाने और उसे व्यापक क्षेत्र प्रदान करने के लिए संघ-प्रवृत्त होता है। स्वागत भाषण करने तथा सभा में बोलने, दोनों के आनन्द में अन्तर है। सभा में, संघ में मनुष्य की विधायक शक्ति को, उसके कर्तृत्व को आह्वान मिलता है, चन्द्रकांतमणि को पिघलाने के लिए चन्द्र की आवश्यकता है। और वक्ता के कौशल को अभिव्यक्ति के लिए श्रोताओं की आवश्यकता है। "श्रोता के बिना वक्ता वक्ता ही नहीं है।" इस दृष्टि से सभा का महत्त्व देखने पर समाज में सभा-सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान होना श्रेयस्कर है। नट, नाटक, तथा नाट्य-गृह सब का अच्छा समन्वय हो और सब व्यवस्था उत्तम हो तो, श्रोताओं का आनन्द भी उत्तम कोटि का होता है। वे क्षण उन्हें अमूल्य प्रतीत होते हैं। उनके मानस उन्नत होते हैं। दक्ष सभापति, चतुर वक्ता, अनुशासन में चलने वाली सभा देखकर श्रोताओं को एक विशिष्ट आनन्द मिलता है। उनके मन उन्नत वातावरण का अनुभव करते हैं। प्रत्येक की इच्छा यही होनी चाहिए कि सभा आदर्श हो और यदि सभा को सफल करना हो तो सभापति, सभासद्, सभा-संचालक, सभी को अपना-अपना उत्तरदायित्व समझकर सहयोग से व्यवहार करना चाहिए। इस पुस्तक का उद्देश्य इस कार्य के लिए उपयुक्त ज्ञान तथा विवेचन प्रस्तुत करना है।

---

[1] Breaking a meeting is an offence and comes under the illegal and corrupt practices act.

विषय-सूची

सभा-शास्त्र

१

विषय-प्रवेश

ग्राधुनिक संसार में नागरिक स्वत्वों या स्वतंत्रताओं में सभा-स्वातंत्र्य महत्त्व-
ाना गया है। नागरिकों को उनके जीवन के विकास और उसकी सफलता
: कुछ मौलिक स्वत्व या अधिकार अवश्य प्राप्त होने चाहिएँ। कोई व्यक्ति
समाज में पैदा हुआ हो और जिस राज्य का नागरिक हो उस समाज और
ाज्य की व्यवस्था में अपने विचार से अभीष्ट परिवर्तन कराने का उसे
विक अधिकार है। यह आवश्यक है कि उसे अपना मन्तव्य या अभिप्राय
करने का अधिकार हो। किसी मनुष्य का अभिप्राय वही मनुष्य बता सकता
ोंकि वह उसका व्यक्तिगत विषय होता है। इसीलिए उसे वह बताने का
प्रधिकार होना चाहिए। भाषण-स्वातंत्र्य और संघ-स्वातंत्र्य उतना ही
्यक है जितना साँस लेना आवश्यक है। इन स्वतन्त्रताओं या स्वत्वों के
नागरिकता अपूर्ण रहती है, जीवन अधूरा रह जाता है, राज्य अस्थिर हो
है एवं समाज गतिहीन हो जाता है।

अपना मत उपस्थित करने और बताने का अधिकार ही भाषण-स्वतंत्रता है।
प्रकार अनेक व्यक्तियों के एकत्र होकर अपना मन्तव्य प्रकट करने का अधि-
ही सभा-स्वातंत्र्य है। ये दोनों मौलिक अधिकार माने जाते हैं। जो कार्य
व्यक्ति कर सकता है, वही कार्य अनेक व्यक्तियों को करने का अधिकार ही
वातंत्र्य है। यह भी मौलिक अधिकार समझा जाता है। तीनों अन्य
कार नागरिकों के मौलिक स्वत्व या स्वातंत्र्य माने जाते हैं और इन्हें
की व्यवस्था में स्थान दिया हुआ होता है। ये मौलिक स्वत्व किसी-
देश में शासन-विधान में उल्लिखित होते हैं। और किसी-किसी देश
केत या निष्कर्ष के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। कुछ देशों में शासन-
न होता है और उसी में इन मौलिक स्वत्वों की स्वीकृति होती है। अर्थात्
देशों में शासन-विधान होता है उनमें उस विधान में ही मौलिक स्वत्वों का
ाश किया जाता है। कुछ देशों में शासन-विधान पृथक् नहीं होता। उनमें
क कानूनों से यह निश्चित किया जाता है कि उनकी शासन-व्यवस्था कैसी होगी

चाहिए और वह किस प्रकार चलाई जानी चाहिए। ऐसे देशों में नागरिकों के मौलिक स्वत्वों का उल्लेख या व्यवस्था एक ही कानून में नहीं, बल्कि अनेक कानूनों मे रहती है। वहाँ अनेक कानूनों द्वारा ये स्वत्व स्वीकार किये जाते हैं या उनका अस्तित्व स्वीकार करके उनकी सीमाएँ बताई जाती हैं। मोटे तौर पर, जिन देशों में शासन-व्यवस्था लिखित होती है, अर्थात् शासन-विधान होता है, वहीं उस विधान मे नागरिकों के मौलिक स्वत्वो का स्पष्ट उल्लेख एवं समावेश होता है। इस उल्लेख या समावेश से इन स्वत्वों को निश्चितता और स्थिरता प्राप्त होती है। तात्कालिक सरकार उनमें जब चाहे या जैसा चाहे परिवर्तन नहीं कर सकती। जिन देशों में शासन-व्यवस्था लिखित होती है उनमें कानूनों में दो भेद किये जाते हैं, जिनमे एक भेद शासन-व्यवस्था-सम्बन्धी कानूनों का और दूसरा अन्य कानूनों का होता है। जिन कानूनों से शासन-व्यवस्था मे कोई परिवर्तन होता है वे शासन-व्यवस्था-सम्बन्धी कानून हैं और अन्य कानून साधारण कानून समझे जाते हैं। व्यवस्थापक-मण्डल मे शासन-व्यवस्था-सम्बन्धी कानूनों के पास या स्वीकृत होने की प्रणाली और होती है तथा साधारण कानूनों के पास होने की प्रणाली और होती है। शासन-व्यवस्था-सम्बन्धी कानूनों के पास होने की प्रणाली कठिन होती है।

शासन-विधान में नागरिक स्वत्वों का स्थान होना कई दृष्टियों से अभीष्ट है। इससे नागरिकों को निश्चित रूप से मालूम होता है कि उन्हें कौन से अधिकार प्राप्त हैं, यदि उन पर आक्रमण किया जाय तो वह दिखाई देता है और उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई करने या उनमें परिवर्तन करने की ओर तात्कालिक सरकार की प्रवृत्ति स्वभावतः नहीं होती। अमरीकन संयुक्त राष्ट्र के शासन-विधान में सभा-स्वातन्त्र्य के सम्बन्ध में निम्न लिखित संरक्षण है—"कांग्रेस ऐसा कोई कानून नहीं बना सकती जिससे शान्तिपूर्वक एकत्र होने का और शिकायतें दूर करने के लिए सरकार से अनुरोध करने का जनता का अधिकार कम हो।" The Congress shall make no law abridging the right of the people peaceably to assemble and to petition the Government for a redress of the Grievances.) नार्वे के शासन-विधान की धारा १०० के अनुसार—"प्रत्येक नागरिक को राज्य के शासन के सम्बन्ध में तथा अन्य विषयों के सम्बन्ध में अपना मन स्पष्टतः प्रकट करने की स्वतन्त्रता है।" (Every person shall be at liberty to speak his mind frankly on the administration of the state and on any other subject) रूसी शासन-विधान की धारा ९९ के अनुसार

"जब तक कोई सभा सार्वजनिक शान्ति-भंग न करे और उपद्रव कानून के अनुसार तीन बार घोषणा की जाने पर तुरंत विसर्जित न हो जाय तब तक सेना को उसे तितर-बितर करने का आदेश नहीं दिया जा सकता।" (Unless assembly should disturb public peace and not immediately disperse after the riot act is read three times, no military force shall be ordered to disperse it.) आयरिश स्वतन्त्र राज्य के शासन-विधान की नौवीं धारा के अनुसार—"जो उद्देश्य सार्वजनिक नीति के विरुद्ध न हों उनके लिए शान्ति पूर्वक तथा निःशस्त्र एकत्र होने और संघ-स्थापन करने का अधिकार स्वीकृत और सुरक्षित है। इन अधिकारों के ढंग का नियमन करने वाले कनूनों में किसी प्रकार के राजनीतिक, धार्मिक या वर्गगत भेद-भाव न होंगे।" (The right to assemble peaceably and without arms and to form association is guaranteed for purposes not opposed to public morality the laws regulating the manner in which these night are to be exercised shall contain no political, religious or class distictions.) बेलजियम के शासन-विधान की धारा १६ के अनुसार वहाँ के नागरिकों को अनुमति लिये बिना निःशस्त्र एकत्र होने का अधिकार प्राप्त है। खुली जगह में सभा करने पर वहाँ कुछ प्रतिबन्ध लगाये गए हैं, पर इनका लक्ष्य शान्ति-रक्षा ही है। युगोस्लाविया के शासन-विधान की १४ वीं धारा में वहाँ के नागरिकों का निःशस्त्र जमा होने और संघ या समूह के रूप में कोई कार्य करने का अधिकार स्वीकार किया गया है। (To assemble in meeting and to take collective action) जब सभा खुली जगह में करनी होती है तब पुलिस-अधिकारियों को पहले से ही उसकी सूचना-मात्र भेज देनी पड़ती है। (Open air meeting to be notified to Police outhorities) बस, इसके सिवा इस अधिकार पर और कोई प्रतिबन्ध नहीं है। पोलैंड के नागरिकों को उस देश के शासन-विधान की धारा १०६ से सभा-स्वतन्त्रता संघ-स्वतन्त्रता दी गई है। एस्टोनिया के शासन-विधान की धारा १८ तो और भी व्यापक है। उसके अनुसार, "वहाँ के सब नागरिकों को निःशस्त्र और शान्तिपूर्वक जमा होने का अधिकार है, संघ बनाने का अधिकार है और हड़ताल करने का अधिकार है (Right to strike is assured) और केवल शान्ति-रक्षा उनकी शर्त है।" निःशस्त्र और शान्तिपूर्वक एकत्र होने और संघ बनाने का अधिकार जैकोस्लोवाकिया के शासन-विधान की धारा ११३ में लिखित है। जर्मन

राष्ट्र के सन् १९१०के शासन-विधान में इस आशय की धारा थी कि सूचना दिये बिना निःशस्त्र और शान्तिपर्वक एकत्र होने का अधिकार सब जर्मनों को है और केवल खुली जगह मे होने वाली सभा की पूर्व सूचना पुलिस-अधिकारियों को दी जानी चाहिए। उस शासन-विधान के अनुसार पुलिस को सार्वजनिक शान्ति-भंग होने की प्रत्यक्ष सम्भावना न होने की दशा मे सभा बन्द करने का अधिकार नहीं था। रूस के सन् १९१८के शासन-विधान की धारा १५ से उस देश में इसी प्रकार की व्यवस्था की गई थी। उसमे लिखा हुआ है—"सम्पूर्ण सभा-स्वातंत्र्य को सुरक्षित रखने के लिए, यह प्रजातन्त्र राज्य अपने नागरिकों का, स्वतन्त्रता-पूर्वक सभा करने, जुलूस निकालने आदि का अधिकार स्वीकार करता है और वे सब सार्वजनिक इमारतें, उनके मेज, कुरसी आदि सामान, उनके रोशनी के इन्तजाम और जाडे मे उन्हें गरम करने के प्रबन्ध के साथ, अपने मजदूरों और किसानों के अधिकार मे रखता है जो सार्वजनिक सभाओं के लिए सुविधाजनक हो।" (To ensure complete freedom of meeting, the Republic recognises the right of its citizens freely to organise meetings processions and so on, and places at the disposal of its workers and peasants all premises convenient for public gatherings together with lightings, heatings and furniture) रूस के सन् १९३६ के शासन-विधान में भी "मुद्रण-स्वतन्त्रता और सभा-स्वतन्त्रता" (Free press and assemblage) जारी रखी गई है। डेनमार्क के शासन-विधान की धारा ८६ के अनुसार "नागरिकों को निःशस्त्र एकत्र होने का अधिकार है; सार्वजनिक सभा मे पुलिस उपस्थित रह सकती है; और खुली जगह की सभा के कारण सार्वजनिक शान्ति के लिए खतरा पैदा हो तो वह बन्द की जा सकती है।"

ऊपर के अनुच्छेदों मे इस बात का दिग्दर्शन कराया गया है कि भिन्न-भिन्न देशों के शासन-विधानों मे सभा-स्वातंत्र्य और संघ-स्वातन्त्र्य के सम्बन्ध मे क्या-क्या व्यवस्था है। उपर्युक्त सब देशों की शासन-व्यवस्था लिखित है। लिखित शासन व्यवस्थाओं में तथा शासन-विधानों मे नागरिकों के मौलिक अधिकारों का स्पष्ट उल्लेख रहता है। इसके विपरीत, जिन देशों मे शासन-विधान नहीं होता उनमें इन अधिकारों का उल्लेख नहीं रहता। इंगलैंड की शासन-व्यवस्था लिखित नहीं है। वहाँ किसी एक कानून से नागरिकों को उनके मौलिक स्वत्व प्रदान किये गए हैं। इंगलैंड के नेतृत्व में जिन देशों की शासन-व्यवस्था बनी है उनमें भी यही स्थिति है। कनाडा, दक्षिण अफ्रीका और आस्ट्रेलिया में

जिस कानून के अनुसार शासन किया जाता है उसमें नागरिक स्वत्वों का समावेश नहीं है। भारतवर्ष का शासन सन् १९३५ के कानून के अनुसार होता है। इस कानून में भी नागरिक स्वत्वों का समावेश नहीं है। पर ऐसे अनेक कानून हैं जिनमें कुछ अधिकारों का अस्तित्व मानकर उनकी सीमाएँ बनाई गई हैं। इन सब देशों में से किसी देश के कानूनों में इस बात का उल्लेख नहीं मिलेगा कि नागरिकों को सभा करने का और संघ-स्थापना का अधिकार है। इसके विपरीत, इन देशों के कानूनों में यह लिखा हुआ मिलता है कि यदि सभा के स्थान पर उपद्रव होने की सम्भावना प्रतीत हो तो पुलिस को उसे बन्द कर देना चाहिए। उनमें यह भी बताया हुआ दिखाई देता है कि यदि वैध कार्य के लिए संघ स्थापित किये जायँ तो उनकी व्यवस्था कैसी होनी चाहिए। उनमें नियमन और नियन्त्रण की इस प्रकार की और भी बातें मिलती हैं। शासन-विधान में अधिकार का स्वीकृत होना अभीष्ट होता है। यदि इस प्रकार स्वीकृत किये गए अधिकार पर आक्रमण किया जाय तो उनके लिए कानूनी उपाय होता है। यदि सभा करने का अधिकार हो, यानी शासन-विधान में लिखा हुआ हो और फिर कोई व्यक्ति सभा को भंग करे तो सभा-भंग करना उसका अपराध होगा और उस पर हरजाने का दावा किया जा सकेगा। पर यदि सभा करने का अधिकार ही न हो और व्यक्ति सभा को भंग करे तो उस पर सभा को भंग करने के अभियोग में मुकदमा दायर न किया जा सकेगा, क्योंकि सभा-भंग करना उसका अपराध ही न होगा। यदि सभा को भंग करने वाला उपद्रव करे तो अवश्य ही उसके खिलाफ कार्रवाई की जा सकेगी। यदि कोई अधिकार लिखा हुआ हो तो जनता द्वारा उसका उपयोग करते समय सरकार को आवश्यक संरक्षण और प्रबन्ध करना पड़ता है। यदि अधिकार लिखा हुआ न हो तो सरकार का कर्तव्य सार्वजनिक शान्ति की रक्षा करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। शासन-विधान में स्वीकृत अधिकार और संकेत द्वारा स्वीकृत परम्परागत अधिकार—दोनों में महत्त्वपूर्ण अन्तर है। वैध अधिकार पर आक्रमण करना हो या उसे सीमित करना हो तो यह सिद्ध करना पड़ता है कि ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है कि जिससे उस अधिकार पर आक्रमण करना या उसे सीमित करना आवश्यक है। यदि वैध अधिकार पर अनावश्यक या अनुचित आक्रमण किया जाय तो उसके निवारण का कानूनी उपाय होता है। इस देश में यदि पुलिस, सभा करने की मनाही कर दे तो उसके निवारण का कोई कानूनी उपाय नहीं है। यदि अदालत भी यह फैसला दे दे कि मनाही अनुचित थी तो भी उसके खिलाफ कोई कार्रवाई न की जा सकेगी, क्योंकि उस मनाही

से किसी वैध अधिकार का अपहरण न होगा। अधिकार वैध या लिखित होने पर उसके उपयोग के लिए आवश्यक प्रबन्ध का होना या किया जाना भी आवश्यक होता है। सभा करने का लिखित अधिकार हो तो सभा के लिए स्थान देना सरकार का कर्तव्य हो जाता है और सार्वजनिक स्थानों में सभा करने का भी अधिकार उत्पन्न हो जाता है। पर यदि सभा करने का अधिकार ही लिखित न हो तो सार्वजनिक स्थानों में सभा करने का अधिकार भी उत्पन्न नहीं होता। पूना के शनिवार वाड़े के सामने के मैदान में कई वर्षों से सभाएँ होती आई हैं, फिर भी वहाँ सभा करने का अधिकार उत्पन्न नहीं होता। स्थानीय स्वशासन-संस्था या सरकारी अधिकारी सार्वजनिक स्थान में सभा करने की मनाही चाहे जब कर सकते हैं। ऐसी अवस्था में सभा करने के लिए अधिकारपूर्वक सार्वजनिक स्थान का उपयोग नहीं किया जा सकता।

ऊपर जो विवेचन किया गया है उससे यह प्रकट होता है कि शासन-विधान में या कानून में नागरिकों के अधिकारों की स्पष्ट स्वीकृति होना अभीष्ट है। इंगलैंड में भी इस बात के होने का प्रमाण सन् १९०८ के सार्वजनिक सभा-कानून में दिखाई देता है। इस कानून में ऐसी व्यवस्था है कि पार्लमेंट के चुनाव की घोषणा और समाप्ति के बीच की अवधि में, यदि कोई व्यक्ति चुनाव-सम्बन्धी सभा का कार्य रोककर (Breaking in a disorderly manner and preventing the transaction of business) उसे भंग करने का प्रयत्न करे या भंग कर दे, तो उसका वह कार्य अव्यवस्थित कार्य या उपद्रव का कार्य ही नहीं होता, उसका सभा भंग करने का कार्य एक अलग अपराध होता है और उस कार्य की गिनती चुनाव के गैर कानूनी और दूषित कार्यों में की जाती है। (Breaking a meeting is an offence and comes under the Illegal and Corrupt Practices, Act.) इसका अर्थ यह है कि केवल चुनाव की सरगरमी के समय नागरिकों को सभा करने का अधिकार है। यदि इस व्यवस्था का उद्देश्य [illegible] करना है तो यह व्यवस्था सब जगह और सब समय होनी चाहिए। नागरिकों को अपना मत या अपना अभिप्राय प्रकट करने का अधिकार [illegible] और वह शासन-विधान या कानून के द्वारा स्वीकृत होना चाहिए।

[illegible] सभा करने और विचार प्रकट करने का अधिकार, शासन-[illegible] या परम्परा से स्थापित हुआ हो, आधुनिक [illegible] जाता है। यह विचार-प्रचार का [illegible] विकास और समाज की प्रगति के लिए

अत्यन्त आवश्यक है। व्यक्ति संघ की ओर इसलिए प्रवृत्त होता है कि उसका व्यक्तित्व व्यापक हो या उसे विस्तृत क्षेत्र प्राप्त हो। स्वगत-भाषण कर देने के आनन्द और सभा में भाषण करने के आनन्द में अन्तर है। सभा या संघ में मनुष्य की रचनात्मक शक्ति का, उसकी योग्यता का आवाहन होता है—उन्हें बुलावा या निमंत्रण मिलता है। चन्द्रकान्त मणि को पिघलने के लिए चाँद की आवश्यकता होती है और वक्ता को अपना कौशल प्रकट करने के लिए श्रोतृ-वृन्द की आवश्यकता होती है। यदि इस बात का विचार किया जाय कि इस दृष्टि से सभा का महत्त्व कितना है,तो यह अभीष्ट प्रतीत होता है कि समाज में सभा के सम्बन्ध में सम्यक् ज्ञान हो। जब नट, नाटक और नाटक-गृह सभी अच्छे होते हैं और सारा प्रबन्ध उत्तम होता है तब दर्शकों को उच्च कोटि का आनन्द प्राप्त होता है, उनके मन समुन्नत होते हैं और वे उस समय को अमूल्य समझते हैं जो वे नाटक देखने में व्यतीत करते हैं। श्रोताओं को भी दक्ष सभापति, चतुर वक्ता और नियम वा अनुशासन से चलती हुई सभा को देखकर विशेष प्रसन्नता होती है। वे उन्हें देखकर उन्नत वातावरण का अनुभव करते हैं। सबकी यही इच्छा होनी चाहिए कि जो भी सभा हो आदर्श सभा हो। सभा को सफल बनाने के लिए सभापति, सदस्यों और संयोजकों को अपना-अपना उत्तरदायित्व समझकर सहकारिता से काम करना चाहिए। इस कार्य के लिए उपयुक्त विवेचन करना इस पुस्तक का उद्देश्य है।

२

सार्वजनिक सभातन्त्र

सभा—सभा वह जन-समूह है जो निश्चित विषय का विचार करने के लिए एकत्र हुआ हो और नियम के अनुसार कार्य करता हो। लोगों को एकत्र होने का अधिकार होने से ही उनका समूह सभा नहीं कहा जा सकता। बाजार में लोग इकट्ठे होते हैं, पर उनका समूह सभा नहीं होता। मदारी का तमाशा देखने के लिए बहुत से लोग जमा हो जाते हैं पर उनका जमाव भी सभा नहीं होता। नाटक या सिनेमा देखने के लिए लोग एकत्र होते हैं, पर उनका समूह भी सभा नहीं होता। जब कोई पादरी या प्रचारक किसी नाके पर खड़ा होकर भाषण करने लगता है तो उसे सुनने के लिए बहुत से लोग जमा हो जाते हैं, पर उनका जमाव भी सभा कहलाने का अधिकारी नहीं होता। यदि किसी जन-समूह का नियामक या अध्यक्ष न हो तो वह सभा नहीं है। सभा वही जन-समूह है जिसका विचारणीय विषय निश्चित हो, जिसका नियामक हो और जो नियमों के अनुसार कार्य करता हो। इस परिभाषा के अनुसार, वह जन-समूह सभा नहीं कहला सकता जो कथा या कीर्तन सुनने के लिए एकत्र हुआ हो। इसी प्रकार यदि कभी मस्जिद में इकट्ठे हुए लोगों के सामने भाषण किये जायें तो उनका समूह भी सभा नहीं कहा जा सकता।

सार्वजनिक सभा—सार्वजनिक सभा वह सभा है जो सार्वजनिक विषय पर विचार करने के लिए खुले निमन्त्रण के द्वारा बुलाई गई हो या एकत्र हुई हो और जिसमें भाग लेने का अधिकार सभी उपस्थित व्यक्तियों को हो।

किसी संस्था की सभा में उपस्थित होने का अधिकार उसके सदस्यों को ही होता है। यदि किसी संस्था की ओर से सार्वजनिक विषय का विचार करने के लिए सार्वजनिक सभा की गई हो, तो उसमें भाग लेने का अधिकार उस संस्था के सदस्यों के सिवा [illegible] लोगों को भी होता है।

[illegible] निश्चित विचार के लोगों की सभा होने से ही [illegible] सार्वजनिक सभा [illegible] होती है। यदि किसी सभा [illegible] उसमें ये ही लोग उपस्थित हों

जो अमुक सज्जन को मान-पत्र अर्पित करने के पक्ष में हों तथा वह सभा उन्हीं लोगों की सभा है, तो भी वह सार्वजनिक सभा ही होती है। शहर में यदि जगह-जगह इस आशय के विज्ञापन बँटवा दिये गए हों कि ग्रह-कर की वृद्धि पर विचार करने के लिए मकान-मालिकों की विराट सभा होगी, तो भी वह सार्वजनिक सभा ही कही जायगी। पर यदि मकान-मालिकों की संगठित संस्था हो और उसकी सभा में उसके सदस्य ही उपस्थित हो सकते हों तो वह सभा निजी सभा कही जायगी। जिस सभा में उपस्थित होने का अधिकार सबको न होकर किसी संस्था के सदस्यों को ही होता है वह सार्वजनिक सभा नहीं हो सकती। उसमें दर्शकों के रूप में बहुत से लोग उपस्थित हों तो भी वह सार्वजनिक सभा नहीं कही जा सकती। जिस सभा मे सभी उपस्थित व्यक्तियों को भाग लेने का अधिकार न हो वह सार्वजनिक सभा नहीं है। किसी संस्था की सभा में जो प्रस्ताव पास होते हैं वे उस संस्था के निश्चय माने जाते हैं। उस संस्था का रूप सार्वजनिक हो, तो भी वे उस संस्था के सदस्यों के ही निश्चय माने जाने चाहिएं। यदि किसी संस्था की सभा का विचारणीय विषय सार्वजनिक हो, वह किसी सार्वजनिक स्थान पर हुई हो और उसमे दर्शकों के रूप में सम्मिलित होने की स्वतन्त्रता सबको हो, तो भी वह सभा सार्वजनिक सभा नहीं हो सकती, क्योंकि उसमें भाग लेने,अर्थात् भाषण करने और मत देने का अधिकार सीमित होता है, यानी वह उस संस्था के सदस्यों को ही होता है। यह आवश्यक नहीं है कि यदि कोई सभा प्रकट रूप में हो तो वह सार्वजनिक ही हो। सम्भव है कि किसी संस्था की सभा उसके सदस्यों की ही सभा होते हुए भी प्रकट रूप से हो। जिस सभा में भाग लेने का अधिकार किसी संस्था के सदस्यों को ही होता है उसमें दर्शकों के रूप में सम्मिलित होने की स्वतन्त्रता, उस संस्था के सदस्य न होने वाले लोगों को भी दी जा सकती है। प्रगट रूप से होने वाली सभा का अर्थ वह सभा है जो गुप्त रूप से नहीं होती। ऐसी सभा का कार्य खुले तौर पर होता है। यदि किसी संस्था की सभा प्रकट रूप से हो तो भी वह निजी सभा ही मानी जानी चाहिए क्योंकि वह उस संस्था के सदस्यों की ही सभा होती है, अर्थात् उसमें भाग लेने का अधिकार उस संस्था के सदस्यों को ही होता है। वह सभा सार्वजनिक सभा नहीं हो सकती। यह भी आवश्यक नहीं है कि वह प्रकट रूप से हो। इसके विपरीत सार्वजनिक सभा प्रकट रूप से ही होनी चाहिए। वह गुप्त रूप से हो ही नहीं सकती। सार्वजनिक सभा निजी स्थान पर होने से निजी सभा नहीं होती और किसी संस्था की सभा प्रकट रूप से होने के कारण सार्वजनिक सभा नहीं होती। उसी सभा को सार्वजनिक सभा कहना उचित है

जिसका विचारणीय विषय सार्वजनिक हो, जिसमें सम्मिलित होने का निमन्त्रण कुछ व्यक्तियों को ही नहीं बल्कि सबको दिया गया हो। जिसमें भाषण करने और मत देने का अधिकार सभी उपस्थित लोगों को हो। ऊपर सभा के सार्वजनिक स्वरूप का विवेचन उसके निश्चयों की दृष्टि से किया गया है—शान्ति-रक्षा या कानून की दृष्टि से नहीं। इन दृष्टियों से उसका विचार आगे किया जायगा। नागरिकों की सार्वजनिक सभा में स्वीकृत हुए प्रस्तावों को जो महत्त्व प्राप्त है वह किसी संस्था के सदस्यों की सभा में स्वीकृत हुए प्रस्तावों को प्राप्त नहीं है। सार्वजनिक सभा को जनमत सूचित करने का अधिक अधिकार होता है।

सार्वजनिक सभा के विषय—सार्वजनिक सभा का विचारणीय विषय राजनीतिक, सामाजिक या अन्य किसी प्रकार का हो सकता है। वह विषय सार्वजनिक होना चाहिए। व्यक्ति-विशेष के स्वार्थ का प्रश्न सार्वजनिक सभा का विचारणीय विषय नहीं हो सकता। व्यक्ति का निजी विषय सार्वजनिक विषय नहीं होता। पर यदि किसी व्यक्ति के किसी कार्य से सार्वजनिक नीति में या सार्वजनिक हित में बाधा पड़ती हो तो वह कार्य सार्वजनिक विषय हो सकता है। 'अ' का ब्याह या दूसरा ब्याह निजी विषय है। पर यदि 'अ' सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करने वाला कोई बड़ा व्यक्ति हो तो उसका ब्याह सार्वजनिक महत्त्व का विषय है। 'अ' नामक सार्वजनिक कार्यकर्ता की साठवीं वर्ष-गाँठ पर, उसे कोई बड़ा अधिकार मिलने पर या चुनाव में उसकी जीत होने पर, उसे बधाई देना सार्वजनिक विषय हो सकता है। कोई विषय सार्वजनिक सभा का विचारणीय विषय होने के लिए कुछ अंशों में सार्वजनिक महत्त्व से युक्त होना चाहिए।

सार्वजनिक सभा के उद्देश्य—प्रचार, समर्थन, मत-प्रकाश, प्रदर्शन, मन-बहलाव, दुःख-निवारण, अभिनन्दन आदि विषय सार्वजनिक सभा के उद्देश्य होते हैं। मत विशेष के प्रचार के लिए भाषण करना प्रचार-कार्य का एक बहुत बड़ा भाग है। अपना मत उपस्थित एवं व्यक्त करने की स्वतन्त्रता भाषण-स्वतन्त्रता है और इस स्वतन्त्रता के उपभोग का क्षेत्र सभा है। सभा, प्रचार का बहुत प्रभावशाली साधन है। चुनाव के दौरों का अर्थ मुख्यत: जगह-जगह होने वाली सार्वजनिक सभाएँ ही हैं। अपनी विचार-प्रणाली, अपने पक्ष या अपने उम्मीदवार के लिए समर्थन प्राप्त करना भी सभा का उद्देश्य होता है। जनमत के द्वारा कितनी ही बातों का निर्णय करने के लिए सभा से काम लिया जाता है। ये बातें इस प्रश्न से लेकर, कि कौन सा पत्रा शुद्ध या कौन सा अशुद्ध है, इस प्रश्न तक होती हैं कि देश के सच्चे हितैषी कौन हैं या वास्तविक मत क्या है? यह निश्चित करने का सबसे अच्छा साधन सभा है कि कोई

कानून, बिल या सरकारी कार्य जनता को पसन्द है या नहीं। जुलूस और सभाएँ जनमत का प्रताप और जनता का विराट् स्वरूप प्रकट करने के सर्वमान्य साधन हैं। सभा ज्ञान-दान का व्यापक माध्यम है। आधुनिक संसार में सभी इस बात के कायल हैं कि जनता के दुःखों और उसकी शिकायतों को सरकार के कानों तक पहुँचाने के लिए सभा एक सर्वोत्तम साधन है। मन-बहलाव भी सभा का उद्देश्य हो सकता है। विभिन्न दृष्टियों से होने वाली चर्चा सुनने से उच्चकोटि का आनन्द प्राप्त हो सकता है।

निमंत्रक—घटना के अनुसार चलने वाली संस्थाओं की नियमावलियों में इन विषयों की व्यवस्था लिखी रहती है कि सभा किसे बुलानी चाहिए, अध्यक्ष किसे होना चाहिए और काम-काज कैसे चलना चाहिए। इस बात के वैधानिक नियम नहीं हैं कि सार्वजनिक सभा किसे बुलानी चाहिए। फिर भी, सर्वमान्य परम्परा से स्थापित कुछ संकेत या रूढ़ियाँ हैं और इन्हें नियमों का पद प्राप्त हो गया है। कुछ संस्थाओं के विधानों में सार्वजनिक सभा बुलाने की व्यवस्था होती है। उनके लिए यह आवश्यक होता है कि वे उस व्यवस्था के अनुसार सार्वजनिक सभा बुलायें। सार्वजनिक सभा के विचारणीय विषय से यह आप-से-आप निश्चित होता है कि उसके निमंत्रक या बुलाने वाले साधारणतः कौन हों। समाज में धर्म, राजनीति, व्यापार आदि अनेक विषयों से सम्बन्ध रखने-वाली संस्थाएँ और नागरिक होते हैं। किसी सार्वजनिक सभा में जिस विषय पर विचार होने वाला होता है उस विषय से सम्बद्ध संस्था या व्यक्ति उसे बुलाने में नेतृत्व ग्रहण करते हैं। यदि शारदा कानून पर विचार होने वाला हो तो महिलाओं की कोई संस्था, कोई धार्मिक संस्था या इस विषय से सम्बद्ध कोई अन्य संस्था या व्यक्ति सभा बुलाने में नेतृत्व ग्रहण करेंगे। यदि स्वतन्त्र निर्वाचक-संघ सभा का विचारणीय विषय हो तो कोई राजनीतिक संस्था, दल या व्यक्ति उसे बुलाने में अग्रसर होंगे। प्रत्येक नागरिक को स्वयं आगे बढ़कर सार्वजनिक सभा निमंत्रित करने का अधिकार है। फिर भी सभा के व्यय और प्रबन्ध आदि की दृष्टि से यह अभीष्ट होता है कि कुछ जिम्मेदार नागरिक पहले एकत्र होकर सभा के सम्बन्ध में विचार करें और उसका सारा प्रबन्ध कर लें और तब सभा बुलायें। ऐसा करने से अव्यवस्था और कठिनाइयाँ दूर की जा सकती हैं। सभा बुलाने से पहले उसकी तैयारी कर लेना इसलिए अभीष्ट है कि ऐसी नौबत न आ जाय कि सभा के स्थान के उपयोग की अनुमति न हो, वहाँ बैठने का कोई प्रबन्ध न हो, वक्ता निश्चित न हों, रोशनी का इन्तजाम न हो या प्रसंगवश श्रोतागण उपस्थित न हो सकें।

निमंत्रण—प्रकट निमंत्रण सार्वजनिक सभा का एक प्रमुख अङ्ग है। दस-पाँच आदमियों को निमंत्रित करके जो सभा की जाती है वह सार्वजनिक सभा नहीं हो सकती। प्रकट निमंत्रणके कई प्रकार या ढंग हैं। पर इनमें से चाहे किसी भी प्रकार से निमंत्रण दिया गया हो उसमें सभा-स्थान,विचारणीय विषय और समय का उल्लेख अवश्य होना चाहिए। (१) विज्ञप्ति निकालकर निमंत्रण दिया जा सकता है। विज्ञप्ति में सभा के स्थान, विषय और समय का उल्लेख होना चाहिए। सभा होने से पहले वे सर्वत्र बाँटी जानी चाहिएँ। विज्ञप्ति छपवाई जाने से ही यह नहीं सिद्ध होता कि वे उचित समय पर और उचित स्थान पर बाँटी भी गईं। विज्ञप्ति पर सभा के निमंत्रकों के रूप मे प्रभावशाली संस्थाओं या व्यक्तियों के नाम होने से सभा को अधिक महत्त्व प्राप्त होता है और प्रायः लोग विज्ञप्ति पढ़कर फेंक नहीं देते। कानूनन यह आवश्यक है कि विज्ञप्ति पर कम-से-कम एक व्यक्ति का नाम हो। (२) बाज़ार आदि जिन जगहों में लोग प्रायः इकट्ठे होते हैं वहाँ पोस्टर या तख्तियाँ लगाकर भी सभा का निमंत्रण या उसकी सूचना दी जा सकती है। उनमें सभा के स्थान, समय और विचारणीय विषय का उल्लेख होना आवश्यक होता है। (३) रास्ते में ज़मीन पर सभा की सूचना लिखना भी सभा के विज्ञापन का एक ढंग है (४) डौंडी पीटकर या छोटे-छोटे जुलूस या फेरियाँ निकालकर सभा की सूचना देने का ढंग भी प्रसिद्ध हो गया है। (५) स्थानीय समाचार-पत्र में किसी प्रमुख स्थान पर या स्थानीय समाचारों या कार्य-क्रम के शीर्षक के नीचे, सभा की सूचना प्रकाशित की जा सकती है। सब दलों के समाचार-पत्रों में सभा की सूचना प्रकाशित करना सार्वजनिक सुभीते के विचार से अच्छा होता है। समाचार-पत्रों में सभा का निमंत्रण प्रकाशित होने से बहुत कुछ काम हो जाता है और यदि सभा की सूचना समाचार-पत्रों में उचित प्रकार से प्रकाशित हो तो कार्य की दृष्टि से वह ही अभीष्ट होता है। यदि सभा की सूचना में प्रसिद्ध वक्ताओं के नाम लिख दिये जायँ और तब वह सूचना सब दलों के समाचार-पत्रों में प्रकाशित कर दी जाय तो सभा में अधिक आदमी एकत्र होते हैं। सार्वजनिक सभाओं के बारे में ऐसा कोई बंधन नहीं है कि उसके होने से इतने समय पहले उसकी सूचना अवश्य प्रकाशित हो या जनता को प्राप्त हो। फिर भी यह निश्चित है कि सभा होने से पहले उचित समय पर उसकी सूचना प्रकाशित होने से उसे अधिक महत्त्व प्राप्त होता है और उसमें अधिक संख्या में आदमी एकत्रित होते हैं।

सभा का समय—ऐसा बंधन नहीं है कि दिन के किसी निश्चित समय पर ही सार्वजनिक सभा की जाय, पर जनता के सुभीते के लिए कुछ बातें ध्यान में

रखनी पड़ती हैं। सभा के समय के सम्बन्ध में विभिन्न स्थानों में कुछ परम्पराएँ या प्रथाएँ स्थापित हो जाती हैं। बड़े शहरों में सभा का समय शाम को रखना अभीष्ट होता है। उसमें शहरों के आस-पास की बस्तियों के लोग सम्मिलित होते हैं। सभा का समय शाम को रखने से वे सभा समाप्त होने के बाद ठीक समय पर अपने-अपने घर लौट सकते हैं। छोटे शहरों में या गाँवों में सभा का समय रात को रखने से वहाँ के लोगों को सुभीता होता है और वे अधिक संख्या में उसमें सम्मिलित हो सकते हैं। जिन गाँवों में हाट लगते हैं उनमें सभा का समय साधारणतः हाट उठने से पहले रखने से बहुत-कुछ कार्य सिद्ध होता है। कुछ जगह ऐसी भी होती हैं जहाँ रात के ११ बजे के बाद सभाएँ प्रारंभ होती हैं और बहुत देर तक होती रहती हैं। साधारणतः सभा रात को ११ बजे से पहले समाप्त हो जानी चाहिए। सभा का समय ऐसा होना चाहिए जब लोग सभा में सम्मिलित हो सकें और उसकी समाप्ति तक अधिक-से-अधिक संख्या में उपस्थित रह सकें। इस विषय में कोई नियम नहीं है कि सभा कितने समय तक जारी रहे। हाँ, यदि किराये पर कोई स्थान निश्चित समय के लिए लिया गया हो तो उस समय के भीतर ही सभा समाप्त होनी चाहिए। आजकल सभा करने के लिए सिनेमा-भवन प्रायः किराये पर निश्चित समय के लिए लिये जाते हैं और उस समय के अंदर सभा समाप्त करनी पड़ती है। अनेक समयों पर पुलिस ऐसे प्रतिबन्ध लगा देती है जिनके कारण किसी निश्चित समय तक सभा समाप्त कर देनी पड़ती है। फिर भी, नियम या संकेत से यह निश्चित नहीं है कि सभा किस समय तक समाप्त हो। यह निश्चित करने का काम सभा का ही होता है कि सभा के विचारणीय विषय की चर्चा किस समय समाप्त की जाय। तो भी बुद्धिमत्ता इसी में है कि श्रोताओं के धीरे-धीरे खिसक जाने और केवल व्यवस्थापकों के रह जाने के पहले ही सभा समाप्त कर दी जाय। जिस प्रकार यजमान के हाथ का जल टपक-टपककर गिर जाने के पहले पुरोहित को संकल्प पढ़ लेना चाहिए और दीपक का तेल समाप्त हो जाने के पहले आख्यान समाप्त होना चाहिए, उसी प्रकार श्रोताओं के चले जाने के पहले सभा भी समाप्त होनी चाहिए। सभा के एक श्रोता के उठकर चले जाते ही दूसरा भी उसका अनुकरण करता है। इससे सभा की एकाग्रचित्तता तथा प्रसन्नता नष्ट हो जाती है, उसमें गड़बड़ मचती है, वक्ता के भाषण में रुकावट पड़ती है एवं सभा का रंग-भंग होजाता है। यदि सभा का अध्यक्ष यह घोषणा कर दे कि सभा की निश्चित अवधि समाप्त होते ही सभा विसर्जित कर दी जायगी और यदि वह वक्ताओं का उचित क्रम रखे, तो सभा में लोगों के बहुत-कुछ धैर्यपूर्वक बैठे रहने की संभावना होती है।

सभा-स्थान—यह आवश्यक नहीं है कि सार्वजनिक सभा किसी सार्वजनिक स्थान पर ही हो। वह किसी ऐसे स्थान पर भी हो सकती है जिस पर किसी व्यक्ति का स्वामित्व हो। अवश्य ही, वहाँ सभा करने के लिए उस व्यक्ति की इजाजत ली जानी चाहिए और सभा में सम्मिलित होने की स्वतन्त्रता सबको होनी चाहिए। यह ज़रूरी है कि स्थान के मालिक से वहाँ सभा करने की अनुमति पहले ही ले ली जाय; नहीं तो उस स्थान पर जाने वाले अनधिकार प्रवेश के अपराधी होते हैं। सभा के व्यवस्थापकों या संचालकों को उन सब शर्तों का पालन करना चाहिए जिन पर वह स्थान उन्हें दिया गया हो। उन्हें इस बात का भी प्रबन्ध करना चाहिए कि उपस्थित लोग भी उन शर्तों को न तोड़ें। सार्वजनिक सभाएँ करने के लिए, संस्थाओं के भवन, खेल के मैदान आदि उनके अधिकारियों से प्रायः लिये जाते हैं। ये सब स्थान व्यक्तिगत स्वामित्व वाले ही समझे जाने चाहिएँ, क्योंकि इन स्थानों में प्रवेश करने और रहने का अधिकार उन संस्थाओं के सदस्यों को छोड़कर और किसी को नहीं होता। यदि किसी संस्था के स्थान पर सभा होने के कारण उस स्थान की कुछ हानि हो तो उस हानि के लिए सभा के संचालक ही जिम्मेदार होते हैं, चाहे वहाँ पहले अनुमति लेकर ही सभा क्यों न की गई हो। हानि कोई करे, उसकी जिम्मेदारी सभा के संचालकों पर ही होती है। स्थान के मालिकों को चाहिए कि स्थान माँगने वालों से लिखित आवेदन पत्र लेकर ही उन्हें स्थान दिया जाय। स्थान माँगने वालों को भी यह उचित है कि लिखित आवेदन-पत्र देकर ही वे स्थान लें। इससे दोनों पक्षों को यह निश्चित रूप से मालूम होता है कि किन शर्तों पर स्थान दिया और लिया गया है। जिस समय सभा हो रही हो उस समय भी यदि स्थान के मालिक यह देखें कि शर्तों का पालन नहीं किया जा रहा है, तो भी उन्हें सभा बंद कराकर तुरंत स्थान खाली कराने का अधिकार नहीं होता। उन्हें शर्तें तोड़ी जाने पर हर-जाना माँगने का अधिकार है। उन्हें सभा बन्द करने का अधिकार नहीं होता और न उन्हें इस कारण सभा को भंग करने का ही अधिकार होता है कि शर्तें तोड़ी गई हैं। यदि सभा में उपद्रव या शान्ति-भंग हो तो उसका उत्तरदायित्व सभा के संचालकों पर होता है। सभा में जो-कुछ होता है उसका उत्तरदायित्व साधारणतः उन्हीं पर होता है। हाँ, यदि सभा में कोई वक्ता मानहानिकर या राजद्रोहात्मक भाषण करे, तो उसके लिए सभा के संचालक निश्चय ही उत्तरदायी नहीं होते। सभा के लिए जो स्थान लिया गया हो उसे यदि कोई हानि पहुँचे तो उसके लिए सभा के संचालकों को स्थान के मालिक को हरजाना देना चाहिए।

जब सार्वजनिक सभाएँ सार्वजनिक स्थानों पर अर्थात् रास्तों पर या खुली जगहों पर होती या की जाती हैं तब कुछ बातें ध्यान में रखना आवश्यक होता है। जब निजी रास्ते पर सभा करनी होती है तब तो उसके मालिक की इजाजत लेनी ही पड़ती है पर किसी मार्ग के सार्वजनिक होने के कारण ही वहाँ सभा करने का निरपेक्ष या अबाध अधिकार नहीं होता। साथ ही कोई सभा केवल इस कारण अपराध की भागी भी नहीं होती कि वह सार्वजनिक मार्ग पर की गई है। पुलिस किसी सभा को केवल इस कारण बन्द नहीं कर सकती कि वह सार्वजनिक मार्ग पर की गई है। सार्वजनिक मार्ग यातायात के लिए होता है; यातायात सार्वजनिक मार्ग का प्रधान उद्देश्य है। अतः यदि उस मार्ग पर सभा की गई हो तो मुख्य प्रश्न यह उपस्थित होता है कि आने-जाने वालों के लिए वहाँ जगह है या नहीं। यदि जगह काफी हो और आने-जाने में रुकावट न पड़ती हो तो किसी को भी इस कारण उसे बन्द करने का अधिकार नहीं है कि वह सार्वजनिक मार्ग पर की गई है। मार्ग सार्वजनिक स्वामित्व या अधिकार की सम्पत्ति हो, तो भी जनता को केवल सभा करने के लिए उसका पूरा उपयोग करने का अनियन्त्रित और अपवाद-रहित अधिकार नहीं होता। मार्ग मूलतः मार्ग है और जिस समय वहाँ सभा हो रही हो उस समय भी वह मार्ग बना रहना चाहिए अर्थात् उस पर आने-जाने के लिए काफी जगह होनी चाहिए। सार्वजनिक मार्गों और स्थानों के उपयोग के सम्बन्ध में सर्वत्र पुलिस के नियम होते हैं। इन नियमों का उद्देश्य यही होता है कि जनता को असुविधा न हो, उसके काम में रुकावट न पड़े और उसके लिए कोई खतरा न पैदा हो। पुलिस को इन सब विषयों में नियम बनाने का अधिकार होता है कि सार्वजनिक मार्ग पर किस ओर से गाड़ियाँ चलें, गाड़ियाँ कहाँ खड़ी की जायँ, मवेशी कब और कैसे ले जाये जायँ, गाड़ियाँ कितनी रफ्तार से चलाई जायँ, खुली सार्वजनिक जगह में किस रास्ते से प्रवेश किया जाय और सार्वजनिक मार्ग पर कितनी जगह छोड़कर सभा की जाय। इस प्रकार के अन्य विषयों में भी नियम बनाने का अधिकार पुलिस को होता है। जिला-पुलिस-कानून की २२ वीं धारा के अनुसार यह अधिकार प्रत्येक जिले के प्रधान पुलिस-अधिकारी को दिया गया है। बम्बई-पुलिस-कानून की २२ वीं धारा से बम्बई के पुलिस-कमिश्नर को यह अधिकार दिया गया है। पुलिस को सब जगह यह अधिकार भी प्राप्त है कि वह मार्ग पर होने वाले आवागमन को, जारी किये हुए नियमों के अनुसार चलाने के लिए, उसे कुछ समय तक बन्द करे या उसमें कुछ परिवर्तन करे। जिला मजिस्ट्रेट बम्बई जिला-पुलिस-कानून की धारा ३६ के अनुसार मार्ग, सार्वजनिक स्थान या जहाँ सब लोग सार्वजनिक

रूप से प्रवेश कर सकते हों, ऐसा कोई स्थान कुछ समय तक बन्द कर सकता है। वह यह आज्ञा निकाल सकता है कि उस स्थान का उपयोग सभा या और कोई कार्य करने के लिए न किया जाय या कोई विशेष कार्य करने के लिए और खास-खास शर्तों पर किया जाय। बम्बई के पुलिस-कमिश्नर को भी ये कार्रवाइयाँ करने का अधिकार है। इन सब अधिकारों का उद्देश्य यह है कि जनता को असुविधा न हो, उसके काम में रुकावट न पड़े और उसके लिए खतरा न पैदा हो। इसी उद्देश्य से इनका उपयोग होना चाहिए। कुछ स्थानों में मार्ग पर सभा करने या जुलूस निकालने की सूचना वहाँ की पुलिस को देने का नियम है। इसका भी उद्देश्य शान्ति-रक्षा और जनता की सुविधा ही है।

जनता को सार्वजनिक खुली जगह में भी सभा करने का अनियंत्रित और अपवाद-रहित अधिकार नहीं होता। किसी जगह के वैध उपयोग और उद्देश्य के विचार से इस बात का निश्चय होता है कि वहाँ जनता को क्या करना चाहिए या वह क्या कर सकती है। जनता किसी दूसरे काम के लिए सार्वजनिक खुली जगह का उतना और वैसा ही उपयोग कर सकती है जितने और जैसे उपयोग से उस काम में कोई रुकावट न पड़े जिसके लिए वह जगह रखी गई हो। बाजार की जगह बाजार लगने के लिए है, अतः जनता बाजार बन्द करके वहाँ सभा नहीं कर सकती। यदि कोई यह कहे कि चूँकि बाजार के समय क्रय-विक्रय के लिए वहाँ प्रवेश करने का अधिकार सबको है, इसलिए जनता को उसी समय वहाँ सभा करने का भी अधिकार है, तो यह कहना कानून और अनुशासन दोनों के विरुद्ध होगा। श्मशान में दाह-संस्कार के समय लोग एकत्र होते हैं और भाषण भी दिये जाते हैं; पर इससे जनता को वहाँ जब चाहे सभा करके मृतकों के दाह-संस्कार में विलम्ब करने का अधिकार नहीं होता। यह ठीक है कि खुली सार्वजनिक जगहों पर सिद्धान्ततः जनता का स्वामित्व होता है। फिर भी, उन पर कब्जा कानूनन स्थानीय स्वशासन-संस्थाओं या सरकार का होता है और स्थानीय स्वशासन-संस्थाओं तथा सरकार को यह निश्चित करने का अधिकार होता है कि उन जगहों का उपयोग किस प्रकार हो। यह दावा नहीं किया जा सकता कि जिस खुली जगह में नित्य सभाएँ होती हैं उसमें सभा करने का अधिकार जनता को परम्परा से प्राप्त हो गया है। स्थानीय स्वशासन-संस्था यह आज्ञा निकाल सकती है कि वह जगह सार्वजनिक सभा के काम में न लाई जाय या आज्ञा के बिना काम में न लाई जाय। पूना की म्यूनिस्पैलिटी ने इस प्रकार की आज्ञा निकाली थी। जनता को सभा करने के लिए मार्ग या सार्वजनिक स्थान यदि न देना हो तो कोई बहाना बना लिया जाता है और धूर्त सरकारी

अधिकारी यह कार्रवाई करते भी रहते हैं। इसके अलावा, सन् १९११ के राजद्रोहात्मक सभा-बन्दी कानून के अनुसार सरकार चाहे जिस व्यक्तिगत या सार्वजनिक स्थान को छः महीने के लिए 'घोषित क्षेत्र' (Proclaimed Area) करार दे सकती है। यदि किसी स्थान को सरकार 'घोषित क्षेत्र' करार दे दे तो जिले के अधिकारी या पुलिस-कमिश्नर को लिखित आवेदन-पत्र देकर तीन दिन पहले उनसे अनुमति लिये बिना उस स्थान पर कोई सार्वजनिक सभा नहीं की जा सकती। यही नहीं; उस स्थान पर ऐसा कोई लेख, चित्र या अन्य पदार्थ भी नहीं रखा जा सकता जिससे शान्ति-भंग हो या क्षोभ उत्पन्न हो। इस कानून की धारा ३ में यह परिभाषा दी गई है—"सार्वजनिक सभा वह सभा है जिसमें उपस्थित होने की स्वतन्त्रता सबको, किसी वर्ग को या जनता के किसी भाग को हो, चाहे वह निजी स्थान पर हो, चाहे उसमें प्रवेश करने की स्वतंत्रता टिकट लगाकर या अन्य किसी प्रकार से सीमित की गई हो।" जो सभा करने के लिए अनुमति दी गई हो उसमें मजिस्ट्रेट की आज्ञा के अनुसार पुलिस के रिपोर्टरों को उपस्थित रहकर उसका सारा विवरण लिख लेने का अधिकार है।

इस देश में सभा करने का वैध अधिकार अर्थात् शासन-विधान में लिखित अधिकार नहीं है। कहीं किसी कानून में यह नहीं बताया गया है कि सभा करने का अधिकार मौलिक अधिकार है। यह मानकर कि सभा करने का अधिकार संकेततः विद्यमान है, उसके उपभोग की सीमाएँ अवश्य बताई गई हैं। ऊपर, सार्वजनिक मार्गों पर और खुले सार्वजनिक स्थानों पर सभा करने के अधिकार के उपभोग की सीमाओं की रूपरेखा खींची गई है। यदि सार्वजनिक रूप से एकत्रित होकर सभा करने का अधिकार सांकेतिक न रहकर कानून या शासन-विधान में लिखा हुआ हो, तो उसके उपभोग के लिए उपयुक्त स्थान रखना या या बनाना सरकार का कर्तव्य हो जाता है। ऐसी अवस्था में इस बात की व्यवस्था की जायगी कि प्रत्येक शहर में 'नगर-भवन' या 'आज़ाद मैदान' हों और हर एक गाँव में चरागाह की तरह सभा के लिए मैदान हो। यह अधिकार सांकेतिक होने से उसका उपभोग धूर्ततापूर्वक सीमित किया जा सकता है और वह असंभव भी कर दिया जा सकता है। आजकल चौक में, घाट पर, तिरमुहानी पर, चबूतरे पर, खुले मैदान में, म्युनिसिपल बगीचे में, नदी-तट आदि के रेतीले मैदानों में सभाएँ होती हैं, पर इससे इन सार्वजनिक स्थानों पर सभा करने का अधिकार नहीं उत्पन्न होता। एक प्रसिद्ध अंग्रेज़ न्यायाधीश ने कहा है—"राज्य में सर्वत्र प्रतिदिन, किसी रुकावट या बाधा के बिना, ऐसे कितने

ही काम किये जाते हैं जिनके करने का कानूनी अधिकार नहीं होता और न हो ही सकता है; तो भी प्रायः वे काम सद्भावना-पूर्वक होने दिए जाते हैं, क्योंकि वे स्वभावतः ऐसे होते हैं कि चाहे वे कितनी ही बार किये जायँ, उनके करने का अधिकार उत्पन्न नहीं हो सकता।" (Things are done every day in every part of the kingdom without let or hindrance, which there is not and cannot be a legal right to do, and not infrequently are submitted to with a good grace, because they are in their nature incapable by whatever amount of user growing into a right.) खुली सार्वजनिक जगहों में होने वाली सभाओं की गिनती इसी प्रकार के कामों में की जाती है। जब तक ऐसी किसी जगह के मूल उद्देश्य का विपर्यास नहीं होता या उनके निश्चित उपयोग में रुकावट नहीं पैदा होती तब तक जनता को सार्वजनिक सभा करने के लिए उसका उपयोग करने देना न्याय-संगत है। स्थानीय स्वशासन-संस्था या स्थानीय पुलिस-अधिकारियों को अपने नियम, जनता की सुविधा और सुरक्षा के विचार से ही लागू करने चाहिएँ। नियम ऐसे होने चाहिएँ जिनसे उपयोग या उपभोग बन्द न हो, बल्कि व्यवस्थित हो।

सभा में शान्ति और व्यवस्था—सभा का कोई विशेष उद्देश्य होता है और उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि सभामें शान्ति और व्यवस्था रहे। सभा में शान्ति और व्यवस्था रखने का उत्तरदायित्व सभा-संचालकों, सभापति और सदस्यों पर होता है। सार्वजनिक सभा में शान्ति और व्यवस्था रखने की जिम्मेदारी और जोखिम ज्यादा होती है। सभा में लोग विचार करने, ज्ञान प्राप्त करने और अपना मत प्रकट करने के लिए एकत्रित होते हैं। यदि सभा में ये सब काम किये जाने के बदले ईंट-पत्थर फेंके जाने लगें, सिर फटने लगें और सभा दंगल या उपद्रव का रूप धारण करने लगे तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सभा का उद्देश्य विफल हो गया और सभा करने के मौलिक अधिकार का विपर्यास हो गया। सभा-स्थान मार-पीट या बल-प्रयोग से निर्णय करने का क्षेत्र नहीं है; अखाड़ा और युद्ध-स्थल इस प्रकार के क्षेत्र हैं। सभा की कल्पना के मूल में यह विश्वास और आशा निहित है कि मनुष्यों को उचित-अनुचित का विचार करके तथा युक्ति के अनुसार कोई काम करना चाहिए। प्रजातन्त्र शासन वह शासन है जो विचार-विनिमय तथा अनेक मतों और अभिप्रायों का संकलन और समन्वय करके किया जाय। विचार-विनिमय प्रजातन्त्र शासन की जान है और सभा विचार-विनिमय का साधन। इसीलिए

सभा का इतना महत्त्व है। उचित ढंग से विचार-विनिमय होने के लिए सभा में शान्ति और सदस्यों में सहिष्णुता नितान्त आवश्यक है। सभा के अभीष्ट कार्य का आधार शान्ति है। शान्ति न हो तो न सभा है न चर्चा, न विचार-विनिमय है और न कुछ।

सार्वजनिक सभा में सबको प्रवेश करने का अधिकार होता है, इसलिए वहाँ की शान्ति-भंग होना सार्वजनिक शान्ति-भंग होना है। अतः सार्वजनिक सभा के सम्बन्ध में कुछ उत्तरदायित्व या कर्तव्य सरकार का होता है। पहले इसका विचार किया जाना चाहिए। सरकार का उक्त कर्तव्य केवल सार्वजनिक शान्ति-रक्षा होना चाहिए, इससे अधिक नहीं। यदि सार्वजनिक शान्ति भंग न हुई हो या होने की प्रबल संभावना न हो तो पुलिस को सभा बंद करने या तितर-बितर करने का अधिकार नहीं होना चाहिए। जहाँ शासन-विधान में सभा करने का अधिकार लिखा हुआ होता है वहाँ इन सिद्धान्तों के अनुसार सभा के सम्बन्ध में पुलिस का उत्तरदायित्व या अधिकार सीमित किया हुआ दिखाई देता है। सभा में प्रश्न किये जाने के कारण बाधा उत्पन्न होने और काम में रुकावट पड़ने से, अथवा उसमें कुछ समय तक तालियाँ और सीटियाँ बजने या नारे लगाये जाने से ही, यह मानकर कि उसमें शान्ति-भंग हो रही है या होने की सम्भावना है, उसे तितर-बितर या विध्वस्त करना अनुचित और अन्याय्य है। सभा में अक्सर अल्पसंख्यक विरोधी इसी उद्देश्य से ये सब हरकतें करते हैं कि पुलिस बीच में पड़कर सभा को विध्वस्त कर दे। यदि उचित प्रकार से चल रही सभा में कुछ लोग जान-बूझकर रुकावट पैदा करने और उपद्रव मचाने के लिए यत्नशील हों तो पुलिस को चाहिए कि ऐसे लोगों को सभा से बाहर निकाल देने में वह सभा-संचालकों की सहायता करे। उस अवस्था से अनुचित लाभ उठाकर सभा बंद करना या तितर-बितर करना अधिकार का दुरुपयोग होगा। यदि सभा में उपस्थित लोग किसी वक्ता का भाषण न सुनना चाहें तो पुलिस यह आग्रह न कर सकेगी कि वे उसका भाषण अवश्य ही सुनें, न वह इस बात के बहाने सभा को भंग ही कर सकेगी कि लोगों ने उसका भाषण नहीं सुना। इस विषय से पुलिस का कोई सम्बन्ध नहीं कि सभा में किस प्रकार काम हो। यदि सभा के कारण शान्ति-भंग हुई हो या उसके होने की इतनी प्रबल सम्भावना हो कि सभा को भंग किये बिना उसका रुकना सम्भव न हो, तो पुलिस को सभा बंद करने का अधिकार है। यदि पुलिस के इस प्रकार सभा बंद कर देने पर भी लोग वहाँ से न जायँ तो वह सभा गैरकानूनी मजमा हो जायगा और पुलिस को उचित बल (Force) का प्रयोग करके उसे तितर-बितर कर देने का अधिकार प्राप्त

हो जायगा। प्रोफेसर डाइसी का मत है कि यदि किसी सार्वजनिक सभा में, उद्देश्य वैध हो और उसका संचालन भी वैध प्रकार से होता हो, शान्ति-भंग होने की सम्भावना उत्पन्न हो और सभा तितर-बितर किये बिना अशान्ति को रोकना असम्भव हो तो मजिस्ट्रेट और पुलिस, सभा में उपस्थित लोगों को चले जाने की आज्ञा दे सकते हैं। यदि लोग चले जाने से इन्कार कर दें तो वह सभा गैरकानूनी हो जाती है-"When a public meeting with lawful object and conducted lawfully provokes breach of peace and it is impossible to prevent the breach by any other means than by dispersing the meetin g,the magistracy and the police may call upon the meeting to disperse and if it refuses, it becomes an unlawful assembly") सरकार को शान्ति-भंग न होने देने का अधिकार है, परन्तु अनियंत्रित व्यवहार करने या नागरिकों के मौलिक अधिकारों पर आक्रमण करके उनकी सभाओं को भंग करने का अधिकार नहीं है। चाहे जिस बात को अत्यधिक महत्त्व देकर यह नहीं कहा जा सकता कि शान्ति-भंग हुई या होगी। विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या सभा में जो-कुछ हो रहा है उसके कारण सभा में उपस्थित लोगों में से दृढ़ और स्थिर बुद्धि (firm and courageous) लोगों के मन में आशंका उत्पन्न हुई है। यह उचित नहीं है कि पुलिस सभा में इस कारण हस्तक्षेप करे कि सभा में उपस्थित लोगों में से टीका, उपहास, तालियाँ आदि से डरने वाले भीरु या कच्चे दिल के लोगों के मन में आशंका उत्पन्न हुई है। पुलिस को तब तक बीच में नहीं पड़ना चाहिए जब तक कि वह यह न समझ ले कि सभा में सचमुच कोई संगीन जुर्म होने की गहरी सम्भावना है और उससे निश्चय ही शान्ति-भंग होगी। उसे यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि वह इसलिए सभा बंद कर दे कि उसका उद्देश्य और उसका संचालन वैध प्रकार से होते हुए भी, उसमें विरोध होने तथा विरोध होने से शान्ति-भंग होने की संभावना है। शान्ति-भंग को रोकने का उचित उपाय पुलिस का अधिक प्रबंध रखना है,वैध सभा की मनाही कर देना ही नहीं। यह नहीं हो सकता कि वैध सभा इसलिए अवैध या गैरकानूनी घोषित करदी जाय कि गैरकानूनी कार्रवाइयाँ करने के लिए विरोधी तैयार होजायँगे। यदि ऐसा होने लगे तो 'समझा जायगा कि कानून का अमल बंद हो गया है और गुण्डों की हुकूमत या भीड़ का शासन (Mob-rule) जारी है।' शान्ति-रक्षा के लिए न्यायपूर्ण अधिकारों पर आक्रमण न होना चाहिए और न उससे गुण्डों और उच्छृंखल लोगों को प्रोत्साहन ही मिलना चाहिए।

सभा में शान्ति रखने के लिए इंगलैण्ड में पुलिस का जो प्रबन्ध किया जाता है वह विचारणीय है। लंदन में सभा के स्थान के पास या रास्ते पर पुलिस इसलिए तैनात की जाती है कि यातायात में रुकावट न पड़े और उसका भली भांति नियंत्रण हो। जब सभा में प्रत्यक्ष शान्ति-भंग होती है तभी पुलिस उसमें हस्तक्षेप करती है, शिकायत करने वालों को अभियुक्तों के नाम और पते दिलाती है, यदि अभियोग ऐसा हो कि वारंट के बिना अभियुक्त गिरफ्तार किये जा सकें तो उन्हें गिरफ्तार करती है और यदि उपद्रव हो जाय तथा शान्ति-भंग होना न रुकता हो, तो सभा के स्थान से सब लोगों को बाहर निकालती है। लिवरपूल शहर की पुलिस भी सभा-भवन या सभा-स्थान में तभी प्रवेश करती है जब उसे इस बात का पता लगता है कि वहाँ शान्ति-भंग हुई है या वह टल नहीं सकती। सभा में शान्ति रखना या बाधा डालने वालों को बाहर निकालना उसका काम नहीं है। यदि सभा में उपद्रव हो तो वह सबको बाहर निकालती है। सभा में कोई संगीन जुर्म हुआ हो तो अपराधियों को गिरफ्तार करती है। वह साधारण अपराधियों के नाम और पतों की खोज में सहायता करती है। मैनचैस्टेर शहर में, यदि सभा-संचालक माँगें तो सभा के प्रबन्ध के लिए पुलिस दी जाती है। पर पुलिस सभा-भवन में नहीं रखी जाती उसका स्थान सभा-स्थान के पास ही, अथवा किसी दूसरी जगह होता है। जब सभा के संचालक या अध्यक्ष उसे बुलाते हैं तब वह सभा-भवन में प्रवेश करती है और उनके निरीक्षण में काम करती है। जब तक प्रत्यक्ष शान्ति-भंग नहीं होती तब तक वह किसी को सभा-भवन के बाहर नहीं निकालती। साधारण स्थिति में सभा-भवन से किसी को निकालने का काम सभा-संचालकों का है। पुलिस का काम केवल यह देखना है कि शान्ति-भंग न हो। जब सभा-संचालक पुलिस माँगते हैं तब उन्हें नियमानुसार उसे भत्ता देना पड़ता है। बर्मिंघम शहर में पुलिस का वैसा ही प्रबंध है जैसा लिवरपूल में है। जब पुलिस राजनीतिक सभा के लिए मँगाई जाती है तभी उसे भत्ता नहीं देना पड़ता। साधारणतः यह कहा जा सकता है कि इंगलैंड में ऐसी प्रथा है कि यदि बंद जगह की सभा में असाधारण स्थिति उत्पन्न हो, उपद्रव हो या उसके होने की गहरी सम्भावना हो तो, पुलिस सभा में प्रवेश करती है अन्यथा नहीं। (Report of the Departmental Committee on Police Practice, 1909) निर्वाचन की सभा भंग करना जुर्म है, पर उसमें भी पुलिस तभी हस्तक्षेप करती है जब उसमें शान्ति-भंग हुई हो या होती हो। जब ऐसी सभा में पुलिस कोई प्रत्यक्ष जुर्म होता हुआ देखती है तब वह अपराधियों को गिरफ्तार करती है। (Metropolitan Police views of

the Public Meetings Act, May, 1913)

सभा उन अनेक व्यक्तियों का समूह है जो वैध उद्देश्य से एकत्र होकर और विचार-विनिमय के द्वारा काम करे। यदि अनेक व्यक्ति अवैध या गैरकानूनी काम करने के लिए एकत्रित हों तो उनका समूह गैर-क़ानूनी मजमा (Unlawful Assembly) हो जाता है। पुलिस को आवश्यक शक्ति का प्रयोग करके गैरकानूनी मजमे को तितर-बितर करने का सर्वत्र अधिकार है। दण्ड-विधान की धारा १४१ में गैरकानूनी मजमे की जो परिभाषा दी गई है उसका सारांश यह है कि यदि पाँच या पाँच से अधिक आदमी जमा हों और उनका समान उद्देश्य निम्न लिखित हो तो उनका जमाव गैरक़ानूनी मजमा होगा—(१) वैध या प्रचलित भारत-सरकार, प्रान्तीय सरकार, लेफ्टिनेंट गवर्नर का कोई सरकारी कर्मचारी जब अपना कर्तव्य कर रहा हो, तब शक्ति का प्रयोग करके या शक्ति के प्रयोग की धमकी देकर उसे डराना; (२) कानून के अमल का विरोध करना या उसमें बाधा डालना; (३) अपकार, अनधिकार-प्रवेश या दूसरा कोई अपराध करना; (४) शक्ति के जोर पर या शक्ति के प्रयोग की धमकी देकर किसी की जायदाद पर कब्जा करना, अन्य कोई अधिकार छीन लेना या हथिया लेना; और (५) किसी व्यक्ति को गैरकानूनी काम करने में प्रवृत्त करना या कानूनी काम न करने के लिए मजबूर करना। कोई मजमा प्रारम्भ में कानूनी होने पर भी बाद में गैरकानूनी हो सकता है। जो आदमी किसी मजमे में यह जानते और समझते हुए शामिल रहता है कि वह गैरक़ानूनी है, तो वह उस गैरकानूनी मजमे का सदस्य होता है और अपराधी समझा जाता है। किसी मजमे को गैरकानूनी होने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें कम-से-कम पाँच आदमी हों और उन सबका उद्देश्य ऊपर लिखे अनुसार हो। यदि गैरकानूनी मजमा या उसमें का कोई आदमी भी, समान उद्देश्य की पूर्ति के लिए, बल-प्रयोग या हिंसा करे तो उसका वह कार्य उपद्रव (Riot) का अपराध होता है और उस मजमे का प्रत्येक व्यक्ति अपराधी हो जाता है। इंग्लैण्ड में यदि तीन आदमी भी कानूनन मना किया हुआ (Forbidden by law) काम करने के लिए जमा हों तो उनका जमाव गैरकानूनी मजमा हो जाता है। यदि पुलिस या दूसरे अधिकारी किसी कानूनी मजमे के लोगों को भी चले जाने का कानूनन हुक्म दें और उस पर भी ये लोग न जायँ तो वह मजमा गैर-कानूनी मजमा हो जाता है, क्योंकि अधिकारियों के ऐसा हुक्म देने पर भी न जाना कानूनी हुक्म की अवहेलना करने के लिए एकत्रित रहना है। पर गैर-कानूनी हुक्म का विरोध करना जुर्म नहीं है। उसी प्रकार, यदि वैध उद्देश्य से

सभा हो रही हो तो वह केवल इस बात के कारण गैरकानूनी मजमा नहीं होती कि उसमें विरोध होगा और शान्ति भंग होगी। सभा का कार्य वैध रूप से होते हुए यदि कुछ विरोधी उसका कार्य बन्द करने के लिए उस पर आक्रमण करें और उस आक्रमण का निवारण करते हुए वह सभा अपनी रक्षा के लिए कानून के अनुसार, शक्ति का प्रयोग करे तो वह सभा के संयोजक के लिए गैरकानूनी मजमा न होगी। यह जरूरी नहीं है कि सभा नियम-विरुद्ध होने से ही गैरकानूनी मजमा भी हो। ऐसा नहीं होता कि कोई सभा केवल इस कारण गैरकानूनी मजमा हो जाय कि वह स्थानीय-स्वशासन-संस्था से अनुमति लिये बिना उसके अधिकार के स्थान पर हो रही है। यह भी नहीं होता कि कोई सभा केवल इस कारण गैरकानूनी मजमा हो जाय कि उसकी सूचना पुलिस को नहीं दी गई है। विचारणीय प्रश्न यह होता है कि सभा का उद्देश्य क्या है। किसी संस्था की ओर से निमन्त्रित की गई सार्वजनिक सभाएँ अक्सर उस संस्था के नियमों के विरुद्ध होती हैं। पर यह आवश्यक नहीं होता कि वे नियम विरुद्ध होने से ही गैरकानूनी मजमा भी हों। कोई मजमा गैरकानूनी होने के लिए उसमें उपस्थित लोगों का समान उद्देश्य दण्ड-विधान की धारा १४१ में लिखे अनुसार होना चाहिए।

जब कोई-सभा गैरकानूनी मजमा हो जाती है तब पुलिस को उसमें हस्तक्षेप करके उचित शक्ति के प्रयोग से उसे तितर-बितर करने का अधिकार प्राप्त होता है। यही नहीं; जाब्ता फौजदारी की दफा ४२ की आज्ञानुसार उपस्थित होने वाले नागरिकों को, उपद्रव व गड़बड़ रोकने में, उसे रोकने का प्रबन्ध करने में, वहाँ उपस्थित होने वाले मजिस्ट्रेट या पुलिस-अधिकारियोंकी सहायता भी करनी चाहिए; यदि वह उन्हें उस काम में अपनी सहायता करने के लिए बुलायें। ऐसी अवस्था में जो नागरिक सहायता नहीं करता वह दंड-विधान की धारा १८७ के अनुसार अपराधी हो जाता है। सहायता का अर्थ यहाँ केवल वैयक्तिक सहायता है। पुलिस उपस्थित नागरिकों को यह हुक्म नहीं दे सकती कि वे उसकी सहायतार्थ आदमी इकट्ठे करके ले आयें। जिस सभा का आयोजन हुआ हो उसमें यदि गैर-कानूनी काम या उपद्रव होने-वाला हो तो, जाब्ता फौजदारी की दफा १४४ के अनुसार उस सभा की मनाही की जा सकती है। इस दफा के अनुसार, जिला मजिस्ट्रेट, चीफ प्रेसिडेन्सी मजिस्ट्रेट, सब डिविजनल मजिस्ट्रेट या तीसरे दरजे से ऊँचे दरजे का विशेष अधिकारों से युक्त मजिस्ट्रेट, जान का खतरा दूर करने के लिए या इसलिए कि शान्ति-भंग न हो, दंगा और उपद्रव न हो, कानून के अनुसार चलने वाले

किसी आदमी के काम मे रुकावट न पडे या उसे चोट न पहुँचे, कारण बताकर तथा लिखित आज्ञा निकालकर, तात्कालिक प्रतिबंधक उपाय के रूप मे, किसी आदमी को यह हुक्म दे सकता है कि वह कोई विशेष कार्य न करे। या अधिकार या कब्जे की किसी जगह या मिल्कियत के संबंध मे विशेष आदेश के अनुसार व्यवहार करे। यदि समय न हो और स्थिति ऐसी हो, जिसमें तुरंत कार्रवाई करनी आवश्यक हो, तो किसी व्यक्ति को उपयु`क्त हुक्म एकतरफा भी दिया जा सकता है, अर्थात् उस व्यक्ति के कथन या उज्र या आपत्ति सुने बिना भी दिया जा सकता है। किसी विशेष स्थान के विषय मे इस प्रकार का हुक्म व्यक्ति पर ही नहीं, साधारण जनता पर भी लागू किया जा सकता है। जिसे या जिन्हे यह हुक्म दिया गया हो कि उनकी बात सुन लेने पर, यह हुक्म निकालने वाला अधिकारी इसमे परिवर्तन कर सकता है। साधारणतः दो महीने तक यह हुक्म जारी रखा जा सकता है। पर यदि दंगा होने, शान्ति-भंग होने या जान के लिए खतरा पैदा होने की संभावना बनी रहे तो प्रान्तीय सरकार गजट मे आज्ञा निकालकर इसे जारी रखने की अवधि चाहे जितना बढ़ा सकती है। पुलिस-कमिश्नर को सभा करने या जुलूस निकालने के लिए निषेधाज्ञा लागू करने का अधिकार है। वह इस निषेधाज्ञा को सात दिन के लिए लागू कर सकता है। यदि इससे अधिक अवधि के लिए निषेधाज्ञा लागू करनी हो तो उसके लिए प्रान्तीय सरकार की स्वीकृति लेनी पडती है। [बंबई पुलिस कानून, दफा २३ (३)] जिस प्रकार उपयु`क्त निषेधाज्ञा लागू की जा सकती है उसी प्रकार सन् १९११ के राजद्रोहात्मक-सभा-निषेध-कानून के अनुसार, किसी विशेष स्थान को 'घोषित क्षेत्र' करार देकर, वहाँ सभा करने का निषेध भी किया जा सकता है। पर इस कानून के अनुसार, पहले किसी प्रान्तीय सरकार को अपने प्रान्त मे सर्वत्र या कुछ स्थानों मे, यह कानून जारी करने के लिए केन्द्रीय सरकार से अनुमति लेनी पडती है। यदि उसे ६ महीने से अधिक समय तक यह कानून जारी रखना हो तो उसके लिए उसे फिर अनुमति लेनी पड़ती है। साधारणतः दफा १४४ जारी करके सभाओं पर पाबन्दी लगाई जा सकती है। राजद्रोहात्मक-सभा-निषेध-कानून युद्ध-स्थिति एवं अन्य असाधारण स्थिति मे बनाये हुए कानून, काले कानूनों के अनुसार किये हुए सभा-निषेध और साधारणतः जाब्ता फौजदारी की दफा १४४ के अनुसार किये हुए सभा-निषेध कानून, दोनो मे नागरिक अधिकारों के आक्रमण की दृष्टि से, कोई अन्तर नहीं है। सभा निषेध के निवारण का कोई कानून अथवा वैध उपाय नहीं है—उसके खिलाफ कहीं अपील नहीं की जा सकती। यदि सभा करने का वैध या कानूनी

अधिकार होता तो उस अधिकार का अपहरण करने वाले आदेश के प्रतिकार का वैध उपाय भी होता—उस आदेश के विरुद्ध न्यायालय में अपील भी की जा सकती। लोगों को सभा करने की अनुमति देना या न देना सर्वथा शासनाधिकारी (Executive Officer) के हाथ में होता है। चूँकि जिस स्थान या क्षेत्र में सभा करने की मनाही होती है वहाँ सभा करना जुर्म होता है, इसलिए वहाँ सभा करने के लिए एकत्र हुए लोगों का समूह गैरकानूनी मजमा हो जाता है। यदि सभा करने की मनाही न हो तो ऐसी सभा भी गैरकानूनी मजमा नहीं होती जो गैर कानूनी करार दी हुई संस्था की ओर से की गई हो। यदि सभा में राजद्रोहात्मक या आपत्तिजनक भाषण होते हों तो भी वह तब तक गैरकानूनी मजमा नहीं होती जब तक कि वह शान्तिपूर्वक हो रही हो। यदि सभा या जन-समूह गैर-कानूनी मजमा हो या यह समझा जाता हो कि उसमें शान्ति भंग हुई है, तो पुलिस उसे तितर-बितर कर सकती है।

सभा का नियम-विरुद्ध होना और बात है तथा उसका गैरकानूनी मजमा होना दूसरी बात। इन दो बातों में महत्त्वपूर्ण अन्तर है। यदि नियमविरुद्ध सभा शन्तिपूर्वक हो रही हो तो पुलिस को उसे तितर-बितर करने का अधिकार नहीं है। यदि सभा करने की इजाजत न ली गई हो या उसकी सूचना पुलिस को न दी गई हो, तो उचित मार्ग यह है कि सभा के संचालकों पर मुकदमा चलाया जाय; और साधारणतः यही किया भी जाता है। यदि सभा करने की मनाही न हो, पर सभा में गैरकानूनी करार दी हुई संस्था का प्रचार होता हो तो भी वक्ताओं पर मुकदमा चलाना ही कानूनी मार्ग है। शान्ति-पूर्वक होती हुई सभा में आपत्तिजनक भाषण किये गए हों तो भी उनके सम्बन्ध में मुकदमा चलाना ही उचित है। सभा की मनाही होते हुए यदि सभा की गई हो तो वह गैरकानूनी मजमा होती है और पुलिस उसे भंग कर सकती है। इस विषय में कुछ नियम हैं—यदि कोई जनसमूह गैरकानूनी मजमा हो या बाद में हो जाय, तो पुलिस को उसे भंग करते हुए कैसा बरताव करना चाहिए। इङ्गलैण्ड में जब बारह या बारह से अधिक व्यक्तियों का समूह उपद्रव करने लगता है तब मजिस्ट्रेट उपद्रव-कानून (Riot Act) के अनुसार घोषणा करके उसे तितर-बितर होने के आदेश देता है। और यदि एकत्रित लोग उसका पालन नहीं करते तो वे गिरफ्तार किये जाते हैं या उन पर गोली चलाई जाती है। उपर्युक्त कानून के अनुसार घोषणा करना भी आवश्यक नहीं है। उचित अवसर पर ऐसी घोषणा किये बिना भी गोली चलाई जा सकती है। विभिन्न पुलिस-कानूनों के अनुसार पुलिस-कमिश्नर और जिला पुलिस-अधिकारी को शान्ति-रक्षा के लिए

आवश्यक नियम बनाने का अधिकार दिया गया है। नियमानुसार पुलिस को यह अधिकार भी दिया गया है कि यदि किसी सभा में शान्ति भंग होती हो, या होने की सम्भावना हो तो वह अस्थायी रूप से सभा के स्थान को अपने कब्जे में ले ले। उसे यह भी अधिकार है कि यदि वह गैरकानूनी मजमे को तितर-बितर करने और स्थान को अपने कब्जे में लेने में सेना से सहायता लेना आवश्यक समझे तो उन कामों में उससे सहायता ले। साधारणतः यदि कोई जन-समूह गैरकानूनी मजमा हो तो मजिस्ट्रेट या पुलिस-अधिकारी उसे तितर-बितर हो जाने की आज्ञा देता है। यदि इस आज्ञा के अनुसार एकत्रित लोग तितर-बितर न हुए या यदि मजिस्ट्रेट या पुलिस अधिकारी, लोगों को यह आज्ञा देने से पहले, उनका व्यवहार देखकर यह समझता हो कि वे नहीं हटेंगे और नहीं जायंगे तो उसे बल-प्रयोग (use of force) से तितर-बितर कर देना चाहिए तथा आवश्यकता होने पर उसमे से कुछ लोगों को गिरफ्तार करना चाहिए। और उन पर मुकदमा चलाना चाहिए। (बम्बई-पुलिस कानून, दफा ४०)। यदि पुलिस कमिश्नर या उपस्थित मजिस्ट्रेट यह समझे कि पुलिस की सहायता यथेष्ट नहीं है तो वह उपद्रव या शान्ति-भंग रोकने के लिए स्थल-सेना या जल-सेना की टुकड़ी मंगा सकता है। (दफा ४१)। स्थल-सैनिकों या जल-सैनिकों को, गैरकानूनी मजमे को तितर-बितर करते हुए और आज्ञा दी जाने पर उन्हें गिरफ्तार करते हुए, कम-से-कम आवश्यक शक्ति का प्रयोग करना चाहिए और ऐसा काम करना चाहिए जिससे लोगों को यथा सम्भव कम--से-कम चोट पहुंचे तथा सम्पत्ति की यथा सम्भव कम-से-कम हानि हो। (Shall use as little force and do hs littleinjury to person and property as may be consistent with dispersing the assembly and arresting and detaining such persons) (दफा ४२)।

यदि जन-समूह के कारण सार्वजनिक सुरक्षा के लिए संकट उत्पन्न हुआ हो और कमिश्नर या मजिस्ट्रेट से बातचीत अथवा सम्पर्क करना असम्भव हुआ हो, तो स्थल-सेना या जल-सेना-दल का अधिकारी अपनी जिम्मेदारी पर भी जन-समूह को तितर-बितर कर सकता है और लोगों को गिरफ्तार भी कर सकता है। हां, उसे यथासम्भव शीघ्र-से शीघ्र पुलिस-कमिश्नर या मजिस्ट्रेट के पास समाचार पहुंचाकर उसकी आज्ञा प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। (दफा ४३)। बम्बई-जिला-पुलिस कानून की दफा ४८ के अनुसार जिला-पुलिस-अधिकारी अर्थात् जिला-पुलिस-सुपरिंटेंडेण्ट को सभा और जुलूस के सम्बन्ध में नियम बनाने का अधिकार है। इन नियमों से पुलिस को गैरकानूनी मजमे को तितर-

वितर करने, सभा-स्थान पर कब्जा करने और सेना की सहायता माँगने के अधिकार दिये जा सकते हैं और दिये गए हैं। गैरकानूनी मजमे को तितर-बितर करते समय कम-से-कम शक्ति का उपयोग किया जाना चाहिए। पुलिस पर यह बन्धन नहीं है कि वह शक्ति का उपयोग न करके गैरकानूनी मजमे के सब लोगों पर प्रतिबन्ध या रोक लगा दे! यदि रोक लगा देने से गैरकानूनी मजमा तितर-बितर होता हो तो वह रोक लगा सकती है। वह उचित शक्ति का प्रयोग करके भी मजमे को तितर-बितर कर सकती है। कानून से उसे ये दोनों अधिकार दिये गए हैं। शान्ति-भंग रोकने, उपद्रव बन्द करने या गैरकानूनी मजमे को तितर-बितर करने के लिए, कानून और नियम के आधार पर, किसी ने जो भी कार्रवाई की हो, उस पर उस कार्रवाई के सम्बन्ध में, प्रान्तीय सरकार की अनुमति के बिना, फौजदारी मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। यदि मजिस्ट्रेट या पुलिस-अधिकारी ने नेकनीयती (bonafides) के साथ उपर्युक्त उद्देश्य से कोई कार्रवाई की हो तो वह कार्रवाई जुर्म नहीं होती। यदि स्थल-सैनिक, जल-सैनिक, या अन्य किसी व्यक्ति ने उसे दिये हुए आदेश के अनुसार, बरताव किया हो तो वह बरताव भी जुर्म नहीं होता। जब तक किसी अधिकारी ने अधिकार का अतिक्रमण न किया हो तब तक उससे हरजाना नहीं माँगा जा सकता।

शान्ति और व्यवस्था को खतरा पैदा न हो इस कारण से सार्वजनिक स्थानों पर होने वाली सभाओं के सम्बन्ध में जो नियम बनाये गए, उनके अनुसार नगर के प्रधान पुलिस-अधिकारी को आदेश जारी करने का अधिकार है। लोग सभा-स्थान में किस ओर से प्रवेश करें और सभा समाप्त होने पर किस ओर से जायं। पुलिस, अपने निकाले हुए आदेशों का पालन कराने के लिए, सभा-स्थानों में, मनोरंजन के स्थानों में और जन-समूह में प्रवेश कर सकती है। उसे प्रवेश करने से रोकना अपराध है। उससे प्रवेश-शुल्क भी नहीं माँगा जा सकता। हाँ, यह आवश्यक है कि ये आदेश इस दृष्टि से निकाले जायं कि सभाएँ होने वाला कार्य शान्तिपूर्वक वैध प्रकार से हो। यदि सभा शान्तिपूर्वक हो रही हो तो पुलिस उसे बन्द करने का आदेश नहीं निकाल सकती। वह सभा को या सभा के संचालकों को यह आदेश भी नहीं दे सकती कि अमुक व्यक्ति को भाषण करने के लिए समय दिया जाय। वह अधिक-से-अधिक यह कह सकती है कि विरोधी-पक्ष को अपना मत उपस्थित करने के लिए अवसर दिया जाना चाहिए, पर वह भी तब जब कि सभी मत प्रदर्शन के लिए हों अन्यथा नहीं। पुलिस-अधिकारी किसी आदेश या सूचना के द्वारा सभापति या सभा के अधिकारों का नियंत्रण नहीं कर सकता। सारांश यह है कि सभा से पुलिस

का संबंध शान्ति-रक्षा तक ही सीमित है और वहीं तक रहना भी चाहिए। सभा का कार्य और प्रबन्ध पुलिस के कार्य-क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं है। उस पर सार्वजनिक शान्ति की रक्षा का उत्तरदायित्व है; इस बात का निर्णय करना उसका काम नहीं कि सार्वजनिक मत किस प्रकार प्रदर्शित हो या उसे कौन प्रदर्शित करे।

व्यवस्था—इस उद्देश्य से कि सभा में शान्ति और सुव्यवस्था बनी रहे, सभा को किस प्रकार बरतना चाहिए, सभा के संचालकों को क्या सावधानी रखनी चाहिए और सभापति का बरताव कैसा होना चाहिए, इन विषयों के संबंध में कुछ बातें महत्त्वपूर्ण हैं। अतः इन विषयों पर विचार करते हुए कुछ बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सार्वजनिक सभा को भली भाँति और सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए उससे सम्बद्ध सब काम पहले से आयोजित होने चाहिएँ और इसके लिए किसी-न-किसी प्रकार का संगठन अवश्य होना चाहिए। या तो सभा किसी चलती हुई और संगठित संस्था की ओर से बुलाई जानी चाहिए या यदि उसके निमन्त्रक या संयोजक व्यक्ति हों तो उन्हें पहले एकत्रित होकर उत्तरदायी समिति स्थापित करनी चाहिए और सभा का सारा प्रबन्ध उसके सुपुर्द करना चाहिए। सभा में विचारार्थ उपस्थित होनेवाले विषय के महत्त्व का विचार करके सभा का स्थान निश्चित करना चाहिए। ऐसा न करने पर यदि स्थान संकुचित और श्रोताओं की संख्या अधिक हो तो सभा बे-मज़ा हो जाती है। अनेक बार भाषण का विषय तो महत्त्वपूर्ण नहीं होता पर उस पर बोलने वाला वक्ता प्रसिद्ध और प्रभावशाली होता है। कभी-कभी जिस शहर या गाँव में सभा होने वाली होती है वहाँ उसका भाषण पहली बार होने वाला होता है। इससे स्वभावतः सभा में लोग अधिक संख्या में एकत्रित होते हैं। इन बातों का विचार करके सभा के संचालकों को सभा का स्थान निश्चित करना चाहिए। उन्हें वक्ता, विषय और स्थिति तीनों की ठीक-ठीक जानकारी होनी चाहिए। सभा का स्थान और समय ऐसे निश्चित करने चाहिएँ जो इन तीनों के विचार से उपयुक्त हों। उन्हें सभापति भी ऐसे व्यक्ति को बनाना चाहिए जो इन तीनों के विचार से योग्य हो। विषय बिलकुल साधारण होने पर भी यदि शहर या गाँव में मतभेद का वातावरण तीव्र हो तो यह समझ लेना चाहिए कि सभा असाधारण स्थिति में होगी और इसे ध्यान में रखकर ही सभा का सब प्रबन्ध करना चाहिए। जब सभा छुट्टी के दिन या गरमी के मौसम में रात को होती है तब लोग अधिक एकत्रित होते हैं। तात्पर्य यह है कि श्रोताओं की संख्या का अनुमान करके सभा-स्थान का चुनाव करना चाहिए। यह उचित नहीं कि श्रोता तो इने-गिने हों और सभा-भवन या सभा का मैदान बहुत बड़ा हो।

इससे सभा में रौनक नहीं होती और वक्ता का उत्साह नष्ट हो जाता है तथा श्रोता भी खिसकने लगते हैं। इसके विपरीत, यदि श्रोताओं के अधिक होने पर बैठने के लिए यथेष्ट स्थान न हो, ध्वनि-विस्तारक यन्त्रों का प्रबन्ध ठीक न हो तो प्रत्येक व्यक्ति आगे बढ़ने की चेष्टा करता है, शोर-गुल होता है, वक्ता की आवाज सुनाई नहीं देती, सभा कुछ-की-कुछ होती है और लोग उकता जाते हैं तथा सभा के व्यवस्थापकों को दोष देते हुए लौट जाते हैं।

सभा का स्थान चुनने से ही काम नहीं बनता। यह भी आवश्यक है कि सभा के संचालक इस बात का निश्चय और प्रबन्ध पहले ही कर लें कि कौन कहाँ बैठे। स्त्रियों, प्रमुख या विशेष निमन्त्रितों और निश्चित वक्ताओं के लिए जगह सुरक्षित रखना अच्छा होता है। साधारण श्रोताओं को उनके बैठने की जगह दिखलाने के लिए उचित स्थानों पर स्वयंसेवक कार्यकर्ता तैनात करने चाहिए। श्रोताओं को ठीक ढंग से बैठाने से उत्तम व्यवस्था रहती है और उससे सभी को आनन्द प्राप्त होता है। यदि सभा मैदान में होने वाली हो तो डोरियों से घेरा और आने-जाने के रास्ते बनाकर सभा-स्थान की हद पहले ही बाँध लेनी चाहिए। यदि पहले से साधारणतः इस बात का अंदाजा लग जाय कि वातावरण उत्तेजनापूर्ण है और सभा में रुकावट पड़ेगी, तो सभा में उपस्थित होने वाले प्रस्ताव या विषय के समर्थकों को एक ओर, और विरोधियों को दूसरी ओर बैठाने का प्रबन्ध भी कभी-कभी किया जाता है। पर यह मानना कि लोग अपना-अपना मत पहले ही स्थिर करके सभा में उपस्थित हुए हैं, सभा को विचार-विनिमय के साधन के रूप में मूल्य-हीन समझना ही है। सभा का मुख्य सूत्र यह है कि सभासद् सभा में हुई चर्चा को सुनकर, दलीलें ध्यान में रखकर, प्रदर्शित विचारों का मननपूर्वक तथा विभिन्न दृष्टिकोणों का अवलोकन करके अपना मत स्थिर और प्रकट करें। सभा का आरम्भ भेद-भाव से नहीं होना चाहिए। सभा ऐसा जन-समूह है जिसमें विचार-विमर्श या वाद-विवाद के बाद जो निर्णय होता है वह उस समूह के कुछ या अधिक लोगों का नहीं, बल्कि सब लोगों का, अर्थात् सारे समूह का निर्णय समझा जाता है। उस निर्णय को सामूहिक निर्णय कहलाने का महत्त्व प्राप्त है। सभा में किसकी जीत हुई और किसकी हार हुई—कौन आगे बढ़ गया और कौन पीछे पड़ गया, यह क्षुद्र भावना तो व्यक्तियों की मानी जाती है पर निर्णय, व्यापक दृष्टि से, सामूहिक जीवन का या समाज का माना जाता है। अतः सभा-स्थान पर सबको एकत्र होकर, विचार करना चाहिए, अपना पांडित्य और वाक्पटुत्व प्रकट करना चाहिए। अपना मतभेद भी अवश्य उपस्थित करना चाहिए। इसके लिए अलग-अलग बैठने की या

मार-पीट करने की आवश्यकता नहीं। फिर भी कुछ व्यक्ति या कोई गुट सभा-भंग करने, उसमें रुकावट डालकर गड़बड़ मचाने के लिए ही उसमें सम्मिलित होते हैं। ऐसे व्यक्ति या ऐसा गुट जिस जगह बैठा हो उसके आस-पास बलवान और सतर्क स्वयंसेवक रखना अभीष्ट होता है। सभा में व्यवस्था और शान्ति रखने का उत्तरदायित्व सभा के संचालकों का है। इसलिए स्वयंसेवकों या कार्य-कर्ताओं का यथेष्ट दल होना चाहिए। इनमें से कुछ स्वयंसेवकों को तो व्यवस्था करने के लिए जगह-जगह तैनात करना चाहिए और बाकी को इसलिए एक ओर रखना चाहिए कि जब जहाँ आवश्यकता पड़े तब वहाँ वे भेजे जा सकें। ऐसा करने से बहुत-सा काम आसान हो जाता है। यदि सभा में विरोधी संग-ठित रूप से रुकावट डालते हों, उसे भंग करने का प्रयत्न करते हों और अध्यक्ष द्वारा ठीक तरह से बैठने की चेतावनी दिये जाने पर भी वे अवज्ञा करके मनमाना बरताव करते हों तो अध्यक्ष को उन्हें सभा से बाहर निकाल देने का अधिकार है। जब अध्यक्ष ऐसे विरोधियों को सभा से बाहर निकाल देने की आज्ञा दें तो एक ओर खड़े हुए स्वयंसेवकों को चाहिए कि वे विरोधियों से किसी प्रकार की बहस किये बिना, उचित बल का प्रयोग करके, उन्हें झटपट बाहर ले जायँ। उनसे बहस करने से सभा में गड़बड़ी होती है और सभा भंग हो जाती है। इस प्रकार विरोधियों का मनोरथ अनायास पूर्ण हो जाता है। यदि सभा में विरोधी रुकावट डालते हों तो जिस किसी स्वयंसेवक को दौड़कर उनके पास नहीं जाना चाहिए। जिसका जो काम हो उसे ही वह काम करना चाहिए। स्वयंसेवक को नम्र परन्तु दृढ़ होना चाहिए।

सभा में शान्ति और व्यवस्था रखने का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य सभापति का होता है। अतः यह बहुत आवश्यक है कि विषय और स्थिति का महत्त्व समझकर योग्य सभापति चुना जाय। यदि सभापति अर्ध-विक्षिप्त और अस्थिर-चित्त हो तो शान्त सभा में भी गड़बड़ी होती है। कुशल और सतर्क सभापति युक्ति, मधुर व्यवहार और हँसी-दिल्लगी से विरोधियों पर धाक जमाकर, उन्हें बोलने के लिए आवश्यक अवसर देकर तथा समय पर उनका नियमन करके सभा की कार्रवाई सम्पन्न करता है। यदि सभा ठीक समय पर प्रारम्भ की जाय, निश्चित समय पर उसे समाप्त करने की घोषणा की जाय तथा वक्ताओं का चुनाव और क्रम, न्याय-बुद्धि को जँचने वाला हो, तो सभा में नियमित विरोध होने पर भी उसमें अव्यवस्था और अशान्ति नहीं होती। यदि सभा में संगठित विरोध हो, सभा के अनुशासन में शोर-गुल करके विघ्न डाला जा रहा हो, ईंट-पत्थर आदि फेंके जाते हों, तो अध्यक्ष को चाहिए कि आवश्यक आदेश निकाल-

कर अनुशासन-भंग करने वाले विरोधियों को तुरन्त सभा से बाहर निकाल दे। श्रोताओं को अपनी कमजोरी या अयोग्यता दिखलाने से या उन्हें बंदरघुड़की देने से सभा अपने वश में नहीं रहती। कुछ व्यक्तियों को सभा से बाहर निकाल देने का अध्यक्ष का आदेश या निर्णय सुनकर लोगों को यह न प्रतीत होना चाहिए कि उन व्यक्तियों से अन्याय किया गया। अध्यक्ष को चाहिए कि विरोधियों को सभा से बाहर निकाल देने का निर्णय वह इस ढंग से करे कि जिससे श्रोता भी सभापति का समर्थन करें। आवश्यकता होने पर, सभा कुछ समय के लिए स्थगित करके भी विरोधियों को शान्त करना चाहिए। तब सभा की कार्रवाई प्रारम्भ करनी चाहिए; पर जहाँ तक हो सके, सभा स्थगित न हो तो ठीक है। क्योंकि ऐसा करने से विरोधियों को अनायास मनचाहा अवसर मिल जाता है और सभा का मानो उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है।

सभा का प्रारंभ—घोषित समय पर सभा प्रारंभ करना कई दृष्टियों से अभीष्ट होता है। जो लोग सभा में सम्मिलित होना चाहते हैं वे समय पर उपस्थित होते हैं। जो लोग केवल तमाशबीन होते हैं या यों ही देखकर आगे चले जाते हैं, उन्हें सभा के विषय में निष्ठा नहीं होती। वे सभा में सम्मिलित होने के उद्देश्य से नहीं आते। जो लोग तमाशा देखने, दोस्तों से मिलने, जेब में रखी हुई मूँगफली खाते हुए भाषण सुनने या हँसी उड़ाने के लिए सभा में उपस्थित होते हैं, वे कभी ठीक समय पर नहीं आते। सभा भी ऐसे लोगों के लिए नहीं होती। जो उत्साही हों और सभा की कार्रवाई में जिनकी रुचि हो ऐसे लोग थोड़ी संख्या में एकत्र हों तो भी सभा-संचालकों को उन्हीं से अपना संतोष करके, घोषित समय पर सभा प्रारंभ कर देनी चाहिए। लोगों की राह देखने से उपस्थित लोग भी जाने लगते हैं। जब तक सभा प्रारंभ नहीं होती तब तक बहुत से लोग सभा-स्थल के आस-पास खड़े रहते हैं और ज्यों हीं सभा प्रारंभ होती है त्यों ही वे सभा में उपस्थित होते हैं। यह न भूलना चाहिए कि यदि सभा-संचालक घोषित समय पर सभा प्रारंभ न करें तो उपस्थित श्रोताओं में से किसी को भी सभा प्रारंभ करने का अधिकार है। कभी-कभी सभा प्रारंभ होने से पहले कुछ समय तक गाने का कार्य-क्रम रखा जा सकता है। उतने समय में श्रोताओं के एकत्रित होने की संभावना होती है। पर गाने वाला व्यक्ति सचमुच गायक होना चाहिए। उसे ऐसा गीत गाना चाहिए जो प्रसंगोचित हो; अन्यथा उसकी हँसी होती है और सभा के कार्य में रुकावट भी पड़ती है। प्रायः सभा के कार्य-क्रम में गायन का भी कार्य-क्रम रखा जाता है; पर यह आवश्यक नहीं कि उस कार्य-क्रम के अनुसार गायन हो ही। गायन का कार्य-

क्रम प्रसंगानुसार तो होना ही चाहिए, वह अधिक लंबा भी न होना चाहिए। श्रोता, सभा में सम्मिलित होने के लिए उपस्थित होते हैं, महफिल में शामिल होने के लिए नहीं। गाने का कार्य-क्रम इसलिए नहीं रखा जाना चाहिए कि किसी व्यक्ति को गाने का अवसर प्राप्त हो। सभा के कार्य-क्रम में कुछ भी हो या न हो, निश्चित समय पर भी सभा प्रारंभ करना सब दृष्टियों से उचित होता है।

अध्यक्ष का चुनाव—सभा-संचालकों में से किसी को या पूर्व निश्चय के अनुसार किसी व्यक्ति को अध्यक्ष के नाम का प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए सभा-मंच पर जाना चाहिए। यदि छपे हुए निमन्त्रण-पत्र हों तो उसे पढ़कर सुनाना चाहिए और अध्यक्ष के नाम का प्रस्ताव करना चाहिए। जिसके नाम का प्रस्ताव रखना हो उससे इस बात के लिए पहले अनुमति ले लेनी चाहिए। प्रस्ताव का रूप यह होना चाहिये—'आज की सभा के अध्यक्ष का पद श्री— स्वीकार करें।' यह आवश्यक तो नहीं है कि इस प्रस्ताव का अनुमोदन या समर्थन हो ही, पर साधारणतः अनुमोदन किया जाना चाहिए। यदि सार्वजनिक सभा कई संस्थाओं या दलों की ओर से आयोजित की गई हो, तो उनमें से प्रत्येक संस्था या दल का एक-एक प्रतिनिधि इस प्रस्ताव का अनुमोदन करने के लिए रखा जाता है। यदि प्रस्ताव का अनुमोदन कराना हो तो अनुमोदकों के नामों की सूची सभा-संचालकों के पास पहले से होनी चाहिए। यह वांछनीय नहीं है कि संस्था का नाम लिया जाय और बहुत देर तक कोई व्यक्ति उसकी ओर से प्रस्ताव का अनुमोदन करने के लिए सामने न आ सके। यह भी ठीक नहीं कि कोई अनधिकारी व्यक्ति आ जाय और पीछे असन्तोष और झगड़ा पैदा हो। सभा-संचालकों में किसी प्रकार की हुज्जत या खटपट होती है तो उसका प्रभाव धीरे-धीरे सभा के वातावरण पर पड़ता है। साधारणतः एक से अधिक अनुमोदक नहीं होने चाहिए। सभा में उपस्थित किसी भी व्यक्ति को अध्यक्ष के नाम का प्रस्ताव करने का अधिकार है और इसी प्रकार सभा में उपस्थित किसी भी व्यक्ति को अध्यक्ष होने का भी अधिकार है। अध्यक्ष के नाम के प्रस्तावक और अनुमोदक को बिलकुल संक्षिप्त भाषण करना चाहिए। उन्हें विचारणीय विषय का महत्त्व और प्रस्तावित अध्यक्ष की योग्यता ही बतानी चाहिए। उन्हें यह ध्यान में रखना चाहिए कि विषय का महत्त्व बताना विषय का विवेचन करना नहीं है और विषय तथा सभा के संबंध की प्रस्तावित अध्यक्ष की योग्यता बताना उसका जीवन-वृत्तान्त बताना नहीं है। यह नियम सर्वमान्य होने योग्य है कि प्रस्तावक या अनुमोदक पाँच मिनट से अधिक समय तक भाषण न करे। यह नियम भी मानने योग्य है कि प्रस्ताव आदि में १५ मिनट से अधिक समय

न लगाया जाय। प्रस्ताव और अनुमोदन होने पर यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के नाम का प्रस्ताव न करे तो यह समझना चाहिए कि प्रस्ताव निर्विरोध स्वीकृत हुआ और प्रस्तावक को, अध्यक्ष से अध्यक्ष का आसन ग्रहण करने का अनुरोध करना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति नियमानुसार सभा-मंच पर खड़ा होकर किसी दूसरे व्यक्ति के नाम का प्रस्ताव करे और उस प्रस्ताव का अनुमोदन किया जाय तो पहले प्रस्तावक को अपने प्रस्ताव पर मत या वोट लेना चाहिए। उपस्थित लोगों से हाथ उठाने का अनुरोध करके मतों की गिनती द्वारा निर्णय होना चाहिए। यदि बहुमत से पहला प्रस्ताव स्वीकृत हो जाय तो दूसरा प्रस्ताव व्यर्थ हो जाता है। यदि पहला प्रस्ताव बहुमत से स्वीकृत न हो तो दूसरे प्रस्ताव पर मत लेने चाहिएँ। इसी प्रकार, यदि तीसरा प्रस्ताव हो तो उसके संबंध में भी यही कार्रवाई होनी चाहिए। मतों की गिनती विरोधियों या विपक्षियों के सामने और उनकी सहायता से करना ठीक होता है। हाथ उठवाकर किया हुआ निर्णय न माना जाय तो श्रोताओं को अपने मतों के अनुसार दो समूहों में बैठने का अनुरोध करना चाहिए और जब वे दो अलग-अलग समूहों में बैठ जायँ, तब उनकी गणना करके निर्णय घोषित करना चाहिए। इस प्रकार किया हुआ निर्णय अन्तिम निर्णय होता है। सभा सार्वजनिक होने के कारण सभी उपस्थित लोगों को मत-दान का अधिकार होता है। निर्वाचित अध्यक्ष से, अध्यक्ष का आसन ग्रहण करने का अनुरोध उसके प्रस्तावक को करना चाहिए।

अध्यक्ष का निर्विरोध निर्वाचन सभा की व्यवस्था की दृष्टि से उचित होता है। अक्सर किसी संस्था की ओर से सार्वजनिक सभा का आयोजन किया जाता है। उस संस्था के नियमानुसार यह आवश्यक होता है कि उसका अध्यक्ष या अन्य कोई व्यक्ति उस सभा का अध्यक्ष हो। यदि ऐसे किसी व्यक्ति को सभा का अध्यक्ष बनाना हो तो सभा की विज्ञप्ति में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया जाना चाहिए। उसी प्रकार यदि सभा-संचालकों ने किसी व्यक्ति को अध्यक्ष बनाने का निश्चय पहले कर लिया हो तो भी विज्ञप्ति में यह बता दिया जाना चाहिए कि सभा किसकी अध्यक्षता में होगी। यदि विज्ञप्ति में अध्यक्ष के नाम का उल्लेख न होगा, तो जब सभा-संचालक उस व्यक्ति को अध्यक्ष बनाने का प्रस्ताव करेंगे तब किसी अन्य व्यक्ति को अध्यक्ष बनाने का प्रस्ताव किये जाने की सम्भावना अधिक होगी। यदि अध्यक्ष के नाम का उल्लेख हो अथवा नियमानुसार अध्यक्ष निश्चित हो तो अध्यक्ष के नाम का प्रस्ताव न करना ही ठीक होता है। निर्वाचित अध्यक्ष को चाहिए कि अपना आसन ग्रहण करे और सभा

प्रारम्भ करे। सभा का संयोजक कोई हो, यदि सभा सार्वजनिक हो तो उसका अध्यक्ष चुनने का अधिकार जनता को है संयोजक को नहीं। हाँ, संकेत और परम्परा के अनुसार कुछ बातें होती रहती हैं। उदाहरणार्थ, म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष ने नागरिकों की जो सभा निमंत्रित की हो उसका अध्यक्ष साधारणतः वही होता है। शेरिफ ने जो सभा निमन्त्रित की हो उसका अध्यक्ष साधारणतः वह स्वयं या म्युनिसिपैलिटी का अध्यक्ष होता है, और किसी संस्था ने जो सभा निमंत्रित की हो उनका अध्यक्ष उस संस्था का अध्यक्ष होता है। उसी प्रकार सभा के संचालक या संयोजक जिस व्यक्ति को अध्यक्ष बनाने का निश्चय कर लेते हैं साधारणतः सभा उसे अध्यक्ष के रूप में स्वीकार करती है। फिर भी, यदि अधिकार का विचार किया जाय तो अध्यक्ष या सभापति चुनने का अधिकार सभा का अर्थात् उपस्थित लोगों का है। यह मूल बात ध्यान में रखनी चाहिए। जब किसी ऐसे व्यक्ति को सभापति बनाने का प्रस्ताव औपचारिक रीति से किया जाता है, जिसे सभापति बनाना नियमानुसार आवश्यक हो, या जिसे सभापति बनाने का निश्चय पहले ही कर लिया गया हो, तब सभा में उपस्थित किसी भी व्यक्ति को किसी अन्य व्यक्ति को सभापति बनाने का प्रस्ताव उपस्थित करने का अधिकार होता है। सभा के सामने प्रस्ताव उपस्थित करने का तात्पर्य श्रोताओं को अध्यक्ष का चुनाव करने का अधिकार देना है। यदि किसी को सभापति बनाने का प्रस्ताव उपस्थित न किया जाय और नियमानुसार पूर्व-निश्चित सभापति, अध्यक्ष का आसन ग्रहण करके सभा प्रारम्भ कर दे, तो भी सभा के किसी भी सदस्य को अधिकार है कि वह खड़ा होकर यह कहे कि चूँकि यह सार्वजनिक सभा है इसलिए सभापति का चुनाव नियमानुसार किया जाय। फिर स्वयं किसी को सभापति बनाने का प्रस्ताव उपस्थित करे। हाँ, यह आवश्यक है कि सभा प्रारम्भ होते ही यह आपत्ति की जाय। सभा का प्रारम्भ होने, उसके सामने कोई प्रस्ताव उपस्थित करने या कोई कार्य हो जाने के बाद इस प्रकार का आक्षेप करना उचित नहीं है। सभा की कार्रवाई होने देने से यह सिद्ध होता है कि विद्यमान अध्यक्ष को सभा ने स्वीकृति दे दी।

किसी को अपने पद के कारण सार्वजनिक सभा का अध्यक्ष होने का अधिकार नहीं है। सार्वजनिक सभा को ही अपना अध्यक्ष चुनना या स्वीकार करना चाहिए। यदि सभा-संचालक किसी को अध्यक्ष बनाने का प्रस्ताव उपस्थित करें तो वह अस्वीकृत करके दूसरा प्रस्ताव भी किया जा सकता है। पर यदि किसी को अध्यक्ष बनाने का प्रस्ताव न किया जाय और नियमानुसार पूर्व-निश्चित अध्यक्ष सभापति के स्थान पर बैठ जाय और तब सभा इस

बात की माँग उपस्थित करे कि नियमानुसार अध्यक्ष के नाम का प्रस्ताव करके अध्यक्ष चुना जाय, तथा सभा-संचालक और उपर्युक्त पूर्व-निश्चित अध्यक्ष उसे अस्वीकृत करे तो परिणाम-स्वरूप क्या होगा ? ऐसी माँग उपस्थित करने वालों को क्या करना चाहिए ? यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। अध्यक्ष नियंत्रक होता है। उसे सभा समाप्त होने तक उपस्थित लोगों पर नियंत्रण करने का अधिकार है। यह अधिकार उसे कानून से, स्वीकृत नियम या बहुमत से ही प्राप्त होता है। कानून और नियम के अभाव में यह आवश्यक है कि सार्वजनिक सभा का अध्यक्ष चुना हुआ हो। वह अध्यक्ष, अध्यक्ष नहीं है जिसे सभा ने निर्वाचित या स्वीकृत न किया हो। सभापति के आसन पर बैठ जाने से किसी को नियंत्रण का अधिकार प्राप्त नहीं होता। सभा का कोई सदस्य किसी अन्य सदस्य को सभापति बनाने का प्रस्ताव उपस्थित कर सकता है और सभा किसी भी सदस्य को अपना अध्यक्ष चुन सकती है। उसी सभा का कार्य कानून के अनुसार और नियमानुसार समझा जायगा जिसे निर्वाचित या स्वीकृत सभापति ने प्रारम्भ किया हो। यह संभव नहीं है कि दो अध्यक्ष हों, एक सभा-संचालकों का और दूसरा सभा का; दो सभाएँ हों और दोनों सभाओं का काम चलता रहे। सभा द्वारा अपना अध्यक्ष चुन लेने का यह अर्थ है कि सभा-संचालकों के पक्ष के उपस्थित लोग अल्पसंख्यक हैं। सभा द्वारा अपना अध्यक्ष चुन लेने की स्थिति में सभा-संचालक, सभा विसर्जित होने की घोषणा करते हैं। वे इतना ही नहीं करते प्रत्युत इससे भी आगे बढ़ते हैं। निश्चित अध्यक्ष के विरुद्ध आपत्ति उठाते ही उन्हें यह तो मालूम हो ही जाता है कि सभा का बहुमत उनके विरुद्ध है। सभा का वातावरण अस्थिर देखकर वे उसके बहाने, सभा द्वारा अपना अध्यक्ष चुनने के पहले ही, सभा समाप्त हो जाने की भी घोषणा कर देते हैं। पर उनकी इस प्रकार की घोषणा से सभा समाप्त नहीं होती। सभा द्वारा प्रकाशित विज्ञप्ति में उल्लिखित कार्य शान्तिपूर्वक करने का पूरा अधिकार होता है। हाँ, यदि सभा का स्थान व्यक्तिगत हो और सभा प्रारम्भ होने के बाद उसे कोई हानि पहुँचे तो सभा का अध्यक्ष उस हानि के लिए जिम्मेदार होता है। यदि व्यक्तिगत स्थान पर सर्वसाधारण के लिए प्रकाशित विज्ञप्ति के अनुसार सभा शांतिपूर्ण ढंग से हो रही हो, उस स्थान के मालिक या पुलिस को इस आधार पर सभा बन्द करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता जब तक कि सभा के संयोजकों ने सभा स्थगित होने की घोषणा न कर दी हो। यदि सभा-स्थल सार्वजनिक हो तो जब तक सभा का कार्य शान्तिपूर्वक होता हो तब तक पुलिस को उसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होता।

अध्यक्ष कैसा होना चाहिए—शरीर में जो स्थान या महत्त्व सिर का है वही सभा में सभापति का है। अध्यक्ष का अर्थ है सर्वसाधारण की अपेक्षा ऊँची दृष्टि रखने वाला। अध्यक्ष का आसन सदस्यों के बैठने के स्थान से अधिक ऊँचा होता है, इस कारण वह लाक्षणिक अर्थ में ही नहीं, बल्कि साधारण अर्थ में भी व्यापय दृष्टि से सभा का निरीक्षण करता है। अतः यह अत्यन्तावश्यक है कि सभापति या अध्यक्ष योग्य हो। सभापति सर्वसम्मति से निर्वाचित या स्वीकृत, सभा पर नियन्त्रण रखने वाला होता है। उसका स्थान जितना सम्मानित है उतना ही उत्तरदायित्व पूर्ण भी। सभा की सफलता सर्वथा सभापति की योग्यता पर निर्भर करती है। अध्यक्ष में कौन-सी योग्यता होनी चाहिए अथवा वह कैसा होना चाहिए? इस प्रश्न का थोड़े में यह उत्तर दिया जा सकता है कि वह ऐसा होना चाहिये जो उपस्थित अवसर के लिए उपयुक्त जान पड़े और अवसर का निर्वाह कर ले। लोकमत से वह लोकप्रिय सिद्ध होता है, लोकमत से उसे अधिकार प्राप्त होता है, पर लोकमत से उसे योग्यता प्राप्त नहीं होती। योग्यता उसमें पहले से ही होनी चाहिए। सभा के स्वरूप के अनुसार अध्यक्ष चुनने का उत्तरदायित्व-जितना सभा पर होता है उतना ही सभा-संचालकों पर भी होता है। ऐसे अवसर अपवादात्मक ही होते हैं जब सभा सभा-संचालकों के चुनाव को अस्वीकृत कर देती है। किसी की सा-वीं वर्ष गाँठ के अवसर पर किसी युवक को अध्यक्ष बनाना उस अवसर के लिए उपयुक्त नहीं है। किसी प्रसिद्ध विद्वान् या महापण्डित के भाषण के अवसर पर ऐसा अध्यक्ष होना चाहिए जिसका विद्वत्ता पर थोड़ा-बहुत अधिकार तो हो हीं। जब सरकार की किसी खास नीति के विषय में जनमत प्रकट करना हो, जब जनता की कोई शिकायत सरकार के कानों तक पहुँचानी हो, या किसी बात के सम्बन्ध में यह दिखलाना हो कि उसे व्यापक समर्थन प्राप्त है, तब ऐसा अध्यक्ष चुनना चाहिए जो लोकप्रिय हो। ऐसे अवसर पर व्यवस्थापक-मण्डल के निर्वाचित सदस्य या म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष को सभापति बनाना उचित सिद्ध होता है। जब वातावरण गरम हो, मतभेद तीव्र हो और यह स्पष्ट दिखाई दे कि सभा में वाद-विवाद या गर्मागर्मी होगी तब ऐसा अध्यक्ष होना बहुत आवश्यक है जो नीतिज्ञ, कसा हुआ, चतुर और समय का पारखी हो। सार्वजनिक सभा के अध्यक्ष का सभा-संचालन-शास्त्र में प्रवीण होना तो नितान्त आवश्यक नहीं है, पर उसे उसका साधारण ज्ञान होना चाहिए। विराट् जन-समूह और विशाल सभा को वश में रखना, उसका सफलतापूर्वक अन्त तक संचालन करना, बिलकुल साधारण बात नहीं है। चाहे सार्वजनिक सभा हो और चाहे किसी संस्था की नियमानुसार काम

करने वाली सभा, उसकी सफलता उसके अध्यक्ष पर ही निर्भर करती है। अध्यक्ष शान्त-स्वभाव, न्यायप्रिय, विवेकी, नम्र किन्तु दृढ़-निश्चयी, हाज़िर-जवाब और मेल-जोल से काम करने वाला होना चाहिए। वह अध्यक्ष सभा की शोभा और प्रतिष्ठा सिद्ध होता है जो स्थान और अवसर का महत्त्व समझकर काम करता है, चिढ़ता या चिल्लाता नहीं, तथा चारों ओर दृष्टि रखता है। छोटी-छोटी बातों पर ध्यान न देकर महत्त्व की बातों को दृढ़ता से अमल में लाता है, अल्पसंख्यकों से न्यायपूर्वक बरताव करता है, वक्ताओं पर उचित नियन्त्रण रखता है, सब बातें शान्त चित्त से सुनकर निर्णय करता है और स्थिर बुद्धि होता है। ऐसे अध्यक्ष से सभा का कार्य अच्छी तरह सम्पन्न होता है और उसका गौरव भी है। यदि अध्यक्ष झगड़ालू हो, भीरु हो, व्यर्थ ही डाट-डपटकर बोलने वाला हो तो सभा का रंग भंग हो जाता है, सभा में उपद्रव भी मचता है और सभा का उद्देश्य विफल हो जाता है। यदि वह चिड़चिड़ा हो तो कहा-सुनी होती है। अगर वह अपने निर्णय बदलने वाला अस्थिर बुद्धि हो तो सभा के कार्य में अनिश्चितता उत्पन्न होती है। यदि डरपोक हो तो सभा का समाप्ति उसके भंग होने में होती है। अतः योग्य अध्यक्ष का चुनाव एक महत्त्वपूर्ण कार्य है और उस पर सभा की सब सफलता अवलम्बित होती है। इस विषय में अधिक उत्तरदायित्व सभा-संचालकों पर होता है।

अध्यक्ष का प्रारम्भिक भाषण—अध्यक्ष की घोषणा होने पर चुना हुआ अध्यक्ष अपना आसन ग्रहण करे। उसे अपना प्रारम्भिक भाषण विषय का दिग्दर्शन और वक्ता के परिचय कराने तक ही सीमित रखना चाहिए। अपने चुनाव के लिए उपस्थित लोगों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना और उनसे सभा के संचालन में सहयोग करने का अनुरोध करना भी अध्यक्ष का कर्तव्य है। विषय का दिग्दर्शन कराने का अर्थ सूत्र रूप में और थोड़े में विषय की जानकारी कराना है। उसमें साधारणतः दस मिनट से अधिक समय नहीं लगाना चाहिए। जब अध्यक्ष अपना प्रारम्भिक भाषण बहुत बढ़ाता है तब श्रोताओं में चुलबुलाहट पैदा होती है, वे अधीर हो जाते हैं क्योंकि वे विषय की चर्चा या मुख्य और प्रसिद्ध वक्ता का भाषण सुनने के लिए आते हैं। वे अकारण और लगातार ताली बजाकर उसे अपना भाषण शीघ्र बन्द करने की सूचना देने लगते हैं। जब अध्यक्ष स्वयं ही विषय का ब्यौरेवार विवेचन कर देता है तब प्रधान वक्ता की अथवा जिसका भाषण होने वाला हो उसकी स्वतन्त्रता का हरण होता है और यह उसके प्रति अन्याय है। यदि अध्यक्ष से उसका मतभेद हो तो उसे व्यक्त करना उसके लिए

कठिन हो जाता है और यदि वह अध्यक्ष से सहमत हो तो उसे पुनरुक्ति करनी पड़ती है और पुनरुक्ति से श्रोता उकता जाते हैं। एक सभा में सभापति का लंबा-चौड़ा प्रारम्भिक भाषण समाप्त होने पर प्रधान वक्ता ने निम्न लिखित मार्मिक शब्द कहे—"सज्जनो, विषय का विवेचन पूरी तरह हो ही गया है। मैं उपसंहार का काम करता हूँ अर्थात् सभापति को धन्यवाद देता हूँ।" इतना कहकर उसने अपना भाषण समाप्त कर दिया। यदि वक्ता अधिक परिचित न हो, यदि उसका पहला ही भाषण हो तो थोड़े में उसकी योग्यता बतानी चाहिए—विस्तार से उसकी जीवनी सुनाना असामयिक होता है। सन् १६३६ में पूना में एक सभा मे सभापति ने अपने प्रारम्भिक भाषण में लोगों को पण्डित जवाहरलाल नेहरू का परिचय देने में आधा घण्टा लगा दिया। पण्डित जी ने भी गम्भीरता-पूर्वक अध्यक्ष के प्रति इसलिए कृतज्ञता प्रकट की कि उन्होंने श्रोताओं को उनका परिचय दिया। अध्यक्ष के लम्बे भाषण की अनुपयुक्तता इससे अधिक प्रभावकारी ढंग से सिद्ध करना सम्भव न हुआ होता। श्रोताओं की हँसी और ताली से अध्यक्ष की स्थिति दयनीय हो गई। ऐसे अवसरों से बचने के लिए अध्यक्ष को अपना प्रारम्भिक भाषण शीघ्र समाप्त करना चाहिए। प्रारम्भिक भाषण में मौके से यह बताना अभीष्ट सिद्ध होता है कि सभा कितने समय तक होती रहेगी और उसका अगला कार्य किस तरह होगा। इससे उपस्थित लोगों को होने वाले कार्य का अंदाजा लग जाता है।

गणपूर्ति—ऐसा नियम नहीं है कि यदि किसी सार्वजनिक सभा में किसी निश्चित संख्या में लोग उपस्थित हों तभी वह वैध होती है। सार्वजनिक सभा के लिए दो आदमियों का उपस्थित होना भी पर्याप्त है परन्तु एक आदमी की सभा नहीं हो सकती। जब तक कोई श्रोता न हो तब तक वक्ता का कार्य सम्पन्न नहीं होता। अदालत ने इस आशय के फैसले किये हैं कि यदि सार्वजनिक सभा में दो आदमी उपस्थित हों तो भी वह वैध होती है। पर कानून की दृष्टि से कुछ भी हो, यह निर्विवाद है कि सभा का सार्वजनिकत्व और लोक प्रतिनिधित्व उपस्थित लोगों की संख्या पर निर्भर होता है। सभा का सूचित समय होने पर, यदि दो ही आदमी उपस्थित हों तो भी उसका कार्य प्रारम्भ किया जा सकता है और उपस्थित व्यक्तियों में से किसी को भी उसे प्रारम्भ करने का अनुरोध करने तथा उसे प्रारम्भ करने का अधिकार होता है। सभा-संचालकों को सभा की सूचना भली-भांति काशित करके ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि लोग समय पर और अधिक संख्या में उपस्थित हों। इस बात के अनेक उदाहरण हैं कि एक दल के द्वारा बुलाई गई सभा का समय होते ही दूसरे दल के लोगों ने उसे

प्रारम्भ करके बाज़ी मार ली है। कहते हैं कि नेपोलियन को पाँच मिनट की देर हुई, इसलिए वाटरलू की लड़ाई में वह हार गया। महाराष्ट्र में एक बार सभा संचालकों ने एक मिनट का विलम्ब किया, इस कारण एक प्रसिद्ध राजनीतिक दल का संघटन उस दल के एक गुट के हाथ से दूसरे गुट के हाथ में चला गया। गण-पूर्ति या 'कोरम' के सम्बन्ध में कोई नियम या संकेत न होने से सार्वजनिक सभा के समय को कभी-कभी बहुत महत्त्व प्राप्त होता है।

सभा-सम्बन्धी आपत्ति—इन विषयों में कोई नियम तो नहीं है कि सार्वजनिक सभा की सूचना कितने समय पहले दी जाय, निमन्त्रण किस ढंग से दिया जाय और उसमें कम-से-कम कितने व्यक्तियों की उपस्थिति होनी चाहिए, फिर भी इन विषयों में जो-कुछ आपत्तियाँ हों, उन्हें अध्यक्ष का चुनाव होने पर तथा प्रारम्भिक भाषण शुरू होने से पहले या समाप्त होते ही उपस्थित करना चाहिए। अध्यक्ष के चुनाव के सम्बन्ध में आपत्ति भी यदि हो तो उस सम्बन्ध में प्रस्ताव होते ही उपस्थित की जाय। यदि अध्यक्ष पहले से निश्चित होने के कारण इस सम्बन्ध में प्रस्ताव न किया जाय तो निश्चित अध्यक्ष के आसन ग्रहण करते ही यह आपत्ति उपस्थित करनी चाहिए। सभा के स्वरूप और सभा में प्राप्त होने वाले प्रवेश के सम्बन्ध की आपत्ति अध्यक्ष का चुनाव होने पर उसके अध्यक्ष का आसन ग्रहण करते ही उपस्थित करना उचित है। संक्षेप में, जब तक अध्यक्ष का चुनाव न हो जाय तब तक कोई आपत्ति या कानून अथवा नियम के सम्बन्ध का कोई प्रश्न उपस्थित नहीं करना चाहिए। कारण यह है कि इन सब विषयों में निर्णय करने का अधिकार अध्यक्ष को ही है। जब तक सभा का चुना हुआ या सभा का स्वीकृत अध्यक्ष सभापति का स्थान ग्रहण नहीं करता तब तक सभा को पूर्णता प्राप्त नहीं होती। जब तक नियामक या नियन्त्रक न होगा तब तक नियमन या नियन्त्रण कौन करेगा? इसका अधिकार उस अध्यक्ष को है जो उचित प्रकार से अपने पद पर आसीन हुआ है।

अध्यक्ष के अधिकार—सार्वजनिक सभा के अध्यक्ष को अधिकार सार्वजनिक सभा से प्राप्त होते हैं। सभा उसे इस उद्देश्य से अधिकार देती है कि सभा का उचित नियन्त्रण हो और सभा-कार्य व्यवस्थित रूप से हो। अतः अध्यक्ष को इस उद्देश्य के अनुसार अपने अधिकार अमल में लाने चाहिएँ। उपस्थित लोग अध्यक्ष को सारी सभा और प्रत्येक सदस्य के नियन्त्रण के जो अधिकार देते हैं वे इस विश्वास से देते हैं कि वे न्याय और सदसद् विवेक के अनुसार

बरते जायँगे। सभा का उद्देश्य सिद्ध होने के लिए अध्यक्ष को साधारणतः निम्न-लिखित अधिकार होते हैं—

(१) सभा में शान्ति रखना और उसके लिए आवश्यक उपाय करना, (२) आवश्यक प्रश्नों का निर्णय करना (३) यदि शान्तिपूर्वक सभा चलाना असम्भव हो तो उसे विसर्जित करना (४) सभा-संचालन के सम्बन्ध में व्यवस्था देना (५) ऐसी व्यवस्था करना जिससे सभा के सामने उपस्थित कार्यों का भली-भाति विचार किया जा सके और (६) सभा का निर्णय घोषित करना।

अध्यक्ष के कर्तव्य—(१) सभा का नियन्त्रण करना, (२) सभा के काम में नियमितता और व्यवस्थितता लाना, (३) वाद-विवाद के लिए उचित अवसर देकर मत-प्रदर्शन और चर्चा कराना, तथा (४) अप्रासंगिक चर्चा न होने देना।

अध्यक्ष के अधिकारों और कर्तव्यों का विस्तारपूर्वक विचार अगले अध्याय में किया गया है।

सभा-मंच (व्यासपीठ)—सभा-मंच सभा में वह विशेष स्थान होता है जहाँ वह सभा का नियन्त्रण करता है। सभा-मंच ऐसा होना चाहिए जहाँ से अध्यक्ष सारी सभा को देख सके। यदि उस पर अध्यक्ष के अलावा और लोगों को भी बैठाना हो तो इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अध्यक्ष का शासन छिप न जाय। यदि विराट् सभा हो तो अध्यक्ष की दाहिनी ओर ध्वनि-विस्तार-यन्त्र होना चाहिए। बहुत-से अवसरों पर यह यन्त्र मुख्य सभामंच से कुछ दूर पर और अलग होता है। फिर भी वह इतना अधिक होना चाहिए कि वक्ता अध्यक्ष की आज्ञा सहज में सुन सके। सभा के स्वरूप और स्थान की दृष्टि से सभा-मंच यथेष्ट ऊँचा और विस्तृत होना चाहिए। यह आवश्यक है कि सभा-संचालक इस बात का निश्चय पहले ही कर लें कि सभा-मंच पर कौन-कौन व्यक्ति बैठेंगे। यह बात निश्चित न होने से बहुत से अवसरों पर गड़बड़ पैदा होती है। अध्यक्ष के पास कम-से-कम एक स्वयंसेवक हमेशा उपस्थित होना चाहिए। सार्वजनिक सभा में ऐसा नियम होना आवश्यक है कि वक्ता सभा-मंच पर खड़ा होकर भाषण करे।

प्रारम्भिक आपत्तियों का निर्णय—जब सभापति अपना आसन ग्रहण करता है तब वस्तुतः सभा का कार्य प्रारम्भ होता है। अपना आसन ग्रहण करते ही प्रारम्भिक भाषण समाप्त करने पर सभापति को सभा-सम्बन्धी उन आपत्तियों के विषय में निर्णय करना चाहिए जो कोई सदस्य उपस्थित करे। सार्वजनिक सभा के लिए लिखित नियम तो नहीं हैं, पर सभापति को कुछ सर्व-मान्य संकेतों, संस्थाओं के सभा-संचालन-सम्बन्धी नियमों, अदालतों के कुछ फैसलों आदि सब बातों का ध्यान रखकर स्वयं निर्णय करने के बाद सभा-

संचालन करना चाहिए। गणपूर्ति, खुला निमन्त्रण, सभा की वैधता या स्वरूप अथवा प्रवेशाधिकार-सम्बन्धी आपत्ति के विषय में निर्णय करने के बाद कार्य-सूची में लिखे हुए विषय वाद-विवाद के लिए हाथ में लेने चाहिएँ। कार्य-सूची में लिखे हुए विषयों का क्रम सभा-संचालकों का निश्चित किया हुआ होता है। उसमें प्रायः कोई परिवर्तन नहीं करना चाहिए। यदि कोई परिवर्तन करना हो तो उसके लिए सभा की सम्मति लेना अनिवार्य है।

वक्ताओं का नियोजन—यदि सभा में भाषण करने वाले वक्ताओं के नाम सभा के पहले सूचित कर दिये गए हों और मतगणना न होने वाली हो तो उपस्थित लोग यह आग्रह नहीं कर सकते कि और व्यक्तियों को भाषण करने की अनुमति दी जाय। कारण यह है कि उन्हें यह पहले से ही मालूम रहता है कि सभा में किन व्यक्तियों के भाषण होंगे और यही जानकर वे उपस्थित होते हैं। यदि सभा में वाद-विवाद की सम्भावना हो, मत-प्रदर्शन होने वाला हो अथवा मत-गणना होने वाली हो, तो विभिन्न मतों के व्यक्तियों को भाषण का अवसर मिलना न्याय-संगत है। यदि सभा में प्रस्ताव स्वीकृत होने वाला हो तो सभापति को ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जिससे दोनों दलों के मत सभा के सामने उपस्थित किये जायँ। यदि पूर्व निश्चित वक्ताओं में दोनों मतों के लोग न हों तो दूसरे मत के लोगों को भाषण की अनुमति देनी चाहिए। यदि सभा में केवल मत-प्रदर्शन होने वाला हो—कोई निश्चय होने की सम्भावना न हो, तो उपस्थित लोग इस बात के लिए जोर नहीं दे सकते कि और व्यक्तियों को भाषण करने की अनुमति दी ही जाय। फिर भी, यदि समय और सुभीता हो तो किसी अन्य व्यक्ति को भाषण करने की अनुमति देने से कोई नुकसान नहीं होता। अध्यक्ष के लिए सभा का रुख देखकर बरताव करना ठीक होता है। सभा में कोई निश्चय करना और एक ही दल या विचार के पूर्व निश्चित अथवा सभा में समय पर निश्चित किये हुए व्यक्तियों को भाषण करने की अनुमति देना न्याय के, सभा के मूल सिद्धान्त और कानून के भी विरुद्ध है।

विषय की मर्यादा—अध्यक्ष को सभा के सामने ऐसा विषय या प्रस्ताव प्रस्तुत न होने देना चाहिए जो घोषित विषय से अलग या असंगत हो। अनेक लोग सभा में इस विश्वास से उपस्थित होते हैं कि घोषित विषय के अलावा सभा के सामने और कोई विषय उपस्थित न होगा। अतः और कोई विषय उपस्थित होने देने से ऐसे लोगों के प्रति अन्याय होता है। यदि सभा 'शारदा बिल' का विरोध करने के लिए घोषित की गई हो, तो उसके सामने बाल-विवाह की श्रेष्ठता का प्रस्ताव रखना अनुचित और वातावरण के विपरीत होगा। ऐसे लोग

भी हैं जो सामाजिक विषयों में शारदा बिल के कारण होने वाले सरकार के हस्तक्षेप को नापसन्द करते हुए बाल-विवाह का विरोध करते हैं। सम्भव है कि ऐसे लोग इतनी ही घोषणा होने के कारण सभा में अनुपस्थित हों कि उसमें केवल बिल का विरोध होगा। यह भी सम्भव है कि बाल-विवाह को पसन्द करने वाले अनेक व्यक्ति भी सभा मे अनुपस्थित हों। अतः घोषित विषय के विपरीत या असंगत विषय पर सभा में वाद-विवाद होना या उसे सभा के सामने उपस्थित होने देना कानून के विरुद्ध है। घोषित विषय के विपरीत या पूर्णतः पृथक् विषय 'तात्कालिक विषय' के रूप में भी सार्वजनिक सभा में विचारार्थ नहीं लिया जा सकता। यदि सभा की कार्य-सूची में 'फुटकर विषय' का उल्लेख हो तो घोषित विषय के अतिरिक्त या पृथक् विषय फुटकर विषय के रूप में भी लेने का अधिकार प्राप्त नहीं होता।

वाद-विवाद, समय और क्रम—यदि सभा का कार्य-क्रम केवल मत-प्रदर्शन तक ही सीमित हो और वक्ता पहले से निश्चित न हों, तो अध्यक्ष को यह पूछना चाहिए कि उपस्थित लोगों में से कौन-कौन व्यक्ति बोलना चाहते हैं। जो लोग बोलने के इच्छुक हों अध्यक्ष को उनके नामों की सूची बनानी चाहिए। तब उसे सभा का समय निश्चित करना चाहिए। वक्ताओं में समय का बँटवारा न्यायपूर्वक करना चाहिए। विभिन्न विचारों के प्रधान वक्ताओं को बोलने के लिए कुछ अधिक समय देना चाहिए। साधारणतः प्रधान वक्ताओं को बीस-बीस मिनट का समय और दूसरे वक्ताओं को अधिक-से-अधिक दस-दस मिनट का समय देकर सभा का सारा कार्य दो घण्टे में समाप्त करना ठीक होता है। यदि उपस्थित लोगों की अधिक समय तक बैठने की स्पष्ट इच्छा हो तो उसे अधिक समय तक जारी रखना चाहिए। यदि सभा में प्रस्ताव स्वीकृत होना होता अध्यक्ष सभा की अवधि निर्धारित करके, दोनों पक्षों के वक्ताओं में समय का उचित बँटवारा करे। यह भी घोषित करना चाहिए कि अमुक समय तक वाद-विवाद या बहस समाप्त हो जायगी और मत-गणना प्रारम्भ होगी। इससे श्रोतागण शान्त और दत्तचित्त रहते हैं। उक्त प्रकार की सभा में अध्यक्ष का मुख्य कार्य उचित रीति से सभा से निर्णय करा लेना या उसका मत व्यक्त करा लेना ही होता है। उसके लिए उचित समय मिले बिना हुआ हो वह वैधानिक रीति से किया हुआ नहीं कहा जा सकता। मत या वोट देने वाले अर्थात् अपना मन्तव्य प्रकट करने वाले सदस्यों को उपस्थित विषय पूर्णतः समझा दिया जाना चाहिए। उन्हें भी दोनों पक्षों के विचार, दृष्टिकोण और तर्क ध्यान में रखकर तथा अपनी बुद्धि से काम लेकर मत देना चाहिए। किसी पक्ष के समर्थन में हाथ

उठाने का अर्थ सोच-समझकर हाथ उठाना ही है, यों ही बिना समझे-बूझे हाथ उठाना नहीं। मत का मतलब ही है मनन करके स्थिर किया हुआ विचार। अतः जब अध्यक्ष भिन्न-भिन्न विचारों के वक्ताओं का नियोजन और कर्म-निर्धारण कुशलता से करता है, तब श्रोताओं को अपना मत निश्चित करने या विचार स्थिर करने में सहायता मिलती है।

प्रस्ताव का रूप—साधारणतः सार्वजनिक सभा के सामने कोई विषय विचारार्थ प्रस्तुत होता है या उसके संबंध में उचित प्रस्ताव होता है। केवल मत-प्रदर्शन का अर्थ विभिन्न व्यक्तियों का प्रकट रूप से यह बताना है कि वे क्या समझते हैं या उनके क्या विचार हैं। पर सभा का मत या सार्वजनिक सभा के द्वारा व्यक्त होने वाला नागरिकों का मत, प्रस्ताव के रूप में ही प्रदर्शित किया जाता है और इससे वह निश्चित और स्पष्ट भी होता है। अतः किसी विषय में सभा का मत, उस विषय में सभा के सामने प्रस्ताव उपस्थित करके और उससे वह स्वीकृत कराके, प्रदर्शित किया जाना चाहिए। प्रस्ताव न होने पर कोई यह नहीं कह सकता कि सभा का अमुक मत है। सभा के निमंत्रण या सूचना में उसका उद्देश्य और विचारणीय विषय बता दिए जाते हैं। उनके अनुसार सभा के संचालक या संयोजक प्रस्ताव तैयार करके रखते हैं या वे तैयार किये जाते हैं। सार्वजनिक सभा में सैद्धान्तिक समर्थन या विरोध ही किया जा सकता है—तफसीलवार या एक-एक धारा का विवेचन नहीं। ऐसा विवेचन सार्वजनिक सभा का विषय नहीं होता। साधारण समर्थन या विरोध के प्रस्ताव, कोई उपस्थित किया गया प्रस्ताव, सम्बद्ध अधिकारियों के पास भेजने के प्रस्ताव, धन्यवाद या कृतज्ञता-प्रकाश आदि-जैसे प्रस्तावों पर विचार करके उन्हें स्वीकृत या अस्वीकृत करना ही सार्वजनिक सभा का काम है। प्रायः सभा के निमंत्रण या सूचना में उसका विचारणीय विषय या उद्देश्य बहुत व्यापक रखा जाता है। उदाहरणार्थ, यह न कहकर कि शारदा बिल का विरोध करने के लिए सभा होने वाली है, बल्कि यह कहा जाता है कि शारदा बिल पर विचार करने के लिए सभा होने वाली है। ऐसी स्थिति में समर्थक और विरोधी, दोनों प्रस्ताव सभा के सामने उपस्थित हो सकते हैं। यदि उद्देश्य या विषय स्पष्ट या सीमित हो, तो उसके विरुद्ध प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया जा सकता। सभा का मत स्पष्ट करने के लिए भी प्रस्ताव होना चाहिए और वह सभा के निमंत्रण में लिखे या बताये हुए विषय के अनुसार तथा उससे मिलता-जुलता होना चाहिए। खाद्य-स्थिति पर विचार करने के लिए होने वाली सभा में सरकार की खाद्य-संबंधी नीति के विरोध का प्रस्ताव उपस्थित हो सकता है। उसमें ऐसे विषयों पर भी प्रस्ताव

उपस्थित हो सकते हैं कि सरकार को खाद्य-स्थिति सुधारने के लिए क्या करना चाहिए, तथा जनता किस नीति का अनुसरण करे या उसके लिए कौन सा रुख अख्त्यार करना ठीक हो। यह ठहराने का अधिकार अध्यक्ष को है कि कोई प्रस्ताव घोषित या पूर्व सूचित विषय के अनुसार और उसके अन्तर्गत है या नहीं! घोषित विषय के अनुसार लिखे हुए ही प्रस्ताव की सभा द्वारा स्वीकृति या अस्वीकृति को ही सभा का मत समझना चाहिए। सभा में जो चर्चा या जो भाषण होते हैं उन्हें सभा का मत नहीं कहा जा सकता।

सभा-कार्य में सम्मिलित होने का अधिकार—सभा के सामने विचारार्थ उपस्थित किया जाने वाला प्रस्ताव उसके घोषित विचारणीय विषय के अनुसार तो होना ही चाहिए; वह उपस्थित भी ऐसे ही आदमी को करना चाहिए जिसे सभा-कार्य में सम्मिलित होने का अधिकार हो। सार्वजनिक सभा में जो नागरिक उपस्थित होता है, उसे उसके कार्य में सम्मिलित होने का अधिकार होता है। पर कई बार सभा में ऐसे आदमी भी उपस्थित होते हैं, जिन्हें सभा के कार्य में सम्मिलित होने का अधिकार नहीं होता। उदाहरणार्थ, पूना के नागरिकों की किसी सभा में ऐसे व्यक्ति भी उपस्थित हो सकते हैं जो पूना के नागरिक न हों, पर वे उसके कार्य में सम्मिलित होने के अधिकारी नहीं हो सकते क्योंकि उस सभा के प्रस्ताव का प्रारंभ इस प्रकार होगा—'पूना के नागरिकों की यह सभा यह प्रस्ताव करती है'। इसी प्रकार, पूना के हिन्दू नागरिकों की सभा के कार्य में कोई ऐसा व्यक्ति सम्मिलित नहीं हो सकता जो पूना का हिन्दू नागरिक न हो। पर यदि सभा हिन्दू सनातनियों की सूचित की गई हो तो उसमें उपस्थित किसी भी हिन्दू को उसके कार्य में सम्मिलित होने का अधिकार है। इसका कारण यह है कि जिस प्रकार 'पूना के नागरिक' और 'पूना के हिन्दू नागरिक' स्पष्ट, निश्चित और असंदिग्ध व्यक्ति हैं, उसी प्रकार 'हिन्दू सनातनी' नहीं; कोई भी व्यक्ति अपने को हिन्दू सनातनी कह सकता है और कोई भी व्यक्ति हिन्दू सनातनी माना जा सकता है। 'अग्रगामी', 'राष्ट्रीय' आदि के संबंध में भी वही बात कही जा सकती है जो 'हिन्दू सनातनी' के सम्बन्ध में कही गई हैं। तात्पर्य यह है कि ऐसे ही व्यक्ति को प्रस्ताव उपस्थित करना चाहिए जो सभा में उपस्थित हो तथा जिसे सभा के कार्य में सम्मिलित होने का अधिकार हो। सभा के कार्य में सम्मिलित होने का अधिकार सभा में भाषण करने और मत देने का अधिकार है और जिसे यह अधिकार प्राप्त है वह सभासद या सदस्य है।

प्रस्ताव उपस्थित करना—अध्यक्ष को सभा-संबंधी आपत्तियों के विषय में निर्णय करने और अपना प्रारंभिक भाषण समाप्त करने के बाद, उसी क्रम

से विषय उठाने चाहिएँ जिस क्रम से वे विषय-सूची में लिखे हुए हों। यदि सभा के संचालकों या संयोजकों ने प्रस्ताव तैयार किये हों तो उन्हें हाथ में लेना चाहिए। यदि प्रस्ताव न हों तो अध्यक्ष को यह घोषित करना चाहिए कि मैं सभा के सामने अमुक विषय विचारार्थ रखता हूँ, इस पर यदि किसी को कुछ कहना हो तो कहे। यदि सार्वजनिक सभा में प्रस्ताव स्वीकृत कराना हो तो संयोजकों को निश्चित प्रस्ताव तैयार करके ही उपस्थित करना चाहिए। इधर-उधर की बहस या असम्बद्ध वाद-विवाद होना उचित नहीं। अस्पष्ट विषय विचारार्थ उपस्थित न करके निश्चित प्रस्ताव उपस्थित करना ठीक होता है। इसलिए अध्यक्ष को संयोजकों से घोषित विषय के अनुसार पहले ही प्रस्ताव तैयार कर रखने के लिए कहना चाहिए। संयोजकों को घोषित विषय के अनुसार प्रस्ताव तैयार करके सभा के सामने विचारार्थ उपस्थित करने का प्रथम अधिकार होता है। यदि संयोजकों ने प्रस्ताव तैयार किया हो तो अध्यक्ष को उसे पहले उपस्थित करने की अनुमति देनी चाहिए। उनके प्रस्ताव के अभाव में, उसे वह प्रस्ताव उपस्थित करने की अनुमति देनी चाहिए जो किसी सदस्य ने सूचित किया हो। उसे यह कहना चाहिए कि श्री 'अमुक' प्रस्ताव उपस्थित करेंगे और तब उन्हें व्याख्यान-मंच पर बुलाना उचित है। प्रस्ताव उपस्थित करने वाले को पहले साफ-साफ और धीरे-धीरे प्रस्ताव पढ़ना चाहिए। फिर यह कहना चाहिए कि मैं यह प्रस्ताव सभा की स्वीकृति के लिए उपस्थित करता हूँ और फिर प्रस्ताव का विवेचन हो।

अनुमोदन—प्रस्ताव उपस्थित होने पर अध्यक्ष उसका अनुमोदन करने के लिए पहले से ही निश्चित किये हुए वक्ता को बुलाए या यह पूछे कि इस प्रस्ताव का अनुमोदन कौन करता है, अथवा इसके लिए जो व्यक्ति तैयार हों, उनमें से किसी को बुलाकर उससे प्रस्ताव का अनुमोदन करने के लिए कहना चाहिए। अनुमोदन करने वाला पहले यह कहे कि मैं इस प्रस्ताव का अनुमोदन करता हूँ और तब प्रस्ताव पर भाषण करना चाहिए। प्रत्येक प्रस्ताव का अनुमोदन होना आवश्यक है। यदि प्रस्ताव का अनुमोदन न हो, तो वह गिर जाता है अर्थात् रद्द हो जाता है और उस पर सभा चर्चा नहीं कर सकती। बल्कि जब तक किसी प्रस्ताव का अनुमोदन न हो तब तक वह सभा की चर्चा के लिए प्रस्तुत ही नहीं हो सकता। सभा की चर्चा के लिए, सभा के सामने उसके प्रस्तुत होने के लिए उसका अनुमोदन होना आवश्यक है। लेकिन अनुमोदक को सदस्य होना चाहिए।

यदि अध्यक्ष के नाते प्रस्ताव उपस्थित किया जाय तो उसके अनुमोदन की

आवश्यकता नहीं होती। पर वास्तविकता यह है कि अध्यक्ष को अध्यक्ष के नाते कोई विवाद-ग्रस्त प्रस्ताव उपस्थित नहीं करना चाहिए और यह अभीष्ट भी है। अध्यक्ष की प्रतिष्ठा और उसके पद के लिए यह हानिकर है कि वह कोई प्रस्ताव स्वयं उपस्थित करे और वह अस्वीकृत हो जाय। अतः उसे ऐसा ही प्रस्ताव उपस्थित करना चाहिए जिसके विषय में एक मत हो और विरोध भी हो तो नाम-मात्र का हो। इससे प्रस्ताव पर चर्चा होते हुए अध्यक्ष पर कोई भी आँच नहीं आती।

चर्चा—जब प्रस्ताव उपस्थित हो जाय तथा उसका अनुमोदन भी हो जाय तब अध्यक्ष को यह घोषित करना चाहिए कि अब यह प्रस्ताव नियमानुसार सभा के सामने विचारार्थ उपस्थित हुआ है, इस पर जिन्हें अपना विचार व्यक्त करना हो वह मंच पर पधारें। यदि वक्ता पहले निश्चित किये गए हों तो अध्यक्ष को उनके ठहराए हुए क्रम से उन्हें भाषण करने के लिए बुलाना चाहिये। यदि वक्ता पहले निश्चित न किये गये हों तो उन आदमियों के नामों की सूची बनानी चाहिए, जो भाषण करना चाहते हों। उसमें उनका ऐसा क्रम बनाना चाहिए कि प्रस्ताव के खण्डन और मण्डन में तथा विभिन्न मत प्रदर्शित करने वाले भाषण हों। अध्यक्ष को वक्ताओं के भाषण की अवधि भी निर्धारित कर देनी चाहिए। इस प्रकार अध्यक्ष चर्चा या वादविवाद का नियंत्रण करे।

संशोधन—जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, सार्वजनिक सभा में कोई विषय इसलिए उपस्थित किया जाता है कि उसका सैद्धान्तिक और साधारण समर्थन या विरोध हो। अतः उसमें संशोधन के लिए अधिक अवकाश नहीं होता। फिर भी, जब प्रस्ताव का अनुमोदन हो जाय और वह सभा के सामने चर्चा के लिए आ जाय तब सदस्यों को उसमें संशोधन सूचित करने का अधिकार होता है। प्रस्ताव उपस्थित होने के समय से उस पर मत या वोट लिये जाने के समय तक चाहे जब उसमें संशोधन सूचित किया जा सकता है। सार्वजनिक सभा में पहले सूचना दिये बिना संशोधन उपस्थित न करने का नियम या संकेत नहीं है। फिर भी, सभा का कार्य व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए अध्यक्ष, प्रस्ताव उपस्थित हो जाने पर, कुछ समय निर्धारित कर दे और लोगों से उस समय के भीतर ही संशोधन सूचित करने के लिए कहना चाहिए। इसके लिए सभा की नियमित अनुमति भी ले लेना उपयुक्त है।

उपस्थित संशोधन प्रस्ताव के अनुरूप होना चाहिए। वह अभावात्मक (negatvie) नहीं होना चाहिए। प्रस्ताव का विरोध करने से जो परिणाम

होने वाला हो, वही कार्य करने वाला संशोधन लागू नहीं होता। संशोधन के संबंध में अगले प्रकरण में विस्तृत विवेचन किया गया है।

यह आवश्यक नहीं है कि संशोधन का अनुमोदन हो। कम-से-कम सार्वजनिक सभा में (सूचित किये जाने वाले संशोधन के अनुमोदन की आवश्यकता नहीं होती) अध्यक्ष मौखिक संशोधन स्वीकार न करे—लिखित संशोधन ही स्वीकार करना चाहिए। संशोधन पर, उसे उपस्थित करने वाले के हस्ताक्षर भी होने चाहिएँ। निर्धारित समय के भीतर जो संशोधन आ जायँ उन्हें देखकर अध्यक्ष को यह निश्चित करना उचित है कि उनमें कौन से संशोधन नियमित और सुसंगत है और कौनसे अनियमित तथा असंगत हैं। जो संशोधन नियमित और सुसंगत हों उन्हें ही उपस्थित करने की अनुमति देनी चाहिए।

अध्यक्ष को अनियमित और असंगत संशोधन पढ़कर सुनाना चाहिए और तब उसे सूचित करने वाले व्यक्ति को थोड़े में यह बताने के लिए समय देना चाहिए कि वह नियमित और सुसंगत कैसे है। उसकी बात सुनकर अध्यक्ष को अपना निर्णय संक्षेप में, पर उसके कारण बताकर, घोषित करना चाहिए। यदि वह संशोधन नियमित और सुसंगत हो तो अध्यक्ष उसे उपस्थित करने की अनुमति दे। उसे केवल इसलिए किसी संशोधन को असंगत नहीं ठहराना चाहिए कि आरंभ में वह उसे असंगत मालूम हुआ। यदि वह ऐसा करेगा तो वह अपने अधिकार का दुरुपयोग करने का दोषी होगा। अध्यक्ष क प्रतिष्ठा और सभा का यश इसी में है कि सदस्यों को उसके पक्षपात-रहित और निरभिमान होने का विश्वास हो। इस विषय में अध्यक्ष का निर्णय अन्तिम माना जाना चाहिए कि कौन से संशोधन सुसंगत हैं और कौन से असंगत। ऐसे अन्य विषयों में भी उसका निर्णय अन्तिम माना जाना ठीक है।

चर्चा का नियमन—उचित संशोधन निश्चित करने के बाद अध्यक्ष को उनमें से प्रत्येक संशोधन उपस्थित करने की अनुमति देनी चाहिए। संशोधक यह अनुमति मिलने पर व्याख्यान-मंच पर आ जाय और अपना संशोधन पढ़ने के बाद यह कहे कि मैं यह संशोधन उपस्थित करता हूँ। इस प्रकार जब सब संशोधन उपस्थित हो जायँ तब अध्यक्ष यह घोषित करे कि यह प्रस्ताव और ये संशोधन सभा के सामने विचारार्थ प्रस्तुत हैं। इसके बाद उसे उन आदमियों के नामों की सूची बनानी चाहिए जो भाषण करना चाहते हों, सभा की अवधि का विचार करके भाषणों की अवधि निर्धारित कर देनी चाहिए तब उसे वक्ताओं का क्रम निश्चित करना चाहिए और उस क्रम

प्रत्येक वक्ता का नाम लेकर उसे भाषण करने के लिए बुलाया जाय। भाषण विषय पर अर्थात् प्रस्ताव और संशोधनों पर ही हों—विषय को छोड़कर नहीं। वे सुसंगत और शिष्ट होने चाहिएँ। उनका स्वरूप ऐसा हो कि सभा में शान्ति बनी रहे और सभा की रक्षा हो। वे मानहानि या अपराध करने के लिए उभारने वाले और केवल व्यक्तिगत टीका करने वाले नहीं होने चाहिएँ। यह ठीक है कि कानूनन किसी भाषण के लिए वह भाषण करने वाला ही उत्तरदायी है। फिर भी, चूँकि वक्ता सभा में भाषण करता है इसलिए उसके भाषण को सार्वजनिक रूप प्राप्त होता है। इस विषय में कुछ संकेत या निर्देश हैं कि सार्वजनिक सभा का कार्य किस प्रकार चलना चाहिए तथा उन संकेतों के अनुसार ही सभा का सारा कार्य होना उचित है।

भाषण की मर्यादा - सार्वजनिक सभा, व्यक्तिगत वैर निकालने का साधन या किसी व्यक्ति को बदनामी करने की जगह नहीं और न वह सामाजिक शान्ति को भंग करने वाली जमात होनी चाहिए। अतः सभापति उपर्युक्त बातों का ध्यान रखकर ही भाषणों का नियंत्रण करे। सभा विचार-स्वातंत्र्य के उपभोग का साधन है, पर इस कारण किसी को इस स्वतंत्रता का मनमाने ढंग से उपभोग करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्वतंत्रता का उपभोग इस तरह करना चाहिए कि दूसरों की स्वतंत्रता की रक्षा हो। यह नियम वस्तुतः स्वतंत्रता को सीमित करने वाला नहीं है, बल्कि उसके सम्मान की रक्षा करने वाला है।

भाषण की अवधि या कुछ विशेष शब्दों के संबंध में अध्यक्ष जो निर्णय करे, वक्ता वह शिरोधार्य करे। अध्यक्ष जिन वाक्यों या शब्दों को अशिष्ट करार दे, वक्ता को बिना शर्त उन्हें वापस ले लेना चाहिए। ऐसा करने में वक्ता की अप्रतिष्ठा नहीं, बल्कि ऐसा करके वह वस्तुतः सभा के सम्मान की रक्षा करता है और अपनी अनुशासन-प्रियता का परिचय देकर अपनी सदस्यता सार्थक करता है। साथ ही, वक्ता के कड़ी बात कहने, अप्रिय पर सत्य बोलने या व्यंग, तर्क, श्लेष या विडंबना करने पर अध्यक्ष को उसे रोकना या टोकना नहीं चाहिए। विनोद, व्यंग, विडंबना, वक्रोक्ति, मार्मिकता आदि, भाषण-कला के भूषण और शस्त्र हैं। उनका उचित उपयोग करने का अधिकार सबको है। यदि भाषण अशिष्ट भाषा, असत्य कथन और विषय के बाहर आदि दोषों से मुक्त हो, तो वह ठीक है।

स्पष्टीकरण—प्रत्येक सदस्य को वाद-विवाद में एक ही बार भाषण करने का अधिकार होता है। वह दूसरी बार, संशोधक को जवाब देने के लिए भी,

नहीं बोल सकता। हाँ, प्रस्तावक को अन्त में उत्तर देने का अधिकार होता है। यदि किसी विशेष बात के संबंध में ग़लतफ़हमी हुई हो तो उसे दूर करने के लिए अध्यक्ष को उचित अवसर पर, उचित व्यक्ति को उस बात के स्पष्टीकरण की अनुमति देनी चाहिए। पर स्पष्टीकरण का अर्थ लंबा-चौड़ा भाषण देना नहीं है; उसके बहाने दूसरा भाषण करना भी उचित नहीं। वास्तविक स्थिति बता देना ही स्पष्टीकरण है, अतः वह बहुत संक्षेप में ही होना चाहिए। स्पष्टीकरण पर स्पष्टीकरण अधिक समय तक चलते रहने से बहुत-सी अप्रिय बातें घटित होती हैं—चर्चा में कटुता पैदा होती है, सभा का उच्च और उदारतापूर्ण वातावरण गंदा होने लगता है। अतः अध्यक्ष को जितनी बातों का स्पष्टीकरण आवश्यक हो उतनी ही बातों के स्पष्टीकरण की अनुमति देनी चाहिए।

नियम-संबंधी प्रश्न—वाद-विवाद या भाषण होते हुए कोई भी सदस्य, चाहे जिस समय, नियम-संबंधी प्रश्न उपस्थित कर सकता है। सदस्य को खड़े होकर अध्यक्ष से कहना चाहिए कि नियम-संबंधी प्रश्न है; और जब अध्यक्ष उसे उपस्थित करने की अनुमति दे दे तब थोड़े में उसका उल्लेख और विवेचन करना चाहिए। अध्यक्ष को आवश्यक मालूम हो तो दूसरों से उस प्रश्न पर बोलने के लिए कहकर उसके सम्बन्ध में निर्णय करना चाहिए। नियम-संबंधी प्रश्न पर कोई भी सदस्य बोल सकता है। अध्यक्ष उसके संबंध में जो निर्णय करे वह अन्तिम माना जाता है। अगले प्रकरण में नियम-संबंधी प्रश्न के बारे में अधिक विवेचन किया गया है।

चर्चा बंद करना—अध्यक्ष के सभा की अवधि निश्चित कर देने पर भी, प्रस्ताव उपस्थित होने के बाद, चाहे जब कोई सदस्य, इस आशय का प्रस्ताव उपस्थित कर सकता है कि चर्चा बन्द की जाय और मत गणना की जाय। फिर भी, चूँकि सभा करने का उद्देश्य ही यह होता है कि चर्चा हो, फिर सभा निर्णय करे; इसलिए अध्यक्ष इस प्रकार का प्रस्ताव तब तक स्वीकार न करे जब तक कि उचित और यथेष्ट चर्चा न हो जाय। अल्पसंख्यकों के भाषण करने और अपना मत प्रकट करने के अधिकार की रक्षा करने के लिए, अध्यक्ष को ऐसा प्रस्ताव तब तक स्वीकार नहीं करना चाहिए जब तक कि सब मतों के वक्ताओं को बोलने के लिए थोड़ा-बहुत अवसर न मिल जाय। यदि अध्यक्ष ऐसा प्रस्ताव सूचित किये जाने के कारण ही उसे उपस्थित करने की अनुमति भी दे दे, वह बहुमत से स्वीकृत हो जाने के कारण ही वाद-विवाद बन्द करके मत-गणना करे, तो उसका यह काम कानून या नियम के अनुसार प्रतीत होने पर भी न्याय-संगत नहीं होगा। सबके उचित अधिकारों की रक्षा करना

अध्यक्ष का पवित्र कर्तव्य है। उसे लोगों में अपनी अप्रियता सहकर भी इसका पालन करना चाहिए, जिससे बहुमत का दुरुपयोग न हो और अल्पसंख्यकों पर ज्यादती न हो। अतः जब उपस्थित विषय के पक्ष और विपक्ष में साधारणतः यथेष्ट वाद-विवाद हो जाय तभी अध्यक्ष वाद-विवाद बंद करने का प्रस्ताव स्वीकार करे और उसे सभा के सामने उपस्थित करने की अनुमति दे। इस प्रस्ताव पर भाषण संक्षेप में हों और इसके लिए अध्यक्ष को उन पर उचित नियंत्रण रखना चाहिए। इस प्रस्ताव का अनुमोदन होना भी आवश्यक है। जब अध्यक्ष यह प्रस्ताव स्वीकार करता है और उसे उपस्थित करने की अनुमति दे देता है तब मुख्य प्रस्ताव पर होने वाला वाद-विवाद रुक जाता है और इसी प्रस्ताव पर चर्चा होने लगती है। यदि यह स्ताव स्वीकृत हो जाय तो मुख्य प्रस्ताव पर होने वाला वाद-विवाद बंद हो जाता है, और केवल मुख्य प्रस्तावक को उत्तर में भाषण करने का अधिकार होता है। उसका भाषण समाप्त होते ही मुख्य प्रस्ताव पर मत लिये जाने चाहिएँ। यदि वाद-विवाद बंद करने का प्रस्ताव अस्वीकृत हो जाय तो उस वक्ता को फिर अपना भाषण प्रारंभ करने का अधिकार प्राप्त होता है, जो वह प्रस्ताव सूचित किये जाने के समय बोल रहा हो और मुख्य प्रस्ताव पर वाद-विवाद जारी रहता है।

अध्यक्ष को वाद-विवाद बंद करने के प्रस्ताव से अल्पसंख्यकों के साथ अन्याय नहीं होने देना चाहिए। अध्यक्ष का कर्तव्य है कि वह अल्पसंख्यकों को भी सभा के सदस्यों की सहिष्णुता का अनुचित लाभ न उठाने दे और जान-बूझकर सभा के कार्य में रुकावट डालने का अवसर दे। सभा में उपस्थित बहुमत और अल्पमत वाले किसी भी पक्ष को न्याय प्राप्त होना चाहिए। सभा निर्णय करने के लिए होती है और यथेष्ट वाद-विवाद होते ही सभा से निर्णय करा लेना सभापति का कर्तव्य है। यह ध्यान में रखकर सभापति को वाद-विवाद बंद करने का प्रस्ताव स्वीकार या अस्वीकार करना चाहिए।

सभा को स्थगित करना—सभा-स्थगित करने के कई प्रकार हैं। उनका विस्तृत विचार अगले प्रकरण में किया जायगा। सार्वजनिक सभा किसी खास विषय के संबंध में कोई कार्य करने के लिए निमंत्रित होती है। इसलिए वह कार्य हुए बिना सभा स्थागित करने का प्रस्ताव करना अनुचित है। व्यवस्थापिका-सभाओं और स्थानीय-स्वशासन-संस्थाओं की बैठकों में, विषय-सूची में न लिखे हुए किसी ऐसे निश्चित विषय पर विचार करने के लिए, बैठक के प्रारंभ में उसे स्थगित करने का प्रस्ताव किया जाता है, जो सार्वजनिक महत्त्व का और आव-

श्यक (of urgent public importance) हो । उसका उद्देश्य शिकायतों का प्रचार करना, सरकार और अधिकारारूढ़ दल पर आक्षेप करना अथवा उसका विरोध करना होता है। सार्वजनिक सभा में ऐसा प्रस्ताव करने की आवश्यकता नहीं होती। किसी सदस्य की मृत्यु या दूसरी कोई असाधारण घटना होने पर भी बैठक के प्रारंभ में उसे स्थगित करने का प्रस्ताव करने की प्रथा है। पर यह प्रथा भी सार्वजनिक सभा पर लागू नहीं है। फिर भी, यह नहीं कहा जा सकता कि सार्वजनिक सभा कार्य किये बिना, स्थगित ही नहीं की जा सकती। सार्वजनिक सभा करना जितना आसान मालूम होता है उतना आसान वह नहीं, और मिली हुई जगह के दूसरे अवसर पर मिलने का निश्चय नहीं होता, इसलिए सार्वजनिक सभा का घोषित कार्य पूरा कर लेना साधारणतः उचित होता है। तो भी, सभा सूचित होने के समय से उसके प्रारंभ होने के समय तक, यदि किसी महान् व्यक्ति की मृत्यु या कोई असाधारण और क्षोभ-जनक घटना हो जाय तो कभी-कभी उसे स्थगित करना भी उचित है।

सभा स्थगित करने का अधिकार सभा का अर्थात् उपस्थित लोगों का है—अध्यक्ष का या संयोजकों का नहीं। अतः कानूनन या नियमानुसार, सार्वजनिक सभा के सामने कोई भी सदस्य उसे स्थगित करने का प्रस्ताव उपस्थित कर सकता है। सभा स्थगित करने, किसी प्रस्ताव पर होने वाली चर्चा रोकने अथवा किसी विषय पर विचार न करने के प्रस्ताव द्वारा सभा स्थगित कराई जा सकती है। जब कोई सदस्य सभा को स्थगित करने का प्रस्ताव उपस्थित करे तब अध्यक्ष को उसे उपस्थित करने की अनुमति तत्काल देनी चाहिए। उस पर चर्चा संक्षेप में हो और फिर उस पर मत या वोट लिये जायँ। यदि वह स्वीकृत हो जाय तो उसके उचित परिणाम के रूप में सभा का कार्य बंद हो जाता है। यदि वह अस्वीकृत हो जाय तो मूल विषय पर फिर चर्चा प्रारंभ होती है। सभा को स्थगित करने का प्रस्ताव बार-बार किया जा सकता है। फिर भी, ऐसा संकेत है कि इस तरह के दो प्रस्तावों के बीच कम-से-कम आधे घंटे का अन्तर होना चाहिए। सभा के स्थगन का अर्थ है सभा का निश्चित कार्य अधूरा रखना या उसका अधूरा रहना। सार्वजनिक सभा ऐसी जमात है जो एक ही बैठक में निश्चित कार्य परा करती है। वह प्रतिदिन या सवेरे और शाम को होने वाले सम्मेलन-जैसी, या किसी संस्था के प्रतिदिन और बार-बार होने वाले अधिवेशन-जैसी नहीं है। उसका कार्य साधारण समर्थन या विरोध है—तफ़सीलवार या विस्तृत विवेचन करना नहीं। अतः उसकी कार्य-सूची में एक-दो प्रस्ताव ही होते हैं और एक ही बैठक में उनके संबंध में निर्णय करना अभीष्ट होता है। इन

दृष्टियों से सभा की अवधि का निर्धारण, वक्ताओं का चुनाव और सभा की कार्रवाई का नियंत्रण होना चाहिए।

सभा की सम्मति—यदि निश्चित समय मे सभा का कार्य पूरा होना संभव न हो और स्थान आदि का प्रबन्ध फिर हो सकता हो, तो सभा स्थगित करना उचित होता है। पर सभा स्थगित करने के लिए सभा की सम्मति आवश्यक है। अध्यक्ष को सभा स्थगित करने का स्वाभाविक अधिकार नही है। हाँ, यदि सभा का कार्य शान्ति से होना सम्भव न हो तो अध्यक्ष उसे स्थगित या विसर्जित कर सकता है। पर सभा को अधिक समय तक जारी रखना, उसके लिए असुविधाजनक होने या सभा की कार्रवाई, उसे पसंद न होने के कारण, सभा स्थगित या विसर्जित करने का अधिकार प्राप्त नही होता। यदि उपरोक्त स्थिति मे वह सभा स्थगित या विसर्जित कर दे अथवा सभापति का पद त्याग दे तो भी सभा रद्द नहीं होती। यदि वह ऐसा करे तो सभा को दूसरा अध्यक्ष चुनकर अपना कार्य जारी रखना चाहिए। ऐसा करना सर्वथा उचित और वैधानिक दृष्टि से उचित है। साथ ही सभा अर्थात् सदस्यो को भी सभा को स्थगित करने का जो अधिकार प्राप्त है वह उचित कारणो से ही है। केवल बहुमत के बल पर अनुचित बात के लिए इस अधिकार का उपयोग करना सभा और उसके सदस्यो की प्रतिष्ठा के लिए हानिकारक है। उदाहरणार्थ, अन्यत्र संगीत का कार्यक्रम होने के कारण, महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक विषयो पर विचार करने के लिए नियंत्रित की हुई सभा को, बहुमत के बल पर, स्थगित करना यदि नियमानुसार या जायज़ करार दिया जाय, तो भी वह उचित या न्याय-संगत नहीं है। अध्यक्ष को सभा स्थगित करने के या वोट लेने से पहले लोगों से यह अनुरोध करना उचित है कि जो लोग बैठे रहना चाहे वे बैठें और जो लोग जाना चाहे जा सकते हैं। और फिर उसे उक्त प्रस्ताव उपस्थित करने वाले से उसको वापिस लेने के लिए कहना चाहिए। ऐसा करने से सभा की प्रतिष्ठा की रक्षा होती है।

सदस्यों के अधिकार और कर्तव्य—सूचित या विज्ञापित निमंत्रण से सभा का स्वरूप निश्चित होता है और फिर इस बात का निर्णय करना अध्यक्ष का काम है कि सभा मे कौन आ सकता है। अध्यक्ष का निर्णय विज्ञापित निमंत्रण के अनुसार होना चाहिए। अध्यक्ष अपने निर्णय से सभा का जो स्वरूप निर्धारित कर दे वही प्रामाणिक और अन्तिम माना जाना चाहिए। एक बार महात्मा गान्धी हरिजन-आंदोलन के संबंध में पूना आने वाले थे। उस समय सभा का एक विज्ञापन प्रकाशित हुआ था। उसमे यह लिखा गया था—"हरिजन-

आंदोलन के लिए महात्माजी पूना आने वाले हैं। अतः उनको मान-पत्र देने आदि पर विचार करने के लिए नागरिकों की सभा होगी।" जब सभा प्रारंभ हुई तब यह शंका उपस्थित की गई कि सभा उन्हीं लोगों की है जो गांधीजी को मान-पत्र देने के पक्ष में हैं या सभी लोगों की है, अर्थात् जिन लोगों का यह मत है कि गांधीजी को मान-पत्र न दिया जाय वे भी सभा में सम्मिलित हो सकते हैं या नहीं। इस शंका का समाधान करना अध्यक्ष का कर्तव्य था। अध्यक्ष ने यह निर्णय किया कि सभा सब नागरिकों की है और जो लोग गांधीजी को मान-पत्र देने के विरुद्ध हों उन्हें उसका विरोध करने की स्वतंत्रता है। यद्यपि इस निर्णय से सभा में गड़बड़ी या विरोध हुआ तो भी सभा की सार्वजनिकता बढ़ी और उसे नागरिकों का प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ। यदि अध्यक्ष ने यह निर्णय किया होता कि जो लोग गांधीजी को मान-पत्र देने के पक्ष में हों उन्हीं की सभा है, तो उसकी सदस्यता सीमित हो जाती। क्योंकि उस अवस्था में गांधीजी को मान-पत्र देने के समर्थक ही सभा में उपस्थित होते। यह निर्णय भी विज्ञापित निमंत्रण के अनुसार होता और जो निर्णय किया गया वह भी उसके अनुसार था। अध्यक्ष के निर्णय के अनुसार जो व्यक्ति, सभा-कार्य में सम्मिलित हो सकता है वह सदस्य है, और सदस्यों का समुदाय ही सभा है। सभा में ऐसे व्यक्ति भी उपस्थित हो सकते हैं जो उसके सदस्य न हों; पर वे सभा के कार्य में भाग नहीं ले सकते। प्रत्येक सदस्य सभा के कार्य में सम्मिलित हो सकता है। उसे अध्यक्ष के चुनाव में शामिल होने, प्रस्ताव उपस्थित करने, संशोधन सूचित करने, प्रश्न करने, वाद-विवाद में भाग लेने, वाद-विवाद बन्द करने या सभा में स्थगन-प्रस्ताव उपस्थित करने आदि का अधिकार है। अध्यक्ष मत देने के लिए जो प्रस्ताव उपस्थित करे उस पर मत देने का भी उसे अधिकार है। परन्तु इन सब अधिकारों के प्राप्त होने का यह अर्थ नहीं है कि उसे ये सब या इनमें से कोई काम करना ही चाहिए। उदाहरणार्थ, यह आवश्यक नहीं कि वह प्रस्ताव या संशोधन सूचित करे या भाषण दे। उसी प्रकार अपनी उपस्थिति जतलाने के लिए बीच में ही घोषणा करना, नारे लगाना अथवा प्रश्न करना भी उचित नहीं है। सभा के कार्यों में सहायता करने के उद्देश्य से उचित सहायता करना ही सदस्य का कर्तव्य है।

सदस्य को सभा के कार्य में सम्मिलित होने के अपने अधिकारों का उपयोग सभा के नियमों और अध्यक्ष के अनुशासन के अनुसार करना चाहिए। सभा ऐसा जन-समूह या ऐसी जमात है, और होनी भी चाहिए, जिसमें एक समय एक ही व्यक्ति बोलता है तथा बाकी सब सुनते हैं; उसे ऐसी ही जमात बनाये

रखने की जिम्मेदारी प्रत्येक सदस्य पर होती है। अतः एक से अधिक व्यक्तियों को खड़े होकर बोलना प्रारम्भ नहीं करना चाहिए। अध्यक्ष जिसका नाम ले उसी को बोलना चाहिए। जब वह बोलने लगे तब और किसी को खड़ा नहीं होना चाहिए। वक्ता और श्रोताओं के बीच में से आना-जाना ठीक नहीं। यदि वक्ता से कोई प्रश्न करना हो या नियम-सम्बन्धी प्रश्न उपस्थित करना हो, तो खड़े होकर बोलना चाहिए। जब प्रश्न-कर्ता खड़ा हो जाय तब वक्ता को रुकना और बैठ जाना चाहिए। जब अध्यक्ष निर्णय करने के लिए खड़ा हो जाय तब सबको बैठ जाना और शान्ति रखना उचित है। इसी प्रकार जब कोई वक्ता भाषण कर रहा हो तब आपस में कानाफूसी नहीं होनी चाहिए या मंडलाकार बैठकर गप्प नहीं लड़ानी चाहिए। ऐसा करने से सभा को बाजार या हाट का रूप प्राप्त होता है। इसी प्रकार, सभा में खाने-पीने की चीजें लाकर और खा-पीकर उसे होटल या भोजनालय का रूप देना भी उचित नहीं। वक्ता का भाषण पसन्द न होने के कारण शोर-गुल मचाकर उसे बन्द करना अनुचित है। जब कोई वक्ता बोल रहा हो तब उससे बार-बार प्रश्न करके उसे टोकना बुरा है। उसके भाषण पर साथ-ही-साथ टीका-टिप्पणी नहीं होनी चाहिए अर्थात् ज्यों ही वह कोई वाक्य कहे त्यों ही उस पर आलोचना शुरू न करें। सभा-स्थल द्वंद्व-युद्ध करने का स्थल नहीं है। हाँ, एकाध विनोदपूर्ण, व्यंग्यपूर्ण, श्लेषयुक्त या विरोध-सूचक शब्द या वाक्य कहना अनुचित नहीं है, बल्कि वह सभा का वातावरण अच्छा रखने में सहायक ही होता है। गैर-जिम्मेदारी की कोई बात चिल्लाकर कहने से सभा का वातावरण ही नहीं बिगड़ जाता बल्कि सभा का रंग-भंग भी हो जाता है। एक बार पूना के एक प्रसिद्ध व्यक्ति के गुजर जाने पर शोक-सभा हो रही थी। सभा का वातावरण शान्त और गम्भीर था, पर एक माननीय सदस्य ने अध्यक्ष के अन्तिम भाषण के समय एक अकारण और अप्रासंगिक प्रश्न करके उन्हें खिझा दिया। इससे सभा अस्त-व्यस्त हो गई और शोक-सभा दूसरे ही अर्थ में सिद्ध हुई।

सभा की व्यवस्था का उत्तरदायित्व संयोजकों पर होता है। यह ध्यान में रखकर सदस्यों को अपने नियत स्थान पर ही बैठना उचित होता है। शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने में सदस्यों को पूरी तरह हाथ बँटाना चाहिए। निश्चित मार्ग से आना और जाना चाहिए। जिस समय सभा हो रही हो, उस समय यदि कहीं जाना हो तो शान्तिपूर्वक जाना चाहिए। यदि बाहर जाने का मार्ग अध्यक्ष या भाषण देने वाले वक्ता के सम्मुख होकर गया हो तो जरा झुककर

ही जाना ठीक है। पर्चियाँ फेंककर, सभा को अस्त-व्यस्त करके या तोड़-फोड़ करके नहीं जाना चाहिए। संयोजक, सभा का आयोजन करके श्रोताओं को ज्ञान-प्राप्ति, मत-प्रदर्शन और मनोरंजन का अवसर देते हैं। इसके लिए श्रोताओं को संयोजकों के प्रति कृतज्ञ होकर कम-से-कम इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उनके किसी काम से संयोजकों को हानि न उठानी पड़े। सभा में आते और सभा से जाते समय भीड़ करना, खींचा-तानी करना, व्यर्थ चिल्लाना, सभा समाप्त होते ही व्याख्यान-मंच की ओर दौड़ना, प्रमुख वक्ता और अध्यक्ष से उनके हस्ताक्षर लेने के लिए भीड़ लगाना अनुचित है। सभा के स्वयं-सेवकों की बात माननी ही चाहिए। यदि कोई स्वयं-सेवक उजड्ड हो या अशिष्टता का बर्ताव करे तो संयोजक या अध्यक्ष से उसकी शिकायत करनी चाहिये। उससे कहा-सुनी करने से सभा भंग होती है तथा सभा भंग होने से अनेकों को निराशा होती है। यदि कोई स्वयं-सेवक आपसे शान्त रहने के लिए कहे तो उसमें आपके नाराज होने या बुरा मानने की कोई बात नहीं। यदि आपसे आपका प्रवेश-पत्र माँगा जाय तो आपको उसमें अपना अपमान नहीं समझना चाहिए। गांधीजी पर भी कांग्रेस के अधिवेशनों में अपना प्रवेश-पत्र दिखलाने की कई बार नौबत आई थी। सभा सदस्यों की होती है, इसलिए उसकी प्रतिष्ठा की रक्षा प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य है। चूँकि सभा के मत से सदस्य पृथक् नहीं होता इसलिए यह देखना भी उसका कर्तव्य है कि सभा का मत उचित ढङ्ग से, पक्ष और विपक्ष की चर्चा के बाद, व्यक्त किया जाय। अनुशासन और नियम के अनुसार विरोध करने का अधिकार प्रत्येक सदस्य को है, परन्तु अनु-शासन-हीनता का आश्रय लेने वाला कोई भी सदस्य अथवा उसका गुट्ट, यदि जान-बूझकर बाधा डालता है तो वह इस सभा के प्रति बागी समझा जायगा। कुछ सदस्यों या किसी अक्खड़ सदस्य का सभा के कार्य में रुकावट पैदा करके सभा भंग करना, नैतिकता के विरुद्ध तो है ही परन्तु यह अन्य सदस्यों के प्रति भी घोर अन्याय है। ऐसे विरोधियों को आवश्यकता पड़ने पर बल प्रयोग द्वारा सभा से बाहर निकाल देना न्याय-संगत है। यह अनुभव-सिद्ध बात है कि यदि पहले से लोगों की सहानुभूति हो, तो भी अनुशासन के विरुद्ध आचरण करने से वह नष्ट हो जाती है। और पहले से लोगों की सहानुभूति न भी हो तो अनुशासन तथा नियम के अनुसार, दृढ़ता पूर्वक विरोध करने से, वह प्राप्त हो जाती है।

वक्तृता—सभा की शान्ति और व्यवस्था आदि सभा में होने वाली चर्चा के अनुकूल वातावरण पैदा करने के लिए होती हैं। सभा का मुख्य कार्य चर्चा

सभा का आयोजन किया हो, विशेषतः सब दलों की शोक-सभा का, और उनका यह उद्देश्य हो कि उसमें सब लोग शामिल हों तो उन्हें भी अत्युक्ति से बचना चाहिए तथा शोक-सभा को प्रचार-सभा का रूप नहीं देना चाहिए। यदि किसी की मृत्यु का उपयोग अपने प्रचार के लिए करना हो तो सभा न करके मार्क एण्टोनी[1] की भाँति एकत्र हुए लोगों को अपनी वक्तृता से क्षुब्ध या उत्तेजित करना अनुचित नहीं है।

शोक-सभा की मर्यादा अभिनन्दन या सम्मान के लिए होने वाली सभा पर लागू नहीं होती। यदि सार्वजनिक सभा में सम्मान करने का प्रस्ताव स्वीकृत होने पर सम्मान होने वाला हो, तो जिसे वह प्रस्ताव स्वीकृत न हो उसे उसका विरोध करने का अधिकार है। उसका विरोध करने में औचित्य की सीमा का उल्लंघन होना या अप्रासंगिकता का आना अवश्यक नहीं है। किसी का जो अभिनन्दन किया जाता है वह उसके कार्य के लिए किया जाता है। कार्य सार्वजनिक होने के कारण उसका गुण सबकी दृष्टि में एक-सा नहीं हो सकता। कुछ लोगों का यह भी मत हो सकता है कि वह सामाजिक हित के सर्वथा प्रतिकूल है। यदि यह अभीष्ट हो कि अभिनन्दन या सम्मान सार्वजनिक रूप से हो, तो सम्भाव्य विरोध के लिए पहले से ही तैयार रहना चाहिए। सार्वजनिक व्यक्ति के सम्मान को उसके व्यक्तिगत गुणों के सम्मान का फीका रूप वस्तुतः प्राप्त नहीं होता। उसके कार्य की सुगन्ध उसके जीवन में से उत्पन्न होती है। किसी का कार्य धर्म-निष्ठा का सूचक हो सकता है, पर सम्भव है कि राष्ट्रीयता की दृष्टि से किसी आदमी को वह पसन्द न हो। किसी का कार्य समाज में समता स्थापित करने वाला और दलितों का उद्धार करने वाला हो सकता है, पर सम्भव है कि धर्म की दृष्टि से किसी को वह पसन्द न हो। अतः सार्वजनिक सम्मान के अवसर पर मतभेद प्रकट करना अनुचित नहीं है। ऐसे अवसर पर मतभेद व्यक्त करने का अधिकार है, पर इसका यह अर्थ नहीं कि उसे व्यक्त करने में सौजन्य, सहिष्णुता या सद्भावना का त्याग करना ही है। यह भी देखा गया है कि विरोध-रूपी नमक से सम्मान-रूपी पक्वान्न में कुछ स्वाद ही उत्पन्न होता है। इष्ट मित्रों और प्रेमियों की ओर से प्रकट रूप से सम्मान या अभिनन्दन होने पर भी उसे वस्तुतः सार्वजनिक रूप नहीं प्राप्त होता। यदि सभा करके और उसमें सम्मान करने का प्रस्ताव स्वीकृत कराकर सम्मान करना हो तो नियम और अवसर के अनुसार मतभेद प्रकट करना उपयुक्त है।

---

१. शेक्सपियर के 'जूलियस सीजर' नाटक का एक पात्र

वक्तृता अवसर के अनुसार आक्रामक, संरक्षणात्मक, विश्लेषणात्मक, भावनात्मक, वर्णनात्मक और उत्साहवर्धक होनी चाहिए। वक्ता को असभ्यता या अविवेक की बात नहीं कहनी चाहिए, उसे झूठ नहीं बोलना चाहिए, विनयपूर्वक श्रोताओं के मन में पैठकर उन्हें अपनी ओर आकृष्ट कर लेना चाहिए। इसी में वक्तृता का सार या तत्त्व निहित है। वक्तृता प्रसंगानुसार, अर्थपूर्ण और साध्य-साधक होनी चाहिए। अनुरूप या उपयुक्त भाषा में विचार व्यक्त करने से वक्तृता को श्रेष्ठता प्राप्त होती है और वह प्रभावकारी सिद्ध होती है। ज्ञान, वक्तृता की नींव या आधार-स्तम्भ है। वक्तृता की शक्ति सर्वथा ईश्वर की देन नहीं है। अभ्यास और प्रयत्न से वक्तृता की कला अर्जित की जा सकती है। विषय की जानकारी और उसका अधिक-से-अधिक ज्ञान, प्रयत्न और अभ्यास का फल है। श्रोता साधारणतः सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करते हैं। विचारणीय विषय का ज्ञाता या विशेषज्ञ कहलाने वाला व्यक्ति, यदि टूटे-फूटे शब्दों में अपने विषय पर भाषण करे तो भी श्रोता उसे सुन लेते हैं। यदि उनके ज्ञान या अनुभव की सचमुच वृद्धि करने वाले कुछ विचार टूटे-फूटे शब्दों में ही प्रकट किये जायँ तो भी वे उन्हें ध्यान पूर्वक सुनते हैं। सहृदय श्रोता, वक्तृता का मूल्य उसकी हार्दिकता के अनुसार आँकते हैं। कुशल वक्ता हो लेकिन हो भाड़े का टट्टू तो श्रोताओं के मन पर उसका कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ सकता। पहले तैयारी किये बिना भाषण नहीं देना चाहिए। किसी विषय पर विचार किये बिना भाषण करना वैसा ही है जैसा गाँठ में पैसा न होने पर मोल-तोल करना। जब वक्ता केवल अपनी कीर्ति या लोक-प्रियता पर भरोसा रखकर, व्याख्यान-मंच पर खड़ा होकर भाषण करना अपने हाथ का मैल समझता है और तैयारी किये बिना बार-बार भाषण करता है, तब उसकी बौद्धिक प्रगति कम होती है और उसकी लोकप्रियता भी घट जाती है। प्रत्येक अवसर पर प्रत्येक विषय पर कुछ-न-कुछ बोलने से वक्ता की कीर्ति की वृद्धि नहीं होती। कहने के लिए कोई अच्छी बात होनी चाहिए और अच्छे ढंग से कहने की योग्यता होनी चाहिए। यदि ये चीजें हों तो भाषण करना चाहिए—एक अच्छा वक्ता होने के लिए यह आवश्यक है। वक्ता को यह नहीं भूलना चाहिए कि वक्तृता का उद्देश्य श्रोताओं के मन को प्रसन्न करके किस ओर प्रवृत्त करना है। यदि श्रोता कोई शंका-सन्देह प्रकट करें तो वक्ता को उनसे झगड़ना नहीं चाहिए। उसे उनसे घृणा नहीं करनी चाहिए, उसे उनकी खुशामद करनी चाहिए। पर इसका यह अर्थ नहीं कि उसे प्रसंग या विषय के सम्बन्ध में कोई ऐसी ग़लत बात उनके सामने रखनी चाहिए जो उन्हें पसन्द हो। उसका कर्तव्य यह है कि वह श्रोताओं के स्वाभिमान

को चोट पहुँचाये बिना प्रामाणिक बात कहे।

जिसके पास कहने योग्य कोई बात हो उसी का बोलना या भाषण करना उचित होता है। विषय और समय की सीमा का ध्यान रखकर भाषण करना ठीक है। जो भूमिका हो उसके अनुसार भाषण हो। प्रस्ताव उपस्थित करते समय अनुमोदन या विरोध करते हुए, नियम-सम्बन्धी प्रश्न, संशोधन, सभा-स्थगित कराने के लिए भाषण करते हुए, प्रस्तुत विषय और निश्चित समय की सीमा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। अध्यक्ष को धन्यवाद देते समय स्वीकृत प्रस्ताव का विवेचन करना सर्वथा असंगत है। वह तो भोजन के बाद मुख-शुद्धि के लिए पान, सुपारी आदि न लाकर फिर पक्वान्न लाने के समान है। उकता जाना बिलकुल स्वाभाविक है। यदि श्रोता अधीर हो जायँ तो उन्हें इसके लिए दोष नहीं दिया जा सकता। वक्ता को ही समय का विचार करके अपने भाषण का ख़ाका तैयार कर लेना उचित है। उसे पहले आकर्षक ढंग से विचारणीय विषय की प्रस्तावना करके फिर उसका विवेचन करना चाहिए। प्रभाव-जनक रीति से अपने भाषण की समाप्ति करना ही ठीक होता है। वक्ता की योग्यता का पता इससे चलता है कि श्रोताओं को उसके भाषण सुनने की साध बनी रहे। जिस प्रकार अभिनेता के लिए यह उचित है कि वह दर्शकों द्वारा जब 'वंस मोर' हो रहा हो, रंग-भूमि से चला जाय और अंडों तथा पकौड़ियों द्वारा मार खाने की नौबत न आने दे, उसी प्रकार वक्ता के लिए भी यह उचित है कि वह जनता के ऊबने से पहले ही भाषण समाप्त कर दे। यदि कुछ समय तक भाषण सुनने के बाद श्रोता ताली बजाने लगें, तो उन्हें इसके लिए दोष नहीं दिया जा सकता। जब वक्ता श्रोताओं को अप्रिय लगने वाली बात भी चतुरता से कहता है तब वे उसे सुन लेते हैं। वक्ता को बिलकुल भाषण न करने देना उसके साथ अन्याय करना है और इसमें सभा की प्रतिष्ठा नहीं। साथ ही, यह कहना भी श्रोताओं के साथ अन्याय है जो वक्ता चाहे जैसा और चाहे जितनी देर भाषण करे। वक्ता को यह नहीं भूलना चाहिए कि सभा वक्तृता की पाठशाला नहीं, बल्कि उसका परीक्षा-केन्द्र है। श्रोता एक ही विचार या तर्क बार-बार सुनना पसन्द नहीं करते। जिस प्रकार नाटक के अंकों का विकास होता है उसी प्रकार सभा की कार्यवाही का विकास भी हो तो ठीक है। सभा का कार्य गति-शील होना चाहिए। मत-गणना के समय, सभा की कार्यवाही में लोगों की तल्लीनता अपनी चरम सीमा को पहुँच जानी चाहिए। सभा का संचालन इस प्रकार किया जाय जो अभीष्ट सिद्धि में अड़चन न पड़े। वक्ताओं को भी अपने भाषणों में ऐसा ही प्रयत्न करना उचित है।

वक्ता को खड़े होकर भाषण करना चाहिए। अध्यक्ष की आज्ञा का पालन करना वक्ता का धर्म है। अध्यक्ष की आज्ञा का पालन करने से उसकी प्रतिष्ठा घटती नहीं, बल्कि बढ़ती ही है। यदि अध्यक्ष कोई वाक्य वक्ता को वापिस लेने के लिए कहे तो उसे वापस ले लेना चाहिए। यदि अध्यक्ष का निर्णय उचित हो तो वक्ता के उसे मान लेने से लोग उसकी ग़लती भूल जाते हैं। यदि अध्यक्ष का निर्णय अनुचित हो तो वक्ता के उसे मान लेने का परिणाम उसके अनुकूल ही होता है। सभा के स्थान, सभा की रचना और उपस्थित श्रोतृ-वृन्द का विचार करके वक्ता को अपनी आवाज़ का नियमन करना चाहिए। आवाज़ का आरोह और अवरोह अर्थात् चढ़ाव और उतार भाषण के विचारों और भावनाओं के अनुरूप होना चाहिए। धारा-प्रवाह भाषण ऐसा भाषण नहीं है जो एक ही आवाज़ या स्वर में किया जाय। वक्ता को श्रोताओं की ओर देखकर तथा उनकी आँखों और भाव-भंगिमा या चेष्टाओं से उनके मन पर पड़ने वाला प्रभाव मालूम करके, अपने भाषण की गति न्यूनाधिक करनी चाहिए। भाषण श्रोताओं को ठीक जँचना चाहिए। वक्ता को इतनी गति या तेज़ी से भाषण करना चाहिए कि श्रोता उसे आसानी से समझ सकें। उसके विचारों और तर्क-वितर्कों की सार्थकता तो तभी सिद्ध होती है, जब वे श्रोताओं की समझ में आ जायँ—उनके मन में अच्छी तरह बैठ जायँ और उनके अनुभव के अनुसार उन्हें ठीक जँचें। श्रोता हास्य या करतल-ध्वनि करके या अन्य किसी प्रकार से उसकी स्वीकृति प्रकट करें। भाषण की भाषा ऐसी होनी चाहिए जिसे श्रोतृ-समूह में से अधिकांश लोग आसानी से समझ सकें। अश्लील और ऊल-जलूल भाषा को जनता की भाषा समझना भूल है। बाज़ार में जब कुछ आदमी एकत्र होते हैं, उस समय वे जिस भाषा में आपस में बातचीत करते हैं वही जनता की भाषा है। जनता की भाषा का प्रधान गुण या विशेषता यह है कि वह आसानी से समझ में आती है। वह समझी जाने के लिए ही बोली जाती है। क्लिष्ट या दुर्बोध भाषा को ज्ञान का प्रमाण मानना पंडितों की अहम्मन्यता ही है। सार्वजनिक सभा पाण्डित्य-प्रदर्शन का स्थान नहीं है। उसमें तो लोगों को कोई बात समझाकर उनके मन को किसी ओर प्रवृत्त करना होता है। अतः उसमें ऐसे गहन विचार उपस्थित करना, जो श्रोताओं की ग्रहण-शक्ति के बाहर हों, ऐसे तर्क करना, जो उनकी बुद्धि के परे हों तथा ऐसी भाषा का उपयोग करना, जिसे सुनते ही वे उसका अर्थ आसानी से न समझ सकें, निरर्थक होता है। भाषण में छोटे-छोटे वाक्यों में आशय अधिक और थोड़े शब्दों में अर्थ अधिक हो सकता है। भाषण पाणिनि का सूत्र नहीं है और न

वह लम्बा-चौड़ा असम्बद्ध पुराण ही है। जिस प्रकार वेश-भूषा में उपयुक्तता हो उसी प्रकार भाषण में भी उपयुक्तता होनी चाहिए। दिल-बहलाने व केवल मनोरंजन के लिहाज से वही भाषण अच्छा होता है जो यथार्थ उपमाओं और मार्मिक तर्कों से युक्त तथा आकर्षक हो।

प्रासंगिक, उपयुक्त और प्रसादगुणयुक्त भाषण प्रयत्न-साध्य है। होनहार वक्ताओं को घर पर अपना भाषण लिख लेना चाहिए और तब उसे एक ओर रखकर एकान्त में बोलने का अभ्यास करना चाहिए। जिन लोगों ने वक्तृत्व-कला में नाम कमाया है उन्होंने प्रयत्न और अभ्यास से यह कला प्राप्त की है। कवि को किसी अनुभूतिपूर्ण घटना से काव्य-रचना के लिए प्रेरणा भले ही प्राप्त हो, लेकिन पिंगल, व्याकरण आदि का ज्ञान होना आवश्यक है। मन में किस कल्पना के उत्पन्न होने और उसे वाणी के द्वारा व्यक्त कर देने से ही काव्य-रचना नहीं होती। यह चमत्कार या करामात आदि कवि वाल्मीकि के बाद किसी से नहीं हो सकी है। अतः मन में उत्कृष्ट विचार तथा मार्मिक तर्क उत्पन्न होने पर उन्हें उचित ढंग से और उपयुक्त भाषा से अलंकृत करना होता है। यह सब-कुछ तो प्रयत्न-साध्य है। साधारण मनुष्य भी अनुभव से वर्तमान प्रसिद्ध वक्ताओं के भाषणों, अध्ययन और निरन्तर मनन से वक्तृत्व-कला प्राप्त कर सकता है। लिखित भाषण का प्रभाव श्रोताओं पर नहीं पड़ता। व्यवस्थापिका-सभाओं में तो लिखित भाषण पढ़ने की मनाही भी है। वाद-विवाद या चर्चा तो एक प्रवाह के समान है, अतः उसमें उत्पन्न होने वाले प्रसंगों की पूरी-पूरी कल्पना पहले नहीं की जा सकती। किसी वाक्य या तर्क से, तीव्र विरोध का पता लगने से अथवा किसी अन्य घटना से चर्चा को अकल्पित रूप प्राप्त होता है, और तब लिखित भाषण असंगत और अर्थ-शून्य हो जाता है। मौखिक भाषण करने से वक्ता का हृदय श्रोताओं के हृदय के साथ एक सूत्र में बँध जाता है और इससे उसे उत्साह प्राप्त होता है। वक्ता को श्रोताओं से स्फूर्ति मिलती है। वक्ता और श्रोताओं की दृष्टि जब एकाकार होती है तो वक्ता को आत्मीयता व अभिन्नता का भान होता है। वह श्रोताओं के हृदय में पैठ जाता है। लिखित भाषण पढ़ने से वक्ता को न यह उत्साह प्राप्त होता है, न यह स्फूर्ति मिलती है और न उक्त अनुभव ही होता है। लिखित भाषण पढ़ने वाला वक्ता ऐसे नाविक के समान है, जो नदी के दोनों छोरों पर गड़े हुए खंभों से रस्सी बाँधकर अपनी नाव चलाता है। जिस प्रकार उसकी नाव का रास्ता पूर्व निश्चित होता है उसी प्रकार लिखित भाषण का रूप भी। लेकिन मौखिक भाषण करने वाला वक्ता ऐसा नाविक है जो हाथों में पतवार लेकर उमड़ती हुई लहरों

विषय पर अन्तिम भाषण करे। इस भाषण में उसे प्रस्ताव और संशोधनों की संक्षेप में चर्चा करके यह स्पष्ट करना चाहिए कि कौन सा संशोधन स्वीकृत होने पर प्रस्ताव का क्या रूप होगा। उसका कर्तव्य है कि भिन्न-भिन्न दृष्टियों से व्यक्त किये हुए विचारों का सारांश बताए। थोड़े में ही विषय का विवेचन निष्पक्ष बुद्धि से किया जाय। अध्यक्ष का भाषण ऐसा हो कि उपस्थित विषय पर उसका मत प्रकट हो सके। कभी-कभी यह आवश्यक होता है कि अध्यक्ष अपना मत स्पष्ट कर दे। बहुत से अवसरों पर श्रोताओं की ओर से इसके लिए अनुरोध भी किया जाता है। अध्यक्ष-पद से प्राप्त होने वाली प्रतिष्ठा का उपयोग करके सभा के मत पर दबाव डालना उचित नहीं है। कुशल अध्यक्ष अपने भाषण में, अपनी विचार-पद्धति से, दोनों पक्षों के प्रति समान बरताव करके सभा को यह दिखला सकता है कि कौन सा मार्ग उत्तम और हितकर है। अध्यक्ष मुख्यतः सभा का अनुशासक है, वह सभा का नेता है उसका कार्य सभा का पथ-प्रदर्शन करना है। अपना मत प्रकट करने का उसे पूरा अधिकार है, लेकिन अपने मत पर उसे प्रचारात्मक भाषण नहीं करना चाहिए। इसका कारण यह है कि उसके भाषण पर बहस नहीं होती—सभा को उसके तर्क-वितर्कों को गलत या अनुचित सिद्ध करने का अवसर नहीं मिलता। वह सावधानी से भाषण की सब मर्यादाओं की रक्षा और सभा के सब नियमों और निर्देशों का पालन करे। उसे खड़े होकर भाषण करना चाहिए—उसे अपने निर्णय की घोषणा भी खड़े होकर करनी चाहिए। इस प्रकार वह सभा की मर्यादा की रक्षा करे।

मत-गणना—प्रस्तुत विषय पर अन्तिम भाषण समाप्त करके अध्यक्ष को उस पर मत लेने चाहिएँ। यदि प्रस्ताव पर अनेक संशोधन हों तो उनके महत्त्व का विचार करके, उन पर वोट लेने की दृष्टि से, क्रम निश्चित करना चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि जिस क्रम से वे उपस्थित किये गए हों उसी म से उन पर वोट भी लिये जायँ। सभा के बहुसंख्यक लोगों के मत का अनुमान करके उसके अनुरूप होने वाले संशोधनों पर वोट लेने चाहिएँ। उसके स्वीकृत या अस्वीकृत होने से बहुत से संशोधन गिर जाते हैं या असंगत सिद्ध होते हैं। उससे मत-गणना जल्दी समाप्त होती है। मत-गणना का विस्तृत विचार अगले प्रकरण में किया गया है। सार्वजनिक सभा के सामने उपस्थित प्रस्ताव के अधिक संशोधन नहीं होते। फिर भी, जितने संशोधन हों उनका नियमानुसार निपटारा होना चाहिए। यदि प्रस्ताव के अन्तर्गत संशोधन किया गया हो तो अन्त में संशोधन-सहित प्रस्ताव पर मत लेने चाहिएँ। उस पर सभा जो मत व्यक्त करे

तब तक संशोधन सूचित भी किये जा सकते हैं और वापिस भी लिये जा सकते हैं। हाँ, संशोधन वापिस लेने के लिए सभा की अनुमति की आवश्यकता होती है। जब कोई प्रस्ताव या संशोधन सभा के सामने नियमानुसार उपस्थित हो जाता है तब उसे उपस्थित करने वाला भी सभा की अनुमति के बिना उसे वापिस नहीं ले सकता। अनेक अवसरों पर, उपस्थित विषय पर मत लेने का कार्य प्रारंभ होने के पहले, अध्यक्ष या अन्य सदस्य, एकमत स्थापित करने के लिए, दोनों पक्षों में मेल या समझौता कराने का प्रयत्न करते हैं। समझौता होने पर जो कुछ तय हो, अध्यक्ष को उसके अनुसार होने वाला संशोधन उपस्थित करने की अनुमति देनी चाहिए। उसे उस संशोधन पर बहस या भाषण नहीं होने देना चाहिए। जब ऐसा संशोधन सभा के सामने आता है तब अन्य सब संशोधन वापिस ले लिये जाते हैं। जब वह स्वीकृत हो जाता है तब वे रद्द हो जाते हैं। इस प्रकार का संशोधन भी नियम के अनुसार हो। वह सुसंगत, घोषित विषय के अनुकूल तथा बहस में जो-कुछ हुआ हो उसके भी अनुसार होना चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि अध्यक्ष, समझौते के लिए या संशोधन वापिस लेने के प्रयत्न के लिए समय दे। उससे यह आशा की जा सकती है कि वह इस बात को ध्यान में रखकर काम करेगा जिससे सभा में मतैक्य होना उसे अभीष्ट है।

अनेक अवसरों पर लोग कुछ-न-कुछ बोलने के लिए, प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए या प्रचार के लिए संशोधन उपस्थित करते हैं। ऐसे लोगों से संशोधन वापिस लेने का अनुरोध करने से उन्हें महत्त्व प्राप्त होता है। विषय का महत्त्व, मतैक्य की अभीष्टता और प्रसंग का विचार करके, आवश्यकता होने पर, संशोधन उपस्थित करने वालों से ऐसा अनुरोध करना उचित होता है; नहीं तो सभा का समय व्यर्थ ही नष्ट होता है। ऐसे संशोधनों पर मत लेकर उनका शीघ्र निपटारा किया जा सकता है।

कुछ संशोधन प्रस्ताव को अच्छा रूप देने के लिए और उसे अर्थपूर्ण तथा प्रभावकारी बनाने के लिए सरल भाव से उपस्थित किये जाते हैं। प्रस्ताव उपस्थित करने वाले को उचित संशोधन स्वीकार करने चाहिएँ। ऐसे संशोधन स्वीकार किये जाते हैं। पर यदि प्रस्तावक कोई संशोधन स्वीकार कर ले तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि सभा ने उसे स्वीकार किया है। ऐसा तभी कहा जा सकता है जब कि सभा उसके पक्ष में प्रत्यक्ष मत दे।

जिस विषय, प्रस्ताव या संशोधन पर मत लेना हो अध्यक्ष को वह पढ़कर सुनाना चाहिए। प्रायः संशोधन उपस्थित करने वाले के नाम का उल्लेख ही

काफी होता है, संशोधन पढ़ने की आवश्यकता नहीं होती। अध्यक्ष यह कहकर भी संशोधन पर वोट ले सकता है कि अब मैं अमुक सज्जन के संशोधन पर मत लेता हूँ। उसे यह कहना चाहिए कि जो लोग इस प्रस्ताव, संशोधन या विषय के पक्ष में हों, वे हाथ ऊँचा करें। जब लोग हाथ ऊँचे करें तब सभा-स्थान को भली भाँति देखकर हाथों की संख्या का स्थूल अनुमान करना चाहिए। फिर लोगों से हाथ नीचे कर लेने के लिए कहना चाहिए। इसके बाद यह कहना चाहिए कि जो लोग इस प्रस्ताव, संशोधन या विषय के विपक्ष में हों वे हाथ उठायँ। जब वे हाथ उठायँ तब सभा-स्थान को भली भाँति देखकर उनके हाथों की संख्या का भी स्थूल अनुमान करना चाहिए और फिर उनसे हाथ नीचे कर लेने के लिए कहना चाहिए। यदि विपक्ष में कोई हाथ न उठाय तो यह निर्णय घोषित करना चाहिए कि प्रस्ताव (संशोधन या विषय) सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ। कभी-कभी लोग प्रस्ताव पसन्द नहीं करते, पर उसका विरोध भी नहीं करते और वे उसके संबंध में तटस्थ रहते हैं। अध्यक्ष के स्वयं यह पूछने की कोई आवश्यकता नहीं कि तटस्थ कौन हैं। यदि वह स्वयं या किसी के कहने से यह पूछे और उसे यह दिखाई दे कि कुछ लोग तटस्थ हैं तथा यदि किसी ने विपक्ष में हाथ न उठाया हो, तो उसे यह घोषित करना चाहिए कि प्रस्ताव निर्विरोध स्वीकृत हुआ। यदि अध्यक्ष यह समझे कि पक्ष में उठाए हुए हाथ विपक्ष में उठाए हुए हाथों से संख्या में अधिक हैं, तो उसे यह निर्णय घोषित करना चाहिए कि प्रस्ताव (संशोधन या विषय) बहुमत से स्वीकृत हुआ। यदि वह यह समझे कि पक्ष में उठाए हुए हाथ कम हैं तो उसे यह घोषित करना चाहिए कि प्रस्ताव बहुमत से अस्वीकृत हुआ। जब अध्यक्ष इस बात का निश्चय न कर सके कि पक्ष में अधिक हाथ उठाए गए या विपक्ष में, तब उसे ऊपर लिखे अनुसार लोगों से फिर हाथ उठाने का अनुरोध करना चाहिए। फिर दोनों दलों का एक-एक प्रतिनिधि अपने साथ लेकर, पक्ष तथा विपक्ष में उठाए हुए हाथों की अलग-अलग गिनती करनी चाहिए। इस प्रकार तत्पश्चात् निर्णय करना उचित है। निर्णय घोषित करते ही यदि अध्यक्ष को यह ज्ञात हो कि गिनती में गलती हुई है, तो उसे दुबारा गिनती करनी चाहिए। उसे ऐसा करने का अधिकार है पर यह अधिकार तुरन्त काम में लाया जाना चाहिए। निर्णय घोषित करने के बाद उसका यह अधिकार समाप्त हो जाता है।

अध्यक्ष जो निर्णय घोषित करे वह यदि कुछ लोगों को अस्वीकृत हो तो उन्हें तुरन्त 'वोट वोट' कहकर 'वोट' की माँग करनी चाहिए। 'वोट' का

अर्थ एक-एक मत गिनकर मतों की संख्या निश्चित करना या मतों की फिर गिनती करना है। जब तक 'वोट' की माँग न की जाय तब तक अध्यक्ष को वह स्वीकार नहीं करना चाहिए। 'वोट' की माँग वस्तुतः उस दल को करनी चाहिए जिसके विरुद्ध निर्णय हुआ हो। अतः जिस दल के अनुकूल निर्णय हुआ हो यदि वह दल यह माँग करे तो अध्यक्ष का इसे अस्वीकार करना अनुचित नहीं है। जिस दल के विरुद्ध निर्णय हुआ हो यदि वह दल यह माँग करे तो अध्यक्ष को यह स्वीकार करनी चाहिए। यदि पक्ष और विपक्ष में उठे हुए हाथों की संख्याओं में बहुत अधिक अन्तर हो और अध्यक्ष को इस बात का विश्वास हो गया हो कि 'वोट' की माँग करने वालों का उद्देश्य शुद्ध और सरल नहीं है, तो सार्वजनिक सभा की परिस्थिति का विचार करते हुए प्रसंगानुसार इसे अस्वीकार करना अनुचित नहीं है। अन्य अवस्थाओं में यह स्वीकार करना चाहिए। यदि सभा-भवन ठसाठस भरा हो, निश्चित समय हो जाने के कारण उसे खाली करना हो, उसमें मतों की गिनती करना आसान न हो तथा इसमें गड़बड़ होने की संभावना हो, तो यह माँग अस्वीकार करना उचित होगा। 'पोल' की माँग का तात्पर्य अध्यक्ष के निर्णय के विरुद्ध सभा से अपील है—सभा से स्वयं निर्णय करने का अनुरोध है। सार्वजनिक सभा में 'वोट' अर्थात् मत-गणना तभी करनी चाहिए जब उसके लिए व्यवस्था हो और वह संभव हो। सन्दूक रखकर, निर्वाचन-पत्र या चुनाव के टिकट या पर्चियाँ बाँटकर अथवा हस्ताक्षर लेकर मत-गणना करना सार्वजनिक सभा में संभव नहीं होता। मत-गणना का निश्चय हो जाने पर अध्यक्ष को प्रस्ताव के समर्थकों से, एक ओर और विरोधियों से दूसरी ओर खड़े होने के लिए कहें। दोनों दलों के बीच में कुछ जगह रखकर उसमें स्वयंसेवकों को खड़ा करना चाहिए। एक भाग से दूसरे भाग में आना-जाना बन्द कर देना चाहिए। फिर, दोनों दलों में से दो-दो प्रतिनिधि चुने जायँ। इस प्रकार चुने हुए चार प्रतिनिधियों में से दोनों दलों का एक-एक प्रतिनिधि ले लें। उन दो प्रतिनिधियों से दोनों ओर खड़े हुए आदमियों की गणना करने के लिए कहना चाहिए। जब गणना समाप्त हो जाय तब प्रत्येक दल के आदमियों की गणना करने वालों से यह लिखवा लेना चाहिए कि उस दल में कितने आदमी हैं। जिस समय यह काम हो रहा हो उस समय सभा में शान्ति रखने के लिए आवश्यक सावधानी का ध्यान रखा जाय और इस काम की निगरानी करनी चाहिए। मत-गणना करने वालों (Tellers) से समर्थकों और विरोधियों की संख्या लिखवाकर अध्यक्ष को निर्णय घोषित करना चाहिए। जब निर्णय घोषित हो जाता है तब उसके सम्बन्ध में अध्यक्ष के

अधिकार समाप्त हो जाते हैं। जब तक अध्यक्ष निर्णय की घोषणा नहीं करता तब तक सभा के मत को वैधता और प्रामाणिकता नहीं प्राप्त होती।

यदि मताधिकार के सम्बन्ध में या मतदान की प्रणाली के सम्बन्ध में किसी को आपत्ति हो, तो मत या वोट लेने का काम प्रारम्भ होने से पहले ही आपत्ति उठाना उचित है। अध्यक्ष उसके विषय में जो निर्णय करे वह अन्तिम निर्णय है। सभा के प्रकाशित निमंत्रण में सभा का जो रूप बताया गया हो उसके अनुसार अध्यक्ष इस बात का निश्चय करता है कि किन लोगों को मत देने का अधिकार है। जिन्हें अधिकार प्राप्त हो वे ही लोग मत दे सकते हैं। सार्वजनिक सभा में अनुपस्थित व्यक्तियों की ओर से मत नहीं दिये जा सकते। सार्वजनिक सभा में मत देने का अधिकारी व्यक्ति स्वयं उपस्थित होकर ही मत दे सकता है। उसमें एक आदमी के एवज में उसका दूसरा प्रतिनिधि मत नहीं दे सकता। एक आदमी को एक ही मत देने का अधिकार है।

सार्वजनिक सभा में प्रायः ऐसा अवसर उपस्थित नहीं होता, जब प्रस्ताव के पक्ष और विपक्ष में बराबर-बराबर मत मिलने के कारण, अध्यक्ष को अधिक या निर्णायक मत देने की आवश्यकता हो। नियमानुसार प्रायः सार्वजनिक सभा के अध्यक्ष को अधिक मत देने का अधिकार नहीं होता। उसे अपना मत भी अन्त में ही जोड़ना चाहिए। यदि अपना मत देने से पक्ष और विपक्ष में बराबर-बराबर मत मिलते हों, तो उसे न देने से जो स्थिति रहती हो, उसके अनुसार अध्यक्ष को निर्णय करना चाहिए। बाद में स्पष्टीकरण करते हुए उसे यह कह देना चाहिए कि उसका मत क्या था और वह उसने क्यों नहीं दिया। अध्यक्ष अपने मत दान द्वारा उलझन पैदा करके सभा की कार्रवाई में गड़बड़ न होने दे। इसी प्रकार अध्यक्ष निर्णायक मत देने का अधिकार न होते हुए भी, मत देकर सभा के निर्णय को अवैध और अप्रामाणिक न होने दे। जहाँ अध्यक्ष को निर्णायक मत देने का अधिकार हो वहाँ उसे साधारण स्थिति (Status quo) अर्थात् सभा के सामने विषय या प्रश्न उपस्थित होने के पहले की स्थिति जारी रखने के लिए अधिकार का उपयोग करना चाहिए। ऐसा संकेत या इशारा है। उदाहरणार्थ, यदि किसी कर बढ़ाने के प्रस्ताव के पक्ष और विपक्ष में बराबर-बराबर मत मिलें, तो अध्यक्ष को निर्णायक मत प्रस्ताव के विपक्ष में देना चाहिए फिर चाहे उसने अपना मत प्रस्ताव के पक्ष में दिया हो या विपक्ष में। निर्णायक मत देकर अध्यक्ष को विद्यमान स्थिति जारी रखनी चाहिए—बदलनी नहीं चाहिए। विरोध का विचार करके साधारण वर्तमान स्थिति जारी रखना और इसके लिए निर्णायक मत देने के अधिकार का उपयोग

करना अध्यक्ष का कर्तव्य समझा जाता है।

अध्यक्ष का अन्तिम भाषण—सभा का कार्य समाप्त होने पर अध्यक्ष को सभा में अपना अन्तिम भाषण करना चाहिए। सभा का वास्तविक कार्य वह है जो सभा के प्रकाशित निमंत्रण-पत्र में या उसके कार्य-क्रम में बताया गया हो। अनेक अवसरों पर निमंत्रण या कार्यक्रम में बताया हुआ सारा कार्य पूरा नहीं किया जा सकता। ऐसे अवसरों पर, जितना कार्य हुआ हो उसी को सभा की सम्मति से सभा का काम मानकर अध्यक्ष भाषण कर सकता है। वस्तुतः जब तक घोषित कार्य-क्रम के अनुसार सारी कार्रवाई पूर्ण न हो जाय, अध्यक्ष को सभा समाप्त करने का अधिकार नहीं है। फिर भी समय, स्थान और परिस्थिति आदि के विचार के बाद, सभा की सम्मति से, सभा समाप्त करना कभी-कभी वांछनीय होता है। यदि सभा-स्थल पर्याप्त न हो, समय ज्यादा हो चुका हो, लोग खिसकते जा रहे हों, या फिर सभा चालू रखने से शान्ति-भंग होने की संभावना हो, तो अध्यक्ष समझदारी से काम लेकर, सभा की अनुमति से सभा समाप्त कर दे। ऐसी अवस्था में सभा समाप्त करने के पूर्व अन्तिम भाषण या तो बिलकुल देना ही नहीं चाहिए और यदि देना हो तो बहुत संक्षिप्त। सभा का कार्य पूरा हो गया हो तो उसके अनुसार अध्यक्ष को अन्तिम भाषण देना चाहिए।

यदि सभा में प्रस्तावादि पर विचार न होना हो और केवल व्याख्यान ही हों तो समयानुसार अध्यक्ष को अन्त में अपना मत व्यक्त कर देना उचित है। अध्यक्ष हो जाने से ही कोई व्यक्ति सर्वज्ञ या सब विषयों का पंडित नहीं होता। अध्यक्ष को केवल अध्यक्ष होने के नाते ही जो जी में आय, बोलने का अधिकार नहीं हो जाता। किसी व्याख्यान की न्यूनता को पूर्ण करने काअधिकार अध्यक्ष को जरूर है लेकिन यह उसी अवस्था में है जब उसे विजय की सर्वाङ्गीण जानकारी हो। सर्वदा योग्य व्यक्ति ही अध्यक्ष नहीं चुना जाता। प्रायः देखा गया है कि अध्यक्ष में यह व्यक्त करने की लालसा होती है कि विषय की जानकारी वक्ता की अपेक्षा उसमें कहीं अधिक है। इस लालसा के कारण कई अध्यक्ष हास्यास्पद बनते देखे गए हैं। बहुत से लोग यह समझते हैं कि किसी विषय पर, उस विषय के विद्वान् का व्याख्यान होने पर कोई-न-कोई शंका उपस्थित करके, कोई प्रश्न उठाकर, अध्यक्ष यह दिखलाने का प्रयत्न करे उसका उस विषय का अध्ययन गहरा और सूक्ष्म है। अध्यक्ष का मुख्य कर्तव्य सभा का नियमन और नियंत्रण है। वाद-विवाद में शामिल होना और सभा में हुए भाषणों पर अन्त में अपना मत व्यक्त करना आदि

गौण हैं। यदि अध्यक्ष का वक्ता से मतभेद हो तथा उसे विस्तार से बताना आवश्यक और अभीष्ट हो तो उसका विस्तृत वर्णन करना चाहिए। अन्यथा संक्षेप में उसका उल्लेख करके अध्यक्ष को अपना भाषण समाप्त करना चाहिए। लोग सभा में मुख्य वक्ता का भाषण सुनने के लिए उपस्थित होते हैं, अतः उससे अनुचित लाभ उठाकर अध्यक्ष को श्रोताओं पर लंबे-चौड़े भाषण का बोझ नहीं लादना चाहिए। यदि कभी किसी बड़े नेता या विद्वान् के भाषण के समय अध्यक्ष का पद किसी को प्राप्त हुआ हो, तो उसे भाषण देना चाहिए, और भाषण देना हो तो नाम-मात्र को। यदि अध्यक्ष और वक्ता दोनों ही समान योग्य हों या अध्यक्ष वक्ता से अधिक योग्य हों, तो भी यदि वक्ता ने भाषण करने में एक घंटा या इससे अधिक समय लगाया हो तो अध्यक्ष साधारणतः अधिक-से-अधिक आधे घंटे में अपना भाषण समाप्त कर दे। कारण यह है कि वक्ता का व्याख्यान सुनकर सभा से जब लोग जाने लगते हैं, तब उसमें गड़बड़ मचती है, अतएव गड़बड़ शुरू होने से पहले ही भाषण समाप्त करने में अध्यक्ष की प्रतिष्ठा और बड़प्पन है।

यदि सभा में प्रस्ताव पर विचार हुआ हो, तो अध्यक्ष संक्षेप में सभा के स्वीकृत प्रस्ताव का सारांश बता दे। प्रस्ताव स्वीकृत करने के कारण सभा पर जो उत्तरदायित्व आ पड़े उसकी ओर सभा का ध्यान आकृष्ट करना अध्यक्ष का कर्तव्य है। यदि सभा में आगे के लिए कोई कार्य-क्रम सूचित किया गया हो तो उसकी सीमा का निर्देश होना आवश्यक है। यदि सभा का निश्चय कार्यान्वित करना हो तो लोगों से उसके लिए प्रयत्न और सहयोग का अनुरोध करना चाहिए। अध्यक्ष का अन्तिम भाषण, सभा में हुए वाद-विवाद की पुनरावृत्ति नहीं है। अध्यक्ष को अपने संक्षिप्त भाषण में लोगों को कार्य की ओर प्रवृत्त करने के लिए, सभा के निश्चय की समीक्षा करना ज़रूरी है। उन्हें उस निश्चय का महत्त्व समझाना भी आवश्यक है। यदि सभा में मत-प्रदर्शन की दृष्टि से अनेक भाषण हुए हों, तो अध्यक्ष उन भाषणों की आलोचना करके अपने विचार व्यक्त करे परन्तु संक्षेप में। अध्यक्ष का भाषण ऐसा हो कि सभा में जो कुछ हुआ हो उसका चित्र-सा श्रोताओं की आँखों के सामने उपस्थित हो जाय। उसके भाषण के बाद, सभा में हुए कार्य के सम्बन्ध में लोगों को सन्तोष ही नहीं बल्कि उनमें स्फूर्ति और आशा का भी संचार होना चाहिए। नाटक में उसके अन्तिम अंक का, महफ़िल में आख़िरी चीज़ का तथा उपन्यास में उसके अन्तिम परिच्छेद का जो महत्त्व है वही सभा में सभापति के अन्तिम भाषण का है। श्रोताओं के मन पर अन्तिम प्रभाव इसी भाषण का

पड़ता है। अतः यह भाषण थोड़े में किन्तु प्रभावोत्पादक हो, और सभा के कार्य तथा प्रस्तुत वातावरण के अनुरूप भी हो जिससे सभा समाप्त होने पर श्रोता तृप्ति का अनुभव करें। सभा उन्नत वातावरण में समाप्त होनी चाहिए।

अध्यक्ष अपने अन्तिम भाषण में श्रोताओं और वक्ताओं को, सभा की कार्रवाई में सहयोग देने के लिए धन्यवाद देना न भूले। यदि सभा में कोई खलने वाली बात हुई हो तो उचित शब्दों में उसका निराकरण भी कर दे। यदि व्यक्तिगत कटुता पैदा हुई हो तो उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। संयोजकों को भी धन्यवाद देना उचित है।

सभा-समाप्ति—सार्वजनिक सभा घोषित कार्य-क्रम पूरा होने पर विसर्जित होती है। यदि कार्य पूरा हुए बिना सभा समाप्त करनी हो तो उसके लिए सभा की अनुमति आवश्यक है। यदि अध्यक्ष के पास समय न हो या किसी कारण उसे जाना हो, तो सभा को दूसरा अध्यक्ष चुनकर और कार्य पूरा करना चाहिए। अध्यक्ष के अपना स्थान छोड़ देने से सभा की समाप्ति नहीं होती। ऐसी अवस्था में उपस्थित लोगों को तुरंत दूसरा अध्यक्ष चुनकर सभा जारी रखने का पूरा अधिकार है। अध्यक्ष के बिना सभा की कार्रवाई को वैधता और प्रामाणिकता नहीं प्राप्त होती। सभा तब तक समाप्त नहीं होती जब तक घोषित कार्य पूरा न हो जाय या उसे समाप्त करने के लिए उसकी अनुमति न मिल जाय। अध्यक्ष के सभा रद्द कर देने से या उसे समाप्त घोषित कर देने से सभा रद्द या समाप्त नहीं होती। यदि सभा में शान्ति-भंग हुई हो और उसके कारण सभा की कार्रवाई चलाना असंभव हो, तो अध्यक्ष को उसे रद्द या स्थगित करने का अधिकार है। दूसरी स्थिति में ऐसा करने के लिए सभा की अनुमति आवश्यक है। किसी सभा में उसका घोषित कार्य समाप्त हो जाने पर दूसरा कार्य नहीं किया जा सकता। यदि सब सदस्य यह कहें कि घोषित न किया हुआ दूसरा कार्य किया जाय, तो भी वह कार्य करना अनुचित ही है। कारण यह है कि ऐसा करने से उन लोगों के प्रति अन्याय होता है जो सभा में अनुपस्थित होते हैं। अतः घोषित कार्य समाप्त होते ही अध्यक्ष सभा समाप्त होने की घोषणा कर दे।

धन्यवाद देना—सभा की कार्रवाई पूर्ण होते ही अध्यक्ष अन्तिम भाषण करे और उसके बाद नियमानुसार सभा विसर्जित करने की घोषणा कर दे। फिर भी धन्यवाद देना सभा का एक अनिवार्य अङ्ग है। अध्यक्ष को अपने अन्तिम भाषण के अन्त में यह घोषित करना चाहिए—'सभा की कार्रवाई धन्यवाद दिये जाने और (यदि कार्यक्रम में हो तो) राष्ट्रीय गीत गाए जाने

के बाद समाप्त होगी।' धन्यवाद, प्रस्ताव के द्वारा भी दिया जा सकता है और प्रस्ताव के बिना भी। अध्यक्ष धन्यवाद देते हुए लंबा-चौड़ा भाषण न करे। भाषण में प्रस्ताव और उस पर हुई बहस पर टीका-टिप्पणी न हो और न किसी पर व्यक्तिगत आक्षेप करना चाहिए; क्योंकि उनका उत्तर कोई नहीं दे सकता। इस प्रकार टीका-टिप्पणी आदि करने से यदि सभा शान्तिपूर्वक भी समाप्त होती होगी तो हुल्लड़बाजी शुरू हो जायगी। जिन व्यक्तियों को धन्यवाद देना हो उनका थोड़े में उल्लेख किया जाय और वह उल्लेख सुसंगत होना चाहिए। अध्यक्ष धन्यवाद देते हुए अप्रासंगिक और असंगत बातों का उल्लेख न करे। किसी की झूठी प्रशंसा करना भी अध्यक्ष को शोभा नहीं देता। किसी को प्रचारात्मक ढंग से धन्यवाद देने से, उसके किये हुए कार्यों का महत्त्व या प्रभाव बढ़ता नहीं है, बल्कि घटता है। जिन लोगों को धन्यवाद देना हो, उनके नामों की और जिन कार्यों के लिए उन्हें धन्यवाद देना हो, उनकी सूची बना लेना आवश्यक होता है। अपनी स्मृति के बल पर या सभा की सूचना के भरोसे, धन्यवाद देने से कभी-कभी भूल भी हो जाती है और बाद में उससे अनेक झंझट भी पैदा हो जाते हैं। अतः धन्यवाद का प्रस्ताव तैयार करने से पहले सूची तैयार करके प्रस्ताव में उसका समावेश कर लेना चाहिए। यदि प्रस्ताव के बिना धन्यवाद देना हो तो धन्यवाद देने वाला उक्त सूची अपने सामने रखकर, उसके अनुसार धन्यवाद दे। धन्यवाद देने वाला व्यक्ति पहले से निश्चित हो और उसे आवश्यक जानकारी देना आवश्यक है। धन्यवाद देने का काम किसी ऐसे व्यक्ति को सौंपा जाय जो उत्तरदायी तथा अवसर पहचानने वाला हो। धन्यवाद देने वाले को विनम्र भाषा का प्रयोग करना चाहिए। अतः वह कटु व्यंग न करे, अधीर और क्रोधी भी न हो। चाहे जिस व्यक्ति का और चाहे जिस तरह, धन्यवाद करना संयोजकों की प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं है।

धन्यवाद का प्रस्ताव सभा के सामने रखकर उस पर सदस्यों के मत लिये जायँ। उसमें सभा की घटनाओं के संबंध में ऐसी कोई बात नहीं जो सभा में किसी को खटके। धन्यवाद का प्रस्ताव सर्वसम्मति से और निर्विरोध स्वीकृत हो जाय तो सभा के गौरव में वृद्धि होती है लेकिन उस पर मतभेद होना कोई अच्छी बात नहीं है। इसका अर्थ यही नहीं कि सभा में मेल-जोल और सद्भावना का अभाव रहा बल्कि यह भी होता है कि मतभेद ने द्वेष का रूप धारण नहीं किया। सभा का उद्देश्य, विभिन्न विचारों को सुनकर समन्वय करके बुद्धि और विवेक की कसौटी पर कसकर, सामूहिक मत व्यक्त करना होता है। सभा की बहस में सब लोग सम्मिलित होते हैं या हो सकते हैं, उसका

मत या निर्णय प्रकट करने में सबका हाथ होता है, इसलिए सभा का निर्णय सब सदस्यों का निर्णय माना जाता है। अतः सब सदस्यों के मन में उस निर्णय के प्रति आत्मीयता की भावना हो तो अच्छी बात है। यदि सभा समाप्त होने के बाद यही भावना न बनी रहे, तो वह एक प्रकार से विफल कही जायगी। अध्यक्ष के भाषण और धन्यवाद के बाद, यदि मतभेद न मिटे और बहस के समय एक दूसरे पर किये गए ज़ख्म पूरी तरह न भरें, तो भी मतभेद का तीखापन और उक्त ज़ख्मों की पीड़ा तो कम अवश्य होनी चाहिए। मतभेद और भिन्न-भिन्न विचार-धाराएँ होती हैं, इसीलिए विचार-विनिमय या बहस होती है। विचार-विनिमय का माध्यम या साधन सभा है, उसका उद्देश्य मतैक्य होता है और यदि ऐसा संभव न हो तो अधिक-से-अधिक समन्वय करना है। यदि यह उद्देश्य सिद्ध होने की अपेक्षा सभा समाप्त होने पर लोग अपने मन में द्वेष रखकर लौटते हैं तो सभा का उद्देश्य निष्फल माना जायगा। अपनी जिम्मेदारी समझने और उपस्थित अवसर को पहचानने वाले आदमी के उचित शब्दों में धन्यवाद देने से ऐसी निष्फलता नहीं होती।

राष्ट्रीय गीत—किसी विशेष अवसर के बिना सभा के अन्त में राष्ट्रीय गीत नहीं होना चाहिए। ऐसा नियम नहीं है और न यह आवश्यक ही है कि प्रत्येक सार्वजनिक सभा के अन्त में राष्ट्रीय गीत गाया जाय। यदि सभा के कार्य-क्रम में राष्ट्रीय गीत रखा गया हो, तो उसे गाने वाला पहले से निश्चित हो और वह उस समय पर मंच के पास आकर बैठे। इस विषय में कोई निश्चित संकेत, निर्देश या नियम नहीं है कि राष्ट्रीय गीत गाने वाला अकेला हो या सब लोग मिलकर गायँ। इससे अनेक अवसरों पर गड़बड़ पैदा होने की संभावना रहती है और गीत की गंभीरता और पवित्रता नष्ट हो जाती है। उत्तम मार्ग यह है कि अन्य सब लोग गायक के साथ-साथ धीरे-धीरे तथा शान्तिपूर्वक राष्ट्रीय-गीत गायँ। यह नियम अब सर्वमान्य-सा हो गया है कि राष्ट्रीय गीत गाने के समय सब लोग खड़े रहें। भिन्न-धर्मावलंबियों तथा अपना राष्ट्रीय गीत न मानने वालों को भी उस समय खड़ा होना उचित है। इसमें उनकी प्रतिष्ठा नहीं घटती। बल्कि उनका सौजन्य प्रकट होता है। राष्ट्रीय गीत समाप्त होते ही या यदि राष्ट्रीय गीत कार्य-क्रम में न हो, तो धन्यवाद दिये जाने पर अध्यक्ष को सभा समाप्त होने की घोषणा करनी चाहिए।

सभा-विसर्जन—जिस प्रकार यह निश्चित हो कि सभा में लोग किस रास्ते से प्रवेश करें और कहाँ बैठें, उसी प्रकार यह भी निश्चित होना आवश्यक है कि समाप्त होने पर लोग किस रास्ते से बाहर निकलें तथा कौन

लोग पहले बाहर जायँ। कभी-कभी उपर्युक्त दूसरी बात की अग्रिम घोषणा करना भी अभीष्ट होता है। अनेक अवसरों पर सभा में नादान बच्चे आते हैं और स्त्रियाँ भी आती हैं। सभा की समाप्ति पर हर कोई बाहर जाने की कोशिश करता है। भीड़ हो जाती है, गुण्डे भी अपना पराक्रम दिखलाने लग जाते हैं। ऐसी सभा की जिसमें प्रचंड जन-समुदाय उपस्थित हुआ हो, समाप्ति की घोषणा करते समय ही अध्यक्ष या सभा के संचालक सभा-स्थान को रिक्त करने की निर्धारित नीति की भी घोषणा कर दें। स्वयंसेवकों को चाहिए कि वे उस घोषणा को कार्यान्वित करें। पहले स्त्रियाँ और बच्चे चले जायँ। सभा समाप्त होते ही अनेक श्रोतागण व्यास-पीठ की ओर जाने लगते हैं। वे लोग 'दर्शन' अथवा 'हस्ताक्षर' लेने के लिए लालायित रहते हैं। कभी-कभी उन्हें यह दिखाना होता है कि हमने वक्ता से या नेता से बातचीत करने का अवसर प्राप्त किया है। इसके लिए वे पास जाकर व्यर्थ की कोई शंका उनके सामने रखते हैं। उनके भाषण पर किसी किस्म की नुक्ताचीनी करते हैं। कभी किन्हीं लोगों को वक्ता से कुछ बात करनी होती है अथवा अन्य कोई काम रहता है। इन सब अनुभवों को अपने ध्यान में रखकर सभा-संचालक स्वयं ही इस बात में सावधानी बरतें। अनुशासन भंग न होने दें। सभा शांति से हो जाती है, पर इस आखिरी वक्त की गड़बड़ी में मामला बिगड़ जाया करता है। महफिल का सारा मज़ा किरकिरा हो जाता है। ऐसे समय वक्ता भी सभा-संचालकों की बात मानकर उनके काम में मदद करें।

श्रोताओं को इस बात की कल्पना नहीं रहती कि उनके व्यास-पीठ की ओर जाने से कैसी अव्यवस्था तथा कभी-कभी कितना भारी अनर्थ उत्पन्न हो जाया करता है। इसी प्रकार नेता तथा वक्ता को जिस वाहन में बैठ कर जाना होता है, उसके चारों तरफ भीड़-भड़क्का मचाकर, उत्साह की अपेक्षा वे लोग उच्छृङ्खलता का प्रदर्शन ही अधिक करते हैं। जिसके मन में आता है वहाँ हस्ताक्षर माँगने लगता है। यहाँ तक कि हैंडबिल पर ही हस्ताक्षर लेने की कोशिश होती है। इसमें कोई विशेष औचित्य नहीं प्रतीत होता। बिना मूल्य के वह प्राप्त होता है। इसलिए विनय अथवा मर्यादा का ध्यान न रखते हुए उसे प्राप्त किया जाय, यह अच्छी आदत नहीं है। हस्ताक्षर देने वाले को भी कुछ सीमा-निर्धारित कर देनी चाहिए तथा सभा-संचालकों का भी कर्तव्य है कि वे इस बारे में सावधान रहें।

जब सभा क्षुब्ध वातावरण में अथवा हुल्लड़बाजी के साथ समाप्त होती है, तब सभा-संचालकों पर अधिक उत्तरदायित्व आ पड़ता है। उन्हें यथा-संभव

सभा-स्थान शीघ्र खाली कर देना अच्छा है। बच्चों और स्त्रियों को वहाँ से हटा देना भी जरूरी है। सभा के अथवा कुछ थोड़े से लोगों के रोष का पात्र बने हुए वक्ता को उचित संरक्षण प्रदान करके यथासंभव सभा-स्थान से किसी सुरक्षित जगह पर भिजवा देना चाहिए। कभी-कभी वक्ता स्वाभिमान अथवा धैर्य की कल्पना के वश होकर वहाँ से जाने को तैयार नहीं होता। परंतु इतने पर भी सभा-संचालकों का उत्तरदायित्व खत्म नहीं हो जाता। सभा-स्थान में जो कुछ भी होता है, उसकी सारी जिम्मेदारी उन्हीं की है। अपने स्वयंसेवकों तथा कार्यकर्ताओं की सहायता से, उन्हें अपनी जिम्मेदारी पूरी तरह निभानी चाहिए। उनका यदि वस न चले अथवा परिस्थिति सीमा से बाहर हो जाय तो पुलिस की सहायता लेने में कोई दोष नहीं। विरोध की चिन्ता न करते हुए, यदि किसी ने व्याख्यान दिया हो या कोई प्रस्ताव मंजूर किया गया हो, तो विरोधी लोग सभा के बाद भी गुण्डई करने से, वक्ता की 'पूजा' करने से नहीं चूकते। सभा-स्थान से बाहर होने वाली घटनाओं के लिए सभा-संचालक उत्तरदायी नहीं होता।

सभा में हुई कार्रवाई की सूचना—सभा का निमंत्रण लोगों को किस प्रकार दिया जाय इस पर पहले ही विचार किया जा चुका है। सभा में क्या-क्या हुआ इस बात के प्रकाशन के सम्बन्ध में अब हमें विचार करना है। सभा की ओर से निमंत्रण-पत्र प्रकाशित होने पर भी सब लोग नहीं आ सकते। सभा में क्या हुआ, लोगों को यह जानने की इच्छा रहती है। इसके अतिरिक्त सभा-संचालकों की भी इच्छा रहती है कि सभा की कार्रवाई का प्रचार हो और उसकी अधिक-से-अधिक लोगों को जानकारी हो। इसलिए सभा-संचालकों के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे सभा की कार्रवाई के ठीक-ठीक प्रकाशन की ओर पूरा ध्यान दें। सभा-संचालकों का यह भी कर्तव्य है कि वे स्थानीय समाचार-पत्रों से अपने प्रतिनिधि सभा में भेजने के लिए प्रार्थना करें। सामान्यतया सभा के महत्त्व को ध्यान में रखकर संवाद-दाता लोग स्वयं आप ही आते हैं। सभा में सभा-मंच के समीप—सभा-मंच पर नहीं—संवाददाताओं के लिए स्थान सुरक्षित रखा जाय। संभव हो तो टेबल, कुर्सी अथवा डैस्क का इंतजाम कर देना चाहिए। रात की सभा हो तो प्रकाश की भी समुचित व्यवस्था हो।

स्थानीय समाचार-पत्र न हों, तो अन्य स्थानों के समाचार-पत्रों के संवाद-दाता प्रायः सभी प्रमुख नगरों में रहते हैं। उन्हें ही निमंत्रण देना चाहिए। यदि कोई भी संवाददाता न हो, तो सभा-संचालकों का कर्तव्य है कि किसी

योग्य मनुष्य को चुनकर, उसे सभा का वृत्तांत लिखने के लिए कहें।

संवाददाता जो रिपोर्ट लिखता है, उसमें उसकी अपनी प्रवृत्ति, अपने समाचार-पत्र की नीति, अपने साथ किये गए व्यवहार आदि की दृष्टि मुख्य रूप से काम करती है। उन्हीं के आधार पर वह टिप्पणियाँ लिखता है। इसीलिए सभा की सच्ची जानकारी के लिए सभा-संचालकों को अपना आदमी रखना चाहिए। बहुत बार इस बात पर वाद-विवाद होने लगता है कि सभा में क्या हुआ और किस प्रकार हुआ। इसलिए जो भी जिस प्रकार हुआ उसको अंकित करने वाले व्यक्ति की आवश्यकता पड़ जाती है। संवाददाता के अभाव में इस व्यक्ति के वृत्तान्त के आधार पर अधिकृत रिपोर्ट तैयार करके, जिस समाचार-पत्र में आवश्यक जान पड़े, प्रकाशन के लिए भेज देनी चाहिए। इस अधिकृत रिपोर्ट में मंजूर किये गए प्रस्ताव का तथा उस पर हुई बहस का कुछ और अंश आवश्यक है। अधिकृत रिपोर्ट जब तैयार हो जाय, तब उसे अध्यक्ष को पहले दिखला देना ठीक है और तत्पश्चात् उसे छपने के लिए भेज जाय।

सभा के संचालकों का कर्तव्य है कि वे संवाददाताओं के लिए पूर्ण सुविधा प्रदान करें। समझदार 'वाददाता प्रबन्धकों की दिक्कतों को पहचानता है। वह यह समझकर काम करता है कि उसका कर्तव्य केवल अपने लिए सुविधा तथा मान-सम्मान की प्राप्ति नहीं है, प्रत्युत सभा का वृत्तान्त सही-सही अपने पत्र को भेजना है। जो बातें सभा में नहीं कही गई उन्हें बलात् ठूँस देना, महत्त्वपूर्ण सदस्यों को छोड़ देना, बहस की अपेक्षा अन्य बातों को ही बढ़ा-चढ़ाकर लिखना, गंभीर वस्तु को एक तरफ रखकर किन्हीं क्षुद्र तथा हास्यास्पद बात को ही अधिक महत्त्व देना आदि बातें, भले ही रिपोर्ट के भीतर चटपटापन ला देती हों, पर उससे पाठकों पर कुछ भी असर नहीं पड़ता। सार्वजनिक सभाओं में उपस्थित रहने वाले संवाददाता को यह नहीं भुला देना चाहिए कि वह पहले नागरिक है और उसके बाद पत्रकार। उत्कृष्ट संवाददाता का कर्तव्य है कि वह सबसे पहले सभा में जो-कुछ हुआ हो, उसका सही-सही विवरण दे। फिर यदि उसकी इच्छा हो, तो अलग-से-अलग अपना अनुभव एवं अपनी राय लिखे। उसका ऐसा करना भी उचित ही सिद्ध होता है। इससे उसकी तथा उसके समाचार-पत्र की ख्याति है। पर किसी भी अवस्था में संवाददाता पर सभा के संचालकगण यह बंधन नहीं लाद सकते कि उसे अमुक बात ही और अमुक प्रकार से ही लिखनी है। और ऐसा करना हित-प्रद भी नहीं।

सार्वजनिक सभा का अर्थ है भाषण-स्वातंत्र्य की कर्मभूमि। भाषण-स्वातंत्र्य के साथ मुद्रण-स्वातंत्र्य का भी उतना ही महत्त्व है। इस स्वातंत्र्य की भी कुछ मर्यादाएँ हैं, पर उन्हें निर्धारित करने का अधिकार सभा के संचालकों को नहीं है। सभा-संचालकों को अपने व्यवहार द्वारा संवाददाताओं को परेशान नहीं करना चाहिए। उन्हें अपने विश्वास में लेकर तथा उनसे सहयोग करते हुए, अपनी सभा की कार्रवाई को, अधिक-से-अधिक प्रकाश में लाने का यत्न करना होता है। संवाददाताओं के बीच में किसी प्रकार से हस्तक्षेप करना ठीक नहीं। मंजूर हुए प्रस्ताव की अधिकृत प्रतियाँ सबको देनी चाहिएँ। वक्ताओं की जानकारी भी करवा देना ठीक है और ऐसा करते समय निष्पक्ष रहना जरूरी है। संवाददाता भले ही वक्ताओं में भेद करें। किसका कितना भाषण देना है, उसका कौन-सा अंश देना है, किसको कितना प्रकाशन देना है, यह सब संवाददाता को स्वयं ही निर्धारित करना होता है। सभा-संचालकों को इतनी तो उम्मीद अवश्य रहती है कि सभा की कार्रवाई, प्रस्ताव तथा बहस-मुबाहिसे आदि की सही रिपोर्ट छपे। इस उम्मीद की पूर्ति के लिए पत्र-प्रतिनिधियों के साथ आवश्यक सहयोग करना चाहिए। संवाददाता को यह सदैव अपने ध्यान में रखना चाहिए कि समाचार-पत्रों में प्रकाशित होने वाला संवाद सत्य तथा संतुलित हो। असभ्य, अपमानकारक एवं बदनामी फैलाने वाला न हो।

पुलिस-संवाददाता—सार्वजनिक सभा में जहाँ आम जनता को अथवा जनता के एक भाग को अनियन्त्रित रूप में, किसी मर्यादा में उपस्थित रहने का अथवा प्रवेश प्राप्त करने का अधिकार है; वहाँ पुलिस-संवाददाताओं को केवल पुलिस-संवाददाता के नाम पर मना नहीं किया जा सकता। मान लीजिए, कि पूना के समस्त हिन्दुओं की सभा है और पुलिस संवाददाता भी हिन्दू है, तो आप उसे सभा में उपस्थित रहने से रोक नहीं सकते।

जहाँ सार्वजनिक सभा के नाते अन्य संवाददाताओं को आने दिया जाता है, वहाँ पुलिस-संवाददाताओं को भी आने का अधिकार है। सभा-संचालकों पर क़ानूनी तौर से इस बात का बंधन नहीं रहता कि वे उनके लिए कोई खास इंतजाम रखें। सभा-प्रतिबंधक कानून के अधीन आज्ञा लेकर की जाने वाली सभा में, पुलिस-संवाददाताओं को मजिस्ट्रेट की आज्ञानुसार उपस्थित रहने का अधिकार है। उसी तरह पुलिस-एक्ट के अधीन बनाए गए नियम के अनुसार पुलिस-संवाददाता सार्वजनिक सभा में उपस्थित रह सकता है। व्यवस्था के लिए

आने वाले पुलिस वालों को निःशुल्क प्रवेश-पत्र देने का नियम है।[1] इस प्रकार का बंधन पुलिस-संवाददाता के लिए नहीं है। इतनी बात अवश्य है कि यदि अन्य संवाददाताओं को निःशुल्क प्रवेश दिया गया हो तो इनको भी निःशुल्क प्रवेश-पत्र देने में कोई आपत्ति नहीं। अन्य संवाददाताओं के साथ पुलिस संवाददाताओं के लिए भी सभा के संचालक यदि उचित प्रबन्ध कर दें, तो उसमें कोई नुकसान अथवा अपमान की बात नहीं। सभा का उद्देश्य यदि यह हो कि सभा में होने वाला सारा काम-काज, सारे प्रस्ताव, सारी चर्चा सरकार को विदित हो जाय, तो सरकारी संवाददाताओं की योग्य व्यवस्था कर देने से सभा के संचालकों का अपना स्वार्थ ही सिद्ध होता है।

सभा-संचालक—सार्वजनिक सभा आयोजित करने का प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है तथापि आयोजकों पर एक विशेष प्रकार की जिम्मेदारी रहती है। जो लोग सभा का आयोजन करते हैं; उन्हें सभा-संचालक कहा जाता है। सभा-संचालक बनने से उन्हें किन्हीं विशेष कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है। किन्हीं विशेष जिम्मेदारियों को निभाना होता है। कुछ विशेष प्रकार के अधिकार भी उन्हें प्राप्त होते हैं। उन सबका स्थूल रूप से हम यहाँ विचार कर रहे हैं:—

(१) सभा का सारा काम-काज व्यवस्थित रूप से हो तथा सभा शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो जाय। इसके लिए सभा का सारा काम योजना-पूर्वक होना चाहिए। सभा-संचालकों का कर्तव्य है कि सभा का विज्ञापन छपाने से पूर्व सब एक जगह मिलें। कोई एक संगठन, व्यवस्थापक-मण्डल, समिति आदि का निर्माण करें। यदि सभा किसी संस्था के तत्त्वावधान में होने वाली हो तो यह सवाल पैदा ही नहीं होता। कार्य की सुविधा की दृष्टि से इस मण्डल का एक निरीक्षक हो जो अपनी जिम्मेदारी को भली-भाँति समझता हो तथा उसका स्वभाव पर्याप्त गंभीर हो।

(२) व्यवस्थापक-मण्डल को एक निमन्त्रण-पत्र तैयार करना चाहिए। जिसमें सभा की तारीख, समय, स्थान तथा विषय आदि का उल्लेख हो। कुछ अवधि रखकर उसे सार्वजनिक रूप से प्रकाशित करवायें। उपर्युक्त किसी भी वस्तु के बारे में किसी प्रकार का आक्षेप न आने पाय, इस बात का पूरा खयाल रखें। सभा के खर्च के बारे में व्यवस्था निश्चित हो जानी चाहिए। सामान्यतः यह व्यवस्था पारस्परिक चंदे से, सार्वजनिक टिकटों की बिक्री से अथवा दान द्वारा की जाती है। टिकट रखा गया हो तो सार्वजनिक सूचना में अथवा निमन्त्रण-पत्र में उसका स्पष्ट उल्लेख अवश्य किया जाय।

---

१. डि० पो० ए० धारा ४७

(३) कानून के अनुसार अथवा स्थानीय पुलिस के नियम के अनुसार सभा करने के लिए आज्ञा लेना आवश्यक हो, तो वह पहले ही ले लेनी चाहिए। आज्ञा लेने से पूर्व सभा की सूचना प्रकाशित न हो। पुलिस को सूचना भर देने का नियम हो, तो नियमानुसार सूचना दे दें और वह भी लिखित रूप में दें। ऐसा करने से आगे चलकर कष्ट नहीं होता।

(४) सभा-स्थान वैयक्तिक हो तो उसके मालिक से अथवा उस जगह के व्यवस्थापकों से पहले ही लिखित रूप में आज्ञा ले लें। विषय तथा समय का उल्लेख करके अनुमति प्राप्त करने से पीछे चलकर कटुता उत्पन्न नहीं होती। जगह का किराया तथा कुछ नुकसान हो जाय तो उसके हरजाने की सारी जिम्मेदारी सभा-संचालकों की है। जिस व्यक्ति ने अनुमति प्राप्त की है अथवा जिसके नाम पर अनुमति मिली है, वह कानून की दृष्टि से भले ही व्यक्तिशः जिम्मेदार साबित हो, तथापि वस्तुतः वह जिम्मेदारी सभा के संचालकों की होती है। स्थान यदि सार्वजनिक हो और स्थानीय म्युनिसिपैलिटी अथवा स्थानीय अधिकारियों की अनुमति उस स्थान के उपयोग के लिए आवश्यक हो, तो वह पहले ही ले लेनी चाहिए।

(५) सभा के स्वरूप को ध्यान में रखकर सभा का स्थान निश्चित हो। सभा में उपस्थित रहने के लिए प्रवेश-पत्र का अथवा टिकटों का इंतजाम हो, तो उसके सम्बन्ध में जनता को पहले ही से सूचना दे दें। यह भी सूचित कर दें कि वह पैसे देकर अथवा बिना मूल्य किस जगह मिल सकता है। सभा के समय ही यह बिक्री होने वाली हो तो पत्रिका अथवा टिकट देने की व्यवस्था सभा-स्थान के प्रवेश-द्वार से कुछ दूरी पर की जानी चाहिए। ऐसी व्यवस्था होने पर भीड़-भाड़ और धक्का-मुक्की की कोई गुन्जाइश नहीं रह जाती। सभा-स्थान में लोगों के बैठने की समुचित व्यवस्था करें। बैठने की दृष्टि से आवश्यक विभाजन भी हो। स्थान-निर्देशन तथा आने-जाने के मार्गों का निर्देशन करने वाले स्वयंसेवक ड्यूटी पर नियत हों। स्त्रियों, पत्रकारों तथा विशेष निमन्त्रितों के लिए खास इंतजाम किया जाना अनेक दृष्टियों से लाभ-प्रद होता है। सभा-मंच सभा-स्थान के अनुरूप होना चाहिए। उसके बनाने में यदि स्थानीय संस्थाओं अथवा अधिकारियों का सहयोग आवश्यक हो, तो वह पहले ही ले लें। यदि उसके लिए किराया देने की जरूरत हो तो पहले ही दे छोड़ें। रोशनी, लाउड-स्पीकर आदि की व्यवस्था भी ठीक समय पर हो जाय। अंधेरा हो जाने पर रोशनी का इन्तजाम करना, सभा चालू रहते समय खंभों आदि का गाड़ना, अथवा सभा का समय हो जाने पर भी लाउड स्पीकरों का प्रबन्ध करना आदि

बातें सभा के संयोजकों की प्रबन्ध-पटुता का परिचय नहीं देतीं।

(६) अध्यक्ष के बारे में पहले ही से सब-कुछ तय हो जाना आवश्यक है। समय पर उसके उपस्थित रहने की व्यवस्था की जानी चाहिए। कार्यक्रम-पत्रिका, प्रस्तावों के मसविदे, तथा वक्ताओं की योजना आदि भी निश्चित हो। नियोजित वक्ता भी उपस्थित रहें। वक्ताओं के बैठने का प्रबन्ध सभा-मंच पर या उसके निकट ही कहीं हो।

(७) अध्यक्ष की मेज पर क़ाग़ज, स्याही अथवा पैन्सिल, घंटी, घड़ी, कार्य-क्रम तथा प्रस्तावों के मसविदे आदि रख दें। एक स्वयंसेवक अध्यक्ष के पास हमेशा रहना चाहिए।

(८) सभा में व्यवस्था रखने के लिए भरपूर संख्या में स्वयंसेवक प्रस्तुत रहें। सभा आरम्भ होने से पहले उन्हें काम की रूप-रेखा बता देना उचित है। कुछ स्वयंसेवक अलग से खास तौर पर रहने चाहिएं तथा किसी असाधारण एवं अप्रत्याशित परिस्थिति के उत्पन्न हो जाने पर, शान्ति की रक्षा के लिए, अनुशासन का भंग एवं रुकावटें डालने वाले व्यक्तियों को, सभापति के आदेश देते ही सभा-स्थल से बाहर करने के लिए उनका उपयोग करना चाहिए।

(९) सभा में प्रस्तुत होने वाले कार्य-क्रम से तथा स्थानीय वातावरण से, सभा-संचालक बड़ी आसानी से जान सकते हैं कि सभा में गड़बड़ी होगी; अथवा लोग सभा का विरोध करेंगे। कौन-सा गुट विरोध करेगा, स्थानीय उपद्रवी कौन हैं, सभा को भंग करने वाले कौन हैं, वावदूक कौन हैं इत्यादि बातों की कल्पना सामान्यतया सभा के संचालकों को होनी ही चाहिए। इस दृष्टि से उपरोक्त लोगों में से कौन कहाँ बैठता है, वे झुण्ड बनाकर तो नहीं बैठ रहे हैं, उनके पास लाठी आदि सामान तो नहीं है आदि-आदि बातों की बहुत बारीकी से जाँच कर लें। उसी के अनुसार स्वयंसेवकों का इन्तजाम करें। अनुशासनहीन विरोध करने से यहाँ काम नहीं चलेगा, तत्काल बाहर जाना पड़ेगा। सभा की ऐसी सर्वाङ्गीण व्यवस्था देखकर विरोधियों को सहसा सिर उठाने का साहस नहीं होगा।

(१०) सशक्त, अनुशासित, नम्र किन्तु दृढ़ निश्चयी, वाद-विवाद-रहित तथा प्रस्तुत स्वयंसेवकों का चुनाव करना चाहिए। सभा आरम्भ होने से पूर्व सभा की व्यवस्था के बारे में उन्हें ठीक से समझा देना आवश्यक है।

(११) सभा में शान्ति और सुव्यवस्था रखने का उत्तरदायित्व सभा के संचालकों पर तथा सभा के अध्यक्ष पर है। सभा संचालन करते समय अध्यक्ष जो कुछ कहे उसे सब सभासद् ध्यान से सुनें। उसी प्रकार सभा के संयोजक भी

अध्यक्ष की बात भी ध्यान से सुनें तथा उसके कथनानुसार व्यवस्था रखें। उसके आदेश देते ही अनुशासन के विरुद्ध आचरण करने वालों को तथा सभा में बाधा उपस्थित करने वालों को निकालकर बाहर कर दें। इन व्यक्तियों ने टिकट लेकर अन्दर प्रवेश किया हो, तो भी उन्हें बाहर निकालने का अधिकार अध्यक्ष को है। इस काम में आवश्यकता से अधिक शक्ति का उपयोग न किया गया हो तो कानूनी रीति से अध्यक्ष या सभा-संचालकों के ऊपर किसी प्रकार की भी जिम्मेदारी नहीं आ सकती। टिकट खरीदने-मात्र से किसी को अशिष्ट अथवा अभद्रोचित व्यवहार करने का अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता।

(१२) सभा में हुल्लड़बाजी मच जाय अथवा ऐसा होने की पूर्ण सम्भावना हो जाय, तो शान्ति-स्थापना के लिए सभा-स्थान को खाली करवाना सभा-संचालकों का काम है, लेकिन यदि शान्ति भंग हो गई हो, दंगा होने लगे, अथवा होने की सम्भावना बढ़ गई हो, तो उस अवस्था में पुलिस का हस्तक्षेप उचित है। उस अवस्था में सभा के संयोजक पुलिस से उचित सहयोग करें तो उसमें कोई बुराई नहीं। श्रोता, वक्ता आदि सबको संरक्षण मिलना चाहिए और वे लोग जब तक सभा-स्थान में हों तब तक इस बात की जिम्मेदारी सभा के संचालकों पर है। सभा के आरम्भ होने से लेकर सभा के विसर्जित होने तक इस जिम्मेदारी की काल-मर्यादा है।

(१३) सभा-संचालकों को यह कहने का अधिकार है कि उनके बनाए हुए कार्य-क्रम के अनुसार काम हो। उनके द्वारा नियुक्त सभापति को सभा मंजूर करे। उनके द्वारा तैयार किये गए प्रस्ताव पहले सभा के सामने लाए जायँ। उनके द्वारा योजित वक्ताओं को पहले मौका दिया जाय। साधारणतया होता भी ऐसा ही है। तथापि सार्वजनिक सभा इस बारे में पूर्ण स्वतन्त्र है कि वह अध्यक्ष का, प्रस्तावों का, काम-काज की नीति का तथा काम के समय आदि का निर्णय करे। इस अधिकार के सम्बन्ध में कुछ प्रचलन तथा कुछ नियम निश्चित हैं, जिनकी ऊहापोह हम यथास्थान करेंगे।

(१४) सभा की व्यवस्था रखने तथा प्रवेश-शुल्क नियत करने का सभा-संचालकों को अधिकार है। सभा-संचालकों को सभा स्थगित करने का अथवा बन्द करने का अधिकार नहीं है। सभा के आरम्भ हो जाने के पश्चात् भले ही अनुपयुक्त अध्यक्ष निर्वाचित हुआ हो, अथवा अप्रिय प्रस्ताव मंजूर किये गए हों, पर सभा के संचालकों अथवा अन्य किसी को सभा के स्थगित करने का अथवा बन्द करने का अधिकार नहीं है। सभा या तो तब समाप्त होती है जब सभा का काम पूरा हो जाय या फिर तब समाप्त होती है, जब सभा ने स्व

अपनी सम्मति से पहले ही सभा को समाप्त कर दिया हो। सभा के आरम्भ हो जाने के पश्चात् दंगा हो गया अथवा शान्तिपूर्वक काम करना असम्भव हो गया, तो उस अवस्था में अध्यक्ष को अथवा पुलिस को सभा बन्द करने का अधिकार है। सभा के आरम्भ होने से पूर्व ही दंगा हो गया या बहुत ज्यादा भीड़ जमा हो गई, या किसी अन्य कारण से सभा का आरम्भ करना असम्भव हो गया, तो उस अवस्था में सभा-संचालकों को सभा को रद्द करने का अधिकार है। इस परिस्थिति में सभा के संयोजक सिर्फ इतना सूचित कर सकते हैं कि सभा अमुक जगह तथा अमुक समय पर होगी। पर वे यह नहीं कह सकते कि सभा हमने स्थगित कर दी है। आरम्भ हुई-हुई सभा को स्थगित किया जा सकता है यदि उसी समय तारीख और स्थान की सूचना दे दी गई हो। इसके लिए फिर से सार्वजनिक निमन्त्रण भेजने की आवश्यकता नहीं रह जाती। यदि केवल सभा के स्थगित किये जाने की ही सूचना दी गई हो तथा तिथि और स्थान का निर्देशन किया गया हो, तो उस अवस्था में पुनः सार्वजनिक निमन्त्रण भेजना अनिवार्य हो जायगा।

३

सभा-नियमन एवं संचालन

सार्वजनिक सभाओं को आजकल विशेष महत्त्व दिया जाता है, अतः उसके सम्बन्ध में पिछले प्रकरण में हमने आवश्यक विस्तार के साथ विचार किया है। समाज में राजकीय, सामाजिक, आर्थिक तथा क्रीड़ा-विषयक अनेक तरह की संस्थाएँ होती हैं। जहाँ संघ-स्वातन्त्र्य हो वहाँ उनकी संख्या तथा उनका विस्तार अधिक रहता है। भाषण-स्वातन्त्र्य के अधिकार का स्वरूप ही सभा-स्वातन्त्र्य है। एक स्थान पर एकत्र होना, वक्ता का भाषण सुनना, बहस करना आदि सब बातों का उसमें समावेश होता है। सभा में भाग लेने के लिए जो लोग आते हैं, उनका आना ही यह अर्थ रखता है कि वहाँ आने वालों का समान हित होता है। और कुछ न हो, इतना तो अवश्य है कि उस समय भाषण देने वाले वक्ता का भाषण सुनने की समान इच्छा रखते हैं। यदि इस हित-साम्य की सीमा निर्धारित करनी हो, तो सभा के आरम्भ होने से लेकर अन्त तक का काल निर्धारित किया जा सकता है। प्रायः ऐसा होता है कि जब सभा आरम्भ होती है तो चार आदमी आते हैं और सभा में आकर बैठ जाते हैं। सभा समाप्त हुई कि जो जिधर से आया था वह उधर ही चला जाता है। जिस प्रकार एक स्थान पर भाषण सुनने का अधिकार लोगों को प्राप्त है, उसी प्रकार एक स्थान पर एकत्र होकर किसी कार्यके करने का भी मूलभूत अधिकार उन्हें प्राप्त है। एक स्थान पर आकर काम करना तथा उसके लिए सभा-समिति आदि की स्थापना की स्वतन्त्रता, प्रजातन्त्रात्मक राज्य-व्यवस्था के लिए बहुत जरूरी चीज़ है। लोगों के अपने मनोगत विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए भाषण-स्वातन्त्र्य की आवश्यकता है। सामुदायिक रूप से आत्मोन्नति करने के लिए संघ-स्वातन्त्र्य की अर्थात् संगठनों के निर्माण करने के स्वातन्त्र्य की आवश्यकता भी है। क्योंकि आत्मोन्नति का जैसा अधिकार व्यक्ति को वैयक्तिक रूप से प्राप्त है, वैसा ही अधिकार सामुदायिक रूपसे भी है। इन स्वतन्त्रताओं के अभाव में नागरिकत्व का कुछ अर्थ ही नहीं रह जाता। संघ-स्वातन्त्र्य का अर्थ यह है कि एक से अधिक आदमी एक जगह

आयँ और स्थायी रूप से एक संगठन का निर्माण करें तथा उस संगठन के माध्यम द्वारा अपना प्रतिदिन का कार्य करें। इस संगठन में आने वाले व्यक्ति सभा में आने वाले व्यक्तियों की भाँति तात्कालिक कार्यक्रम में सम्मिलित नहीं होते, प्रत्युत उनमें स्थिरता होती है। उनका हित साम्य क्षणिक न होकर अधिक काल तक रहने वाला होता है।

संघ-स्वातन्त्र्य का अधिकार चाहे संविधान द्वारा मंजूर किया गया हो, या प्रचलित रीति के अनुसार मौजूदा कानून के द्वारा उसकी सीमा निर्धारित की गई हो, आज के संसार में वह एक प्रभावशाली अधिकार बन गया है। समुदाय बनाकर रहने की मनुष्यों की एक नैसर्गिक मनोवृत्ति है। मनुष्य अपने से भिन्न मनुष्य में प्रवृत्तिगत साधर्म्य को देखा करता है। समान अभिरुचि के, समान कला-वृत्ति के तथा समान ध्येय रखने वाले व्यक्ति स्वभावतः एक दूसरे के समीप आना चाहते हैं। इस प्रकार संगठित होकर, समुदाय का रूप धारण करने में, व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के लिए अधिक क्षेत्र उपलब्ध किया करता है। अपने व्यक्तित्व का विकास वह करना चाहता है। व्यक्ति की विधायक शक्ति के लिए संगठन एक उत्कृष्ट क्षेत्र है। जिस कार्य को अकेला आदमी नहीं कर सकता, उसे संघ-शक्ति के बल पर, संघ को माध्यम बनाकर, किया जा सकता है। किसी वस्तु के सम्बन्ध में कोई व्यक्ति अपनी नीति का प्रचार करे, कोई पुरानी अथवा प्रतिष्ठित संस्था अपनी नीति का प्रकाशन करे, तो इन दोनों के बीच जो अन्तर है वह स्पष्ट ही है। आज की दुनिया में संगठन-शक्ति, सामाजिक जीवन का एक अविभाज्य अङ्ग बन गई है। बच्चों के संघ से लेकर सेवा-निवृत्तों के संघ तक जीवन के सभी पड़ावों में यह प्रवृत्ति पाई जाती है। बेकारों के संगठन से लेकर मिल-मालिकों के संघों तक में यही प्रवृत्ति काम करती दीखती है। मज़दूर-संघ, मालिक-संघ, विद्यार्थी-संघ, शिक्षक-संघ, सनातन-धर्म, आर्य-समाज, व्यापारी-संघ, ग्राहक-संघ, क्रीड़ा-संघ, अध्यात्म-मण्डल आदि में तात्पर्य यह कि सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में यह प्रवृत्ति काम करती दिखाई देगी। संघ, संस्था, पक्ष अथवा मण्डल आदि कोई क्षणिक संगठन नहीं हैं। अतः उनका संविधान होता है, उनके नियम रहते हैं और उनके अनुसार काम चलाना होता है। कार्य का स्वरूप कुछ भी क्यों न हो, उसके लिए पहले विचार-विनिमय, प्रस्तावों का निर्माण तथा नीति का निर्धारण आदि होना आवश्यक रहता है। विचार-विनिमय तथा वहन आदि का माध्यम है सभा। अतः प्रत्येक संस्था के सभा-विषयक नियम बने हुए होते हैं। कुछ संस्थाएँ दर्ज हुए बिना काम नहीं कर सकतीं। कुछ संस्थाओं का अस्तित्व कानून द्वारा निर्मित होता है। फिर भी संस्था का रूप कैसा भी क्यों न

हो पर उसका काम नियम-बद्ध होना चाहिए। उसके व्यवहार में स्थिरता होनी चाहिए। इस करण में सभा-नियमन तथा सभा-संचालन पर विचार करना है। यहाँ प्रतिपादित तत्त्वों को उन संस्थाओं पर लागू करना उचित होगा जिनके संविधान में आवश्यक नियमों का अभाव है अथवा वे नियम अपूर्ण हैं। इसी प्रकार सार्वजनिक सभा-तन्त्र का विचार करते समय जिन बातों का विवरण दिया गया है, वे बातें तारतम्य से सब सभाओं के लिए लागू होती हैं। उसी प्रकार यहाँ हमने जिन बातों का विचार किया है उनका भी उपयोग तारतम्यपूर्वक सार्वजनिक सभाओं के लिए किया जाय, तो कोई आपत्ति की बात न होगी।

सभासद्—संस्था का सभासद् उसके संविधान के अनुसार बनाया जा सकता है। सभासद् कौन हो, इस बात का उल्लेख प्रत्येक संस्था के संविधान में किया हुआ होता है। चंदा देकर, निर्वाचित होकर, हिस्से खरीदकर, विशेष पद हासिल करके, विशेष ध्येय स्वीकार करके अथवा जो योग्यता और पात्रता सभा की सदस्यता के लिए निर्धारित कीगई हो, उसे पूर्ण करके कोई भी व्यक्ति सभासद् बन सकता है। वह संस्था उन सबकी होती है जो संविधान के अनुसार उसके सभासद् बने होते हैं।

साधारण सभा—(जनरल बॉडी) संस्था के सब सभासदों का जो संगठन होता है उसे सब अधिकार होते हैं। वह संस्था के कामों के सम्बन्ध में सर्वसत्ता सम्पन्न होती है। सब सभासदों से मिलकर बनने वाले संगठन को साधारण-सभा कहा जाता है। इस साधारण-सभा में, संस्था के सब कामों के बारे में, अन्तिम निर्णय किया जाता है तथा सर्व-सामान्य नीतियों का निर्धारण हुआ करता है। संस्था के मौलिक स्वरूप की बातों में परिवर्तन करने का अधिकार साधारण सभा को होता है। साधारण सभा की बैठक में उपस्थित होकर उसमें भाग लेने का अधिकार प्रत्येक सभासद् को है।

प्रबन्ध-समिति—(मैनेजिंग कमेटी) साधारण सभा के सदस्यों की संख्या हजारों तक हो सकती है, पर इतने सारे सभासद् बार-बार एक जगह पर जमा होकर, संस्था के दैनिक काम को नहीं देख सकते। संस्था का दैनिक कार्य करने के लिए थोड़े से सभासदों की एक प्रबन्ध-समिति निश्चित काल के लिए चुनी जाती है। संविधान में कोई नियम बना हुआ हो, तो उस नियम के अनुसार सत्ता-सम्पन्न व्यक्तियों की ओर से, उसकी नियुक्ति की जाती है। दैनिक कार्य के लिए साधारण सभा की नीति तथा निर्णयों को कार्यान्वित करने के लिए कुछ थोड़े से तथा चुने हुए व्यक्तियों का निर्वाचन अथवा नियुक्ति न हो तो संस्था का काम व्यवस्थित रूप से नहीं

चल सकता। इस प्रबन्ध-समिति के व्यवस्थापक-मंडल, व्यवस्थापिका-समिति अथवा संचालक-मंडल आदि अनेक नाम हैं। इस समिति के हाथ में संस्था के संविधान के अनुसार काम दिये जाते हैं। इस समिति के अधिकार साधारण सभा के अधिकारों की अपेक्षा कम तथा सीमित रहते हैं।

समिति—(कमेटी) कोई संस्था अथवा सार्वजनिक सभा, सर्वसाधारण कामों के लिए एक या एकाधिक व्यक्तियों की नियुक्ति अथवा निर्वाचन करके, उनके हाथ में वह काम सौंप देती है। इस प्रकार की नियुक्ति अथवा निर्वाचित व्यक्तियों को मिलाकर एक समिति बनती है। समिति को उतने अधिकार प्राप्त होते हैं, जितने उसे प्रदान किये गए हों। सामान्यतः समिति के निर्णय सिफारिश के रूप में होते हैं। उनके लिए उन लोगों की मंजूरी की आवश्यकता रहती है, जिन्होंने उक्त समिति का निर्माण किया है।

विषय-निर्वाचिनी-समिति—(सिलेक्ट कमेटी) किन्हीं विशेष कामों के लिए ही जिस समिति की नियुक्ति अथवा निर्वाचन किया जाता है उसे विषय-निर्वाचिनी-समिति कहते हैं, और उस विशेष प्रयोजन के समाप्त होते ही वह भी समाप्त हो जाती है।

स्थायी समिति—(स्टैंडिंग कमेटी) जब-जब कोई खास विषय अथवा कोई प्रश्न उपस्थित हो, तब-तब उसपर विचार करने तथा उसके बारे में आवश्यक सिफारिशें करने के लिए अथवा नियमानुसार अन्य उपायों से अंतिम निर्णय देने के लिए जिस समिति का निर्माण होता है उसे स्थायी समिति कहते हैं। उसके कार्य-काल का निश्चय वह संस्था अथवा वह संगठन करता है जिसके द्वारा उस समिति का निर्माण होता है।

संयोजक-समिति—(को-आर्डिनेटिंग कमेटी) एकाध विषय के अनेक अंग रहते हैं। उन पर विचार करने का उत्तरदायित्व समितियों को सौंपा हुआ होता है। उन सब के निर्णयों में साम्य स्थापित करने, उनका समन्वय करने, उन्हें न्यूनाधिक करके सूत्रबद्ध करने आदि का काम करने वाली समिति को संयोजक-समिति कहते हैं।

विशेषज्ञ-समिति—(कमेटी ऑफ एक्सपर्ट्स) किसी विशेष प्रश्न के संबंध में जो लोग विशेष जानकार होते हैं, उनकी समिति को विशेषज्ञ-समिति कहते हैं।

संरक्षण-समिति—(स्टियरिंग कमेटी) समय-समय पर संस्था के सामने जो अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं उन्हें दूर करके सावधानी के साथ निर्धा-

रित कार्य को पूर्ण करने वाले लोगों की जो समिति होती है, उसे संरक्षण-समिति कहते हैं।

उप-समिति—(सब-कमेटी) साधारण समिति द्वारा बनाई गई समिति को उप-समिति कहते हैं। साधारण समिति के समाप्त होते ही उपसमितियाँ भी समाप्त हो जाती हैं। उसे उतने ही अधिकार रहते हैं जितने अधिकार उसे दिये गए हों।

किसी भी संस्था को सभा द्वारा जो काम करना होता है, उसके लिए नियमों का होना आवश्यक है। संस्था के नियमों में सामान्यतः इस बात के नियम रहते हैं कि महासभा में कार्य किस प्रकार हो। पर अनेक बार भिन्न-भिन्न काम, भिन्न-भिन्न समितियों के अधीन होते हैं। वहाँ इस बात का उल्लेख नहीं रहता कि किस पद्धति से काम होना चाहिए। अतः समितियों में काम किस प्रकार किया जाता है, इस पर भी इस प्रकरण में विचार किया गया है। मोटे तौर पर समितियों के प्रकार हमने ऊपर बता ही दिए हैं। उनका स्वरूप, उनका कार्य तथा काल-मर्यादा किसी भी प्रकार की क्यों न हो, पर उनमें होने वाले विचार-विनिमय तथा बहस पर नियंत्रण आदि सभी नियमबद्ध होने जरूरी हैं।

बहुमत का महत्त्व—समिति हो, महासभा हो अथवा विराट् सार्वजनिक सभा, उसमें बहुमत का प्राधान्य होता है। बहुमत का सिद्धान्त एक मौलिक सिद्धान्त है। विशिष्ट विषय अथवा प्रश्न के निर्णय के लिए केवल बहुमत को पर्याप्त न मानकर, विशिष्ट अनुपात में बहुमत को निर्णयात्मक मानने का नियम, किन्हीं-किन्हीं संस्थाओं के संविधान में रहा करता है। संविधान के अनुसार परिवर्तन करना हो तो तीन-चौथाई बहुमत होना चाहिए। यदि पूँजी बढ़ाने के विषय में बात चल रही हो तो बहुमत एक विशिष्ट अनुपात में होना चाहिए। केवल बहुमत का अर्थ इक्यावन प्रतिशत के विरुद्ध ४९ प्रतिशत मानने से काम नहीं चलेगा। इस प्रकार की व्यवस्था भी हो सकती है, तथापि सभा का निर्णय बहुमत का निर्णय ही माना जाता है। अल्पमत का निर्णय नहीं माना जाता। विचार-विनिमय के द्वारा अथवा बहस द्वारा कार्य किये जाने पर यदि वह सर्व-सम्मति से न होता हो, तो उसे बहुमत से ही होना चाहिए। निर्णय बहुमत द्वारा ही किये जाते हैं। एक व्यक्ति कहे और सब लोग उसे सुनें, यह अधिनायक-तन्त्रीय पद्धति सभा-शास्त्र के नियमों के विरुद्ध है। सभा का अर्थ यह है कि सब लोग एकत्र हों, विचार करें एवं अन्त में बहुमत से जो निर्णय मान्य हो उसे सभा का सामुदायिक निर्णय मानकर मंजूर कर

लिया जाय। अपने विचारों द्वारा दूसरों को अपने अनुकूल बनाकर तथा विषय-वस्तु का बोध कराकर, उनके मत प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। यही सभा की पार्श्व-भूमि है। बहुमत के आधार पर ही सभा की इमारत खड़ी है। इस कारण सभा द्वारा किये गए निर्णयों में जब तक कोई गैर-कानूनी बात न हो, तब तक न्यायालय उनमें हस्तक्षेप नहीं करता।

सभा—नियमानुसार निश्चित विषय का विचार करने के लिए एकत्र हुए सभासदों का नाम ही सभा है।

वैध सभा—(वैलिड मीटिंग) निम्न बातों के अभाव में संस्था की कोई भी सभा वैध नहीं हो सकती—

(१) सभा में जिन्हें उपस्थित रहने का अधिकार है उन्हें उचित रूप से सूचना पहुँच जानी चाहिए।

(२) सभा उचित ढंग से संगठित हो और उसमें एक नियंत्रणकर्त्ता सभापति भी हो। जिसका उचित रीति से निर्वाचन अथवा नियुक्ति हो चुकी हो।

(३) जन-संख्या नियमानुसार उपस्थित रहनी चाहिए।

(४) उस संस्था के नियम के अनुसार सभा आयोजित हो, अर्थात् नोटिस, स्थान, समय, विषय इत्यादि के सम्बन्ध में जो नियम बने हुए हों, उनके अनुसार उसे होना चाहिए। बहुसंख्यक सभासदों की सुविधा की दृष्टि से वह अभीष्ट स्थान पर और अभीष्ट समय पर होनी चाहिए। अन्यथा इसका यह अर्थ लिया जा सकता है कि उपस्थित रहने का अधिकार रहने पर भी, जान-बूझकर उपस्थित रहना असम्भव बनाया जा रहा है और यह उचित नहीं है। यदि ऐसा हुआ तो वह सभा वैध नहीं कही जा सकती।

सभा की सूचना—सभा की सूचना सभा में भाग लेने का अधिकार जिन्हें प्राप्त है ऐसे प्रत्येक सभासद को ठीक समय पर मिल जानी चाहिए। योग्य रीति से यदि वह भेजी गई हो अथवा नियमानुसार प्रकाशित की गई हो तो वह प्रत्येक सभासद् को पहुँच गई है ऐसा मान लेना चाहिए। सभासद्का स्थायी पता लिखकर यदि डाक द्वारा भेज दी गई हो, तो वह उस तक पहुँच गई है ऐसा कानून भी मानता है। नियम के अन्दर किसी विशेष समाचार-पत्र में सूचना प्रकाशित करने का निर्देश हो, या यह निर्देश हो कि किसी भी समाचार-पत्र में सूचना अवश्य प्रकाशित की जानी चाहिए और उसके अनुसार वह सूचना प्रकाशित हो गई हो, तो भी यह मान लेना चाहिए कि वह सब तक पहुँच गई है।

नियम में यदि ऐसा निर्देश हो कि इतने दिन पहले सूचना भेजी जाय तो जिस तारीख की वह सूचना हो, अथवा जिस दिन की सभा हो, उस दिन को

छोड़कर दिन गिने जाने चाहिएँ, सात दिन पहले सूचना दी जानी चाहिए, ऐसा यदि नियम हो, तो दोनों दिनों को छोड़कर सात दिनों का अन्तर उसमें होना चाहिए। सभासद् यदि सारे देश में अथवा न्त में फैले हुए हों तो सूचना कुछ अधिक दिन पहले देनी चाहिए।

नियम के अनुसार जिसे नोटिस या सूचना जारी करने का अधिकार हो, उसीको वह जारी करना चाहिए, अन्यथा वह वैध न होगी। यदि नियम हो कि सूचना अमुक पदाधिकारी के नाम से जारी हो, और वह जारी की गई हो किसी क्लर्क के नाम से, तो वह वैध नहीं होगी। अधिकृत व्यक्ति की अनुपस्थिति में नोटिस कौन निकाले, इसके बारे में सामान्यतया नियम बने रहते हैं। पर यदि एतद्विषयक कोई नियम बना हुआ न हो और अधिकृत व्यक्ति भी उपस्थित न हो, तो यह मान लिया जाता है कि उसका अधिकार संस्था के अध्यक्ष को है। यदि सूचना उसके नाम से अथवा उसकी आज्ञा से जारी की गई हो, तो वह वैध ही मानी जाती है।

सभा के नोटिस में सभा की तारीख, समय, स्थान तथा विषय का स्पष्ट उल्लेख करना आवश्यक है। सभा के समक्ष आने वाले विषयों का उल्लेख, काम-काजका स्वरूप इतना सुगम और स्पष्ट होना चाहिए कि वह सामान्य व्यक्ति की समझ में आसानी से आ सके। यदि कोई खास सभा हो, तो उसके विषय का विवरण नोटिस में अधिक खुलासेवार होना चाहिए। नियम में यदि निर्देश हो कि नोटिस के साथ कार्य-क्रम भी भेजा जाय तो वह भी भेजें। उसमें भी प्रत्येक वस्तु का उल्लेख इतना स्पष्ट हो कि हर कोई उसे आसानी से समझ सके। सभा के सामने आने वाले विषयों के बारे में, सभासदों को स्पष्ट रूप-रेखा बता देना, संस्था के कार्यकर्त्ताओं का महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है। विषय को देखकर आयँ या न आयँ यह सभासद् स्वयं सोच लेते हैं। यदि कार्य-क्रम के सम्बन्ध में पहले ही से कल्पना हो, तो सदस्यगण उस पर कुछ विचार भी करके आते हैं। इससे विचार-विनिमय में पर्याप्त सहायता मिलती है।

सभा का स्थान ऐसा चुनना चाहिए तथा समय ऐसा रखना चाहिए जिससे सभा में सब उपस्थित रह सकें। जिन्हें उपस्थिति का अधिकार प्राप्त है, कम-से-कम उनमें से अधिकांश व्यक्ति तो अवश्य ही उपस्थित रह सकें। सभा-स्थान में ऐसी व्यवस्था हो कि सभासदों को सुगमता से प्रवेश मिल सके। बैठने का स्थान भी पर्याप्त हो जिससे सभासद् वहाँ सुविधापूर्वक बैठ सकें। अधिकार प्राप्त सभासदों को यदि प्रवेश नहीं मिला या बैठने के लिए जगह नहीं मिली, तो उस अवस्था में वह सभा वैध नहीं हो सकेगी। अतः सभा के विषय, परिस्थिति,

सभासदों की संख्या आदि का खयाल करके योग्य सभा-स्थान का प्रबन्ध करना आवश्यक है। अधिकाश सभासदों की दृष्टि से सभा का स्थान और समय, यदि असुविधाजनक हो और इस प्रकार का हो कि उनका उपस्थित होना असम्भव हो जाय, तो उस सभा में उस समय जितने भी सभासद् उपस्थित हों और सर्व-सम्मति से भी कोई काम क्यों न करें, पर वह कार्रवाई किसी भी अवस्था में वैध नहीं हो सकती।

इसी प्रकार कुछ सभासद् यदि नोटिस न मिलने के कारण उपस्थित न रह सकें, तो उस समय वहाँ पर उपस्थित सभासद् यदि सर्व-सम्मति से भी कोई कार्य करें, उसे भी कानूनी नहीं कहा जा सकता। यदि ऐसी परिस्थिति हो कि कुछ सभासदों को नोटिस मिलने पर भी सभा में उपस्थित रहना सम्भव न हो तो सभा का कार्य इस कारण अनुशासन के विरुद्ध अथवा गैर-कानूनी नहीं होगा कि इन सभासदों को नोटिस नहीं दिया गया। सामान्यतया सूचना के अभाव में सभा वैध नहीं हुआ करती। नियमानुसार नोटिस सब सभासदों को मिलना चाहिए। जब सभासद् उपस्थित हों, नोटिस के बारे में कोई शिकायत न हो, ऐसी परिस्थिति में होने वाला सारा काम वैध होता है। क्योंकि किसी के साथ कोई अन्याय नहीं हो पाता।

अध्यक्ष—सामान्यतया संस्था के पदाधिकारी नियमानुसार एक निर्धारित अवधि के लिए ही निर्वाचित अथवा नियुक्त हुआ करते हैं। अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के अधिकारों का भी निर्देश नियमों में रहता है। किसी संस्था की ओर से हुई सभा का अध्यक्ष-पद नियमानुसार ही स्वीकार किया करता है। उसकी अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष यह स्थान ग्रहण करता है। यदि उपाध्यक्ष भी अनु-पस्थित हो, तो उस अवस्था में उपस्थित सभासदों द्वारा अध्यक्ष का निर्वाचन हुआ करता है। जहाँ नियमों में यह निर्देश हो कि सभा के अध्यक्ष का पद संस्था के अध्यक्ष को ग्रहण करना है तो उस जगह अध्यक्ष की उपस्थिति में किसी अन्य व्यक्ति को अध्यक्ष नहीं बनाया जा सकता। यदि यह अधिकारी सभा का अध्यक्ष बनना पसंद न करे अथवा बीच ही में सभा-स्थान का परित्याग करके चला जाय, तो उपस्थित सभासदों को दूसरा अध्यक्ष निर्वाचित करने का अधिकार है। सभा ने किसी अन्य व्यक्ति को सभापति चुन लिया और उसके अनंतर वास्तविक अध्यक्ष आ गया तो उस समय संकट उपस्थित हो जाया करता है। निर्वाचित अध्यक्ष ने अपना आसन छोड़ने से इन्कार करायगा और वास्तविक अध्यक्ष ने अपने अधिकार के लिए आग्रह किया, तो उस अवस्था में सभासदों के सामने एक नाजुक स्थिति उपस्थित हो जाती है। जहाँ यह कहकर अन्य

व्यक्ति का निर्वाचन किया गया हो कि जब तक अधिकारी अध्यक्ष नहीं आ जाता, तभी तक उसे अध्यक्ष पद दिया जा रहा है, तब स्वभावतः यह संकट उपस्थित नहीं होता। जो संस्थाएँ कानून के द्वारा अस्तित्व में आई हैं, अर्थात् जो विधान के अनुसार बनी हैं, उनकी सभाओं में उपरोक्त परिस्थिति के उत्पन्न हो जाने पर, निर्वाचित अध्यक्ष को अपना अध्यक्षीय आसन तत्काल छोड़ देना उचित है। सभा में वास्तविक अध्यक्ष के उपस्थित रहते हुए उसे अध्यक्ष का आसन प्रदान किये बिना सभा का काम वैध नहीं कहा जा सकता। कानून द्वारा अस्तित्व में आनेवाली संस्थाएँ—लोकल बोर्ड—नगर-पालिका आदि हैं। जो संस्थाएँ कानून द्वारा अस्तित्व में नहीं आईं, फिर चाहे वे रजिस्टर्ड हों या न हों उनकी सभाओं में यदि उपरोक्त स्थिति पैदा हो जाय, तो उस समय नियमित अध्यक्ष की उपेक्षा करके निर्वाचित अध्यक्ष के नियंत्रण में अपा अपना काम करे तो उसे गैरकानूनी नहीं कहा जा सकेगा। किसी भी सभा को तात्कालिक अध्यक्ष निर्वाचित करना पड़ता है और सभा को वैसा करने का अधिकार है। अतः नियमित अध्यक्ष के आने पर, सभा यदि निर्वाचित अध्यक्ष से प्रार्थना करे और वह उसे स्वीकार करके अपना अध्यक्षीय आसन छोड़ दे, तो उसमें सभा के लिए सुविधा हो जाती है। सभी की प्रतिष्ठा बनी रहती है। सभा को इस बात का पूरा हक है कि नियमित अध्यक्ष के आ जाने पर निर्वाचित अध्यक्ष से अपना आसन छोड़ने के लिए कहे तथा इस विषय में प्रस्ताव मंजूर करे। संकट का परिहार विनयपूर्वक हो जाय तो ठीक है। सभा के अध्यक्ष के लिए प्रस्ताव करने की नौबत आना किसी भी अवस्था में वांछनीय नहीं है।

संस्था के अध्यक्ष का चुनाव जिस सभा में होता है, उस सभा का सभापति उम्मीदवार व्यक्ति को नहीं बनना चाहिए। विद्यमान अध्यक्ष यदि पुनः चुनाव के लिए उम्मीदवार हो तो उसे उक्त सभा का सभापति बनाना उचित नहीं है। अपना आसन रिक्त करके उसे अन्य किसी व्यक्ति को सभापति चुनने के लिए कहना चाहिए। ऐसा करने से चुनाव में अन्याय के लिए गुञ्जाइश नहीं रहती। जिस सभा में सभापति के विरुद्ध निन्दात्मक प्रस्ताव उपस्थित होने वाला न हो, या हो चुका हो, तो अध्यक्ष अपना आसन छोड़ दे। उसे अपने सम्बन्ध में स्पष्टीकरण करना चाहिए और तब तक के लिए किसी अन्य व्यक्ति को अध्यक्ष के आसन पर आरूढ़ होने की प्रार्थना करनी चाहिए। अध्यक्ष पद पर आसीन रहकर वाद-विवादात्मक एवं वैयक्तिक मामले में अध्यक्ष उन्मुक्त होकर नहीं बोल सकता। उसके भाषण का उत्तर देना भी

औरों के लिए कठिन हो जायगा। दोनों पक्षों को न्याय मिले, इस दृष्टि से सभा किसी को तात्कालिक सभापति चुने। अध्यक्ष को अपने विरुद्ध उपस्थित हुए आक्षेपों का उत्तर देने की पूरी छूट है।

अध्यक्ष का प्रस्ताव—जहाँ नियमित अध्यक्ष उपस्थित हो वहाँ अध्यक्ष को प्रस्ताव करने की आवश्यकता नहीं। नियम से वह अध्यक्ष है? जहाँ निर्वाचन करना हो, वहाँ उपस्थित सभासदों में से कोई किसी का भी नाम उपस्थित कर सकता है। "श्रीयुत—आज की सभा का अध्यक्ष पद ग्रहण करें" इस प्रस्ताव के लिए परम्परागत परिपाटी के अनुसार अनुमोदन करने की जरूरत रहती है। परंतु यदि संस्था के नियमों में यह न हो कि इस प्रस्ताव के लिए अनुमोदन आवश्यक ही है, तो अनुमोदन के अभाव में वह प्रस्ताव अनुचित नहीं माना जायगा। इसी प्रकार यदि कानून के द्वारा भी अनुमोदन की आवश्यकता न हो तो उस समय भी अनुमोदन के अभाव में प्रस्ताव अवैध नहीं माना जायगा। ऐसे प्रस्ताव करने वाले अथवा अनुमोदन करने वाले को किन नियमों का पालन करना चाहिए और किस सीमा में रहकर काम करना चाहिए इसका उल्लेख पिछले प्रकरण में किया जा चुका है। सभा के सामने यदि किसी अन्य व्यक्ति का नाम न आय, तो आए हुए नाम को ही सभा के सामने मत-गणना के लिए पेश करके, प्रस्तावक को यह घोषित करना चाहिए कि प्रस्तुत व्यक्ति अध्यक्ष पद के लिए निर्वाचित हो गया है। यदि दूसरा नाम यथा-नियम उपस्थित हो तो मत-गणना द्वारा उसका निर्णय हो। यह मत-गणना प्रस्तावक या संस्था का कोई पदाधिकारी करे। प्रस्तावक निर्णय की घोषणा करे। पहला नाम यथा-रीति उपस्थित किये जा चुकने के पश्चात्, दूसरे नाम के लिए बहुत अधिक काल तक सभा को निष्क्रिय रखना उचित नहीं। किसी भी समय दो मिनट से अधिक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं। उतने समय में यदि कोई दूसरा नाम नहीं आता तो प्रस्तावक को चाहिए कि अपना प्रस्ताव मत-गणना के लिए सामने लाय और निर्णय घोषित कर दे। दूसरे नाम के न आने पर यदि कोई एकदम यह घोषित कर दे कि निर्विरोध निर्वाचन हो गया है, यद्यपि उसे गैर-कानूनी नहीं कहा जा सकता, तो भी ऐसा करना वांछनीय नहीं है। अध्यक्ष सभा का नियंत्रक होता है, सभा के ऊपर अपना अधिकार चलाता है, अतएव उसका निर्वाचन प्रत्यक्ष मत-गणना द्वारा हो। यह यों भी वांछनीय है और वैधानिक दृष्टि से भी निर्दोष है।

अध्यक्ष कैसा हो—सभा का अध्यक्ष कैसा हो, इस सम्बन्ध में कुछ निर्देश हम पिछले प्रकरण में कर आए हैं। सार्वजनिक सभा के अध्यक्ष की अपेक्षा

संस्था के स्थायी अध्यक्ष और संस्था की सभाओं के अध्यक्ष में कुछ अन्य प्रकार के गुण होने चाहिएँ। सार्वजनिक सभाओं के अध्यक्ष में सभा में शान्ति एवं सुव्यवस्था बनाए रखने के गुण-विशेष का अधिक महत्त्व रहता है। सार्वजनिक सभा से भिन्न सभाओं में अध्यक्ष के लिए सभा में होने वाले काम-काज से सम्बन्धित विषयों का ज्ञान होना आवश्यक है। अच्छा तो यह है कि उसे सम्पूर्ण ज्ञान रहे। इतना न हो तो जितना भी ज्ञान वह अधिकाधिक मात्रा में प्राप्त कर सकता हो उतना ज्ञान उसे रहना ही चाहिए। वह धीर-प्रकृति, दृढ़ मति, प्रसन्न वदन और निर्विघ्नतापूर्वक सुचारु रूप से सभा का संचालन करने की क्षमता रखता हो। प्रत्येक को अपने अनुकूल बना लेने वाली पद्धति एवं अनुशासन में काम करने वाला हो। यह तो होना ही चाहिए परन्तु इसके अतिरिक्त जिस पर बहस होने वाली हो, उसके सम्बन्ध में तो जानकारी विशेष मात्रा में होनी चाहिए। क्रोधी, चिड़चिड़ा, किसी का पक्ष लेकर काम करने वाला अध्यक्ष, सर्वथा अयोग्य है। जिसे पद्धति के अनुसार काम करना नहीं आता या कहना चाहिए आदत नहीं, अथवा जो कुछ काल के लिए भी पक्षपात-रहित तथा न्यायानुवर्ती नहीं रह सकता, जिसमें तार्किक बुद्धि नहीं, जिसे विचार करना नहीं आता, जो प्रत्युत्पन्न-मति नहीं, जिसमें उसकी शक्ति ही नहीं, जो ठीक से काम-काज नहीं चला सकता या जिसे उसका ज्ञान न हो और जिसे अपने अंतर्गत भावों को सभा के सम्मुख यथावस्थित रूप से उपस्थित करना नहीं आता, ऐसे व्यक्ति को अपनी ओर से सभापति-पद की यह बला भूलकर भी मोल नहीं लेनी चाहिए।

सार्वजनिक सभा घंटा या दो घंटा चला करती है। संस्था की सभाएँ प्रतिदिन भी हो सकती हैं। खुला अधिवेशन तथा विषय-निर्वाचिनी समितियों की बैठकों आदि की सभा का रूप भिन्न होता है। घंटों अध्यक्ष को बैठा रहना पड़ता है। अधीर प्रकृति, अज्ञानी, अविवेकी अध्यक्ष सभा की कार्रवाई में गड़बड़ कर देता है। संस्थाओं की सभाओं का अध्यक्ष केवल सभा का नियंत्रणकर्ता ही नहीं होता। सभा के नियंत्रण के साथ-साथ उसे सभा का मार्ग-निर्देशन भी करना पड़ता है। संस्था का अध्यक्ष होने के नाते संस्था के ध्येय और नीति की रक्षा का उत्तरदायित्व उसी पर रहता है। केवल नियमों के अनुसार काम करने भर से उसकी इतिकर्तव्यता समाप्त नहीं हो जाती। नगरपालिका का अध्यक्ष लोकल बोर्ड का अध्यक्ष या किसी पंचायत का अध्यक्ष, ये केवल नियंत्रणकर्ता ही नहीं होते, उन्हें मार्ग-दर्शन भी करना पड़ता है। नीति-निर्धारण और संस्था के निर्णयों को कार्य रूप में परिणत करना होता है। नियमानुसार प्रस्ताव चर्चा के लिए

आने-मात्र से उनका कार्य पूर्ण नहीं हो जाता। संस्था की नीति की दृष्टि से भी उन्हें विचार करना चाहिए। अतः अध्यक्ष विषय की जानकारी तथा सभा के चलाने में कुशल हो। वाद-विवाद में उसको भाग लेना पड़ता है। वाद-विवाद को अभीष्ट निर्णयों पर पहुँचाने का उत्तरदायित्व भी उसी पर रहता है।

सार्वजनिक सभा तथा विधान-सभा के अध्यक्ष विशेष रूप से सभा-नियन्त्रक होते हैं। सभा के सामने कौन-सा विषय अथवा कौन-सा बिल आय, इसके सम्बन्ध में उनका उत्तरदायित्व नहीं रहता। आने वाले विषय और बिल नियम के अनुसार ही आने चाहिएँ और यही उन्हें देखना होता है। ध्येय और नीति की दृष्टि से वे विषय अथवा बिल वांछनीय अथवा अवांछनीय यह देखना उनका काम नहीं है। वाक्य में कौन-सा अर्थ है अथवा कल्पना छिपी हुई है, इसका विचार व्याकरण नहीं करता। वह केवल शुद्धता तथा अशुद्धता का विचार किया करता है। सभा-नियन्त्रक की भूमिका व्याकरण की भूमिका-जैसी है, सभा-विषयक नियमों का अनुसरण करके काम-काज चल रहा है या नहीं, इतना भर सभा-नियन्त्रक देखा करता है। संस्थाओं द्वारा आयोजित सभाओं के अध्यक्ष उत्कृष्ट सभा-संचालक होने चाहिएँ। शांत, शांतिपूर्वक सुनने की आदत वाला, हाजिर जवाब, विवेकी, न्यायबुद्धि से युक्त, आनन्द वृत्ति से काम चलाने वाला, नम्र किन्तु निश्चयी तथा सभा को नानाविध वृत्तियों वाले मनुष्यों का समुदाय मानकर उनके साथ मधुरतापूर्वक व्यवहार करने वाला अध्यक्ष श्रेष्ठ होता है। क्षुद्र भाव से की गई कटु आलोचना की उपेक्षा करके अपने भाषण से विधायक वातावरण निर्माण करने में सक्षम प्रसंगोचित विनोद द्वारा क्षुब्ध वातावरण को बदलनेमें चतुर, अल्पसंख्यकों को योग्य संरक्षण देने वाला, अनुशासन तथा नियम के अन्तर्गत किये जाने वाले विरोध के लिए पूर्ण अवसर प्रदान करने वाला तथा सभा में गुण्डागर्दी मचाने वालों को अनुशासन में रखने में समर्थ आदि गुणों से पूर्ण व्यक्ति ही एक कामयाब अध्यक्ष कहा जाता है।

अध्यक्ष के कर्तव्य—सभाके अध्यक्ष के अध्यक्षके नाते कुछ सर्वमान्य कर्तव्य निर्धारित हो चुके हैं। अध्यक्ष यह देखे कि सभा विधियुक्त है या नहीं, नोटिस ठीक है या नहीं, सभा नियमानुसार निमन्त्रित और आयोजित तो है। सभा में सब उपस्थित होने वाले सभासद् ही हैं या अनधिकृत लोग भी हैं इत्यादि बातों के सम्बन्ध में अध्यक्ष सतर्कता से काम ले, नियमानुसार सभा का कार्य एवं संचालन हो, जिस प्रकार कार्य-क्रम निर्धारित किया हुआ हो उसी प्रकार तथा उसी क्रम से संचालित करना, सभा की सम्मति से यदि उसमें परिवर्तन हो गया

हो तो उसके अनुसार तथा उतने प्रमाण में वह परिवर्तन करना भी अध्यक्ष का कर्तव्य है। अध्यक्ष यह भी देखे कि सभा में आने वाले विषय नियमानुसार आयँ और आने वाले प्रस्ताव अथवा संशोधन योग्य रीति से उपस्थित किये जायँ। उपस्थित विषयों पर विभिन्न वक्ताओं को अपना मत प्रकट करने का समय दिया जाय। जब तक विषय, वह चाहे प्रस्ताव के रूप में हो अथवा अन्य किसी रूप में, यथारीति प्रस्तुत न किया गया हो, तब तक उस पर बहस नहीं होने देनी चाहिए। नियम में यदि यह लिखा हो कि किसी प्रस्ताव अथवा संशोधन के लिए अनुमोदन की आवश्यकता है तो जब तक वह प्राप्त नहीं होता तब तक यह नहीं माना जाता कि विषय यथारीति प्रस्तुत किया गया। उस पर बहस भी नहीं होती। होने वाली बहस प्रस्तुत विषय के लिए संगत हो, वक्ता की भाषा सभ्य हो, प्रतिपादित वस्तु सत्य के आधार पर हो, इत्यादि वस्तुओं के बारे में अध्यक्ष ध्यान दे। असंगत बहस को बन्द करना, सभा के सामने जो विषय मौजूद न हो उस विषय पर बोलने न देना, एक व्यक्ति को एक बार से अधिक न बोलने देना, आदि बातों पर ध्यान देना अध्यक्ष के लिए जरूरी है। अध्यक्ष समय-समय पर वैधानिक आपत्ति (प्वायंट ऑफ आर्डर) उपस्थित होने की अवस्था में उचित निर्णय देकर कार्य को नियमानुसार चलाय। कोई वस्तु गैर कानूनी न होने दे, नियमानुसार बहस समाप्त हो गई हो। कोई बोलने वाला न रह गया हो, या चर्चा पर्याप्त हो चुकने के कारण सभा ने उसके बन्द करने का कोई सुझाव मंजूर किया हो तो नियमानुसार सभा का मत ले तथा उसे प्रकाशित करे, मत-विभाजन की माँग होने पर उसे स्वीकार करे. तथा अपना निर्णय दे। नियम के अनुसार सभा को स्थगित अथवा समाप्त करे और सभा की कार्रवाई लेखबद्ध करे।

अध्यक्ष के अधिकार—कर्तव्यों के साथ-साथ अध्यक्ष को कुछ अधिकार भी प्राप्त हैं और सभा के कार्यक्रम को यथाविधि पूर्ण करने की दृष्टि से वे हैं भी आवश्यक। सभा में शांति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए जो कुछ उचित प्रतीत हो वह सब करने का अधिकार, अनुशासन-भंग, अवज्ञा अथवा उपद्रव करने वाले सभासदों की आज्ञा न मानने पर बाहर निकाल देना। इसके लिए आवश्यक शक्ति का प्रयोग करने आदि का अधिकार अध्यक्ष को है। उक्त सभासद् ने यदि प्रतिकार किया तो वह अपराध हो जाता है। उचित परिमाण से अधिक शक्ति का उपयोग करने पर सभापति के विरुद्ध मान-हानि का अभियोग लगाया जा सकता है। अनुचित व्यवहार करने वाले सभासद् को ताकीद करनी चाहिए। उसके पश्चात् उसे सभा से बाहर चले जाने के लिए कहना ठीक है।

इस पर भी यदि वह न माने तो उसे बाहर निकाल देना ही उचित है।

यदि संभव हो तो इस प्रसंग में सभा की सम्मति भी ले लेनी चाहिए। किसी अनधिकारी व्यक्ति को, किसी भी समय यदि वह न माने तो बलपूर्वक बाहर निकालने का अधिकार अध्यक्ष को है। शान्तिपूर्वक काम होना असंभव हो, दंगा शुरू हो जाय या सभापति को यह प्रतीत हो कि दंगा अब हुए बगैर नहीं रहेगा, तो वह सभा स्थगित कर सकता है। अन्य परिस्थतियों में, सभा की सम्मति द्वारा या नियमों के द्वारा उसे अधिकार मिला हुआ हो तभी वह सभा को स्थगित कर सकता है। उसने यदि अध्यक्ष का पद छोड़ दिया तो दूसरे अध्यक्ष को नियुक्त करके सभा का कार्य विधियुक्त रीति से अथवा कानूनी तरीके से किया जा सकता है। कार्यक्रम सूची में उल्लिखित काम यदि पूर्ण नहीं हुआ, केवल बहुमत के जोर पर बेईमानी से सभा को स्थगित करने का विचार स्वीकृत हो गया और अध्यक्ष सभा को स्थगित घोषित करके सभा-स्थान छोड़कर बाहर चला गया, तो उस अवस्थामें अवशिष्ट सदस्यों की संख्या यदि पूरी हो, तो किसी दूसरे व्यक्ति को अध्यक्ष बनाकर, सभा का कार्य आगे चलाया जा सकता है। वह कार्य विधियुक्त अर्थात् कानून-सम्मत ही माना जायगा। यदि सभा स्थगित करने के बारे में कोई नियम न बना हुआ हो तो इसके लिए सभासदों की निर्विरोध सम्मति की आवश्यक रहती है, केवल बहुमत के आधार पर सभा को स्थगित कर देना खतरनाक साबित होता है। यदि नियम बना हुआ हो तो बहुमत के आधार पर भी सभा स्थगित की जा सकती है।

आपत्तिक प्रश्नों के उपस्थित होने पर यदि अध्यक्ष ईमानदारी तथा सभा की हित-कामना की दृष्टि से निर्णय करता है, जो निर्णय न्याय-युक्त हो तथा निष्पक्षता से किया गया हो तो न्यायालय उसमें हस्तक्षेप नहीं करता। उदाहरणार्थ, मत-गणना में नाम-मात्र को कोई गलती रह गई अथवा किसी सदस्य का मत अग्राह्य मान लिया गया, मगर उससे सभा के निर्णय पर किसी किस्म का कोई प्रभाव या अन्तर नहीं पड़ा, तो ऐसे निर्णय में भी कोर्ट हस्तक्षेप नहीं करता। सभा-संचालन करते समय अध्यक्ष नियमानुसार तथा ईमानदारी से जो निर्णय दे अथवा नियमों का जो अर्थ लगाय, सभा को उसे मानना चाहिए। उस पर बहस नहीं करनी चाहिए। अमान्य निर्णय के विरुद्ध चर्चा न करने अथवा होने देने का अध्यक्ष को अधिकार है। अध्यक्ष के निर्णय के विरुद्ध कोर्ट में अपील की जा सकती है अथवा योग्य नोटिस देकर नियमानुसार अध्यक्ष को पद-च्युत करने का और उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव सभा के सामने

उपस्थित किया जा सकता है। इसी प्रकार निर्णय को रद्द करने का प्रस्ताव भी यथानियम नोटिस देकर स्वीकृत किया जा सकता है'। इतनी बात अवश्य है कि वह सब उस सभा में नहीं हो सकता। हाँ, उस सभा में अध्यक्ष द्वारा दिया हुआ निर्णय ही मान्य सिद्ध होता है। निन्दा के रूप में सभा-त्याग करने से कभी-कभी अभीष्ट सिद्ध हो जाता है। सभा के काम को उचित रीति से पूरा करने के लिए भाषणों की काल-मर्यादा बाँध देने का तथा वक्ताओं की संख्या को नियमित करने इत्यादि का अध्यक्ष को अधिकार है। सभा का समय निश्चित किया हुआ हो या किसी विषय के लिए यह नियम बना दिया हो कि उस विषय पर एक विशेष समय तक ही चर्चा हो सकती है, तो उस अवस्था में भाषणों तथा वक्ताओं की संख्या पर पाबन्दी लगा देने का आवश्यक अधिकार हो जाता है। सभा का संचालन करते समय दिये गए निर्णयों को कार्यान्वित करने का अधिकार भी अध्यक्ष को है। एक बार एक प्रकार का निर्णय देने पर उसी सभा में दोबारा वही अथवा उस जैसा ही कोई और प्रश्न उपस्थित हो जाय, तो पहले जो निर्णय दिया था वही निर्णय देना अधिक अच्छा रहता है। भली-भाँति विचार न करके दिया हुआ निर्णय, अथवा ऐसा कोई निर्णय जिसके कारण अन्याय हुआ हो, तो उस अन्याय के प्रतीत हो जाने पर भी अपनी प्रतिष्ठा के मोह में उस पर अड़े रहना उचित नहीं है। कार्यक्रम में स्थिरता लाने के लिए ही उपरोक्त अधिकार है।

बहस में भाग लेने का तथा संशोधन उपस्थित करने का भी अध्यक्ष का अधिकार है। सभासद् यदि अध्यक्ष बन जाय तो इसका यह अभिप्राय नहीं कि सभासद् के अधिकार से वह वंचित हो गया। तथापि इस अधिकार का उपयोग उचित सीमा में रहकर किया जाना चाहिए। प्रत्येक प्रश्न पर अध्यक्ष बोले अथवा मतदान पर अपना असर डाले, यह कोई बहुत अच्छी बात नहीं कही जा सकती। जहाँ मार्ग-दर्शन करने की आवश्यकता हो उसे वहीं बोलना चाहिए। बार-बार बोलने से अध्यक्ष की प्रतिष्ठा कम हो जाती है। भाषण के सम्बन्ध में सारी मर्यादाएँ अध्यक्ष के लिए भी लागू हैं। असभ्य भाषा, असत्य प्रतिपादन, अप्रस्तुत विषय-वस्तु आदि से उसे भी बचना चाहिए। जहाँ उसकी भूमिका सभा-नियन्त्रक के नाते महत्त्व पा गई हो वहाँ अध्यक्ष बहस-मुबाहिसे में भाग न लें तथा पक्षपात-शून्य होकर काम करे। उदाहरणार्थ, विधान-सभा का अध्यक्ष अथवा संसद् का अध्यक्ष बहस में क्वचित् ही भाग लेते हैं और यह प्रचलन-क्रम वांछनीय है। अध्यक्ष को अधिक वोट देने का अधिकार है, परन्तु इस अधिकार का प्रयोग वह तभी कर सकता है यदि नियमों में उसका उल्लेख हो। केवल

अध्यक्ष बन जाने-मात्र से किसी को अधिक वोट देने का अधिकार प्राप्त हो जाता है, ऐसा न तो कोई कानून है और न कोई प्रचलन है। उसको सभासद् होने के नाते प्राप्त हुआ मत भी उस समय प्रयोग में नहीं लाना चाहिए जब सभासदों के मत सर्वथा समान आए हों। कारण, जब दोनों पक्षों के समान मत हों, उस समय उसे नियमानुसार अधिक मत देने का अधिकार प्राप्त होता है, और ऐसी अवस्था में सभा के निर्णय को उसके अपने निर्णय का-सा स्वरूप प्राप्त हो जाता है। अधिक मत देने का प्रसंग आय तो विद्यमान परिस्थिति (स्टेट को) के पक्ष में उसे मत देना चाहिए। अर्थात् प्रस्ताव से पूर्व की परिस्थिति बनी रहे, ऐसा उसका परिणाम होना चाहिए। यह प्रचलन-क्रम सर्वमान्य है। अपनी विचार-धारा किसी भी समय वह बहस के बीच में अथवा उसके अन्त में प्रकट कर सकता है।

अध्यक्ष के कर्त्तव्य तथा अधिकारों का उल्लेख सामान्यतया संस्था के संविधान में रहता है। संविधान में उल्लिखित नियमों के अनुसार सभा का काम चले, यह हेतु हो तो उसके लिए नियमों की भाषा स्पष्ट तथा असंदिग्ध होनी चाहिए। चूँकि नियमों के अनुसार ही अध्यक्ष को अधिकार प्राप्त हुआ करता है इसलिए नियमों का पूरा ज्ञान उसे होना आवश्यक है। संस्थाओं के नियम जब मर्जी हो तब बदले नहीं जा सकते। नियमों में परिवर्तन करना कोई आसान काम भी नहीं है। उसका तन्त्र काफी विकट होता है। इस दृष्टि से विचार करने पर असाधारण परिस्थिति में कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसके सम्बन्ध में भी अध्यक्ष को नियमों द्वारा अधिकार दिये जाते हैं। किन्हीं विशेष कठिन परिस्थितिय में सभा की कार्रवाई ठीक ढंग से चलाने के लिए साधारण नियमों को स्थगित करने की व्यवस्था संस्थाओं के विधान में रहती है। इस सम्बन्ध में अथवा उनके द्वारा मार्ग-दर्शन न होता हो, तो देश की मुख्य विधान-सभाओं के अन्दर चलने वाले काम-काज के उदाहरणों को देखकर उनके अनुसार व्यवहार करने का अध्यक्ष को अधिकार है। संस्था के नियम, प्रचलन, पहले के उदाहरण एवं विधान-सभाओं के रीति-रिवाज, इन चार साधनों से अध्यक्ष को योग्य एवं आवश्यक अधिकार मिला करता है।

अध्यक्ष का प्रास्ताविक भाषण—संस्था के स्वरूप और सभा के कार्य को निगाह में रखकर अध्यक्ष को प्रास्ताविक भाषण करना चाहिए। सालाना बैठक हो तो गत वर्ष की संक्षेप से समालोचना कर देना उचित है। असाधारण सभा हो तो गतवर्ष का महत्त्व तथा मुख्य उद्देश्य संक्षेप में कह देना चाहिए। जिन विषयों पर सभा में वाद-विवाद होना है उनका दिग्दर्शन भी कराना चाहिए। उचित

अवसर पर अपने मत का संक्षेप में उल्लेख हो तथा दृष्टि यही रखनी चाहिए कि वाद-विवाद की मर्यादा सुरक्षित रहे। प्रास्ताविक भाषण से ऐसा वातावरण निर्माण करना चाहिए जिससे सभा का कार्य शांतिपूर्वक समाप्त हो सके। जहाँ अध्यक्ष का काम केवल सभा को नियन्त्रित रखने का है वहाँ स्वभावतः प्रास्ताविक भाषण की आवश्यकता नहीं।

प्राथमिक आक्षेप—अध्यक्ष के स्थानापन्न होते ही अथवा उसके प्रास्ताविक भाषण के समाप्त होते ही सभा की अवैधानिकता के बारे में आक्षेप उठाने चाहिएँ। नोटिस, तदन्तर्गत विषय, सभा का समय, सभा का स्थान, नोटिस का प्रकाशन, अध्यक्ष का चुनाव अथवा नियुक्ति आदि विषयक आक्षेप सभा के आरम्भ होने से पूर्व ही उठाए जायँ। आक्षेप करने वाले को उचित है कि संस्था के संविधानांतर्गत नियम दिखलाकर संक्षेप में आक्षेप उपस्थित करे। उस पर अध्यक्ष को चाहिए कि उन उपायों का उत्तर देने के लिए कार्यकारिणी के सदस्यों को तथा व्यवस्थापिका-समिति को आहूत करे। उचित प्रतीत हो तो उस पर कुछ देर बहस होने दी जाय, और उसके पश्चात् अनुकूल-प्रतिकूल युक्तियों को निगाह में रखकर, संविधान के प्रस्तुत नियमों को अपने ध्यान में रखकर निर्णय दे। सभा यदि नियम के अनुसार न हुई हो, कानून के खिलाफ यदि उसका व्यवहार हुआ हो तो उस सभा को अपने निर्णय में गैरकानूनी तथा नियम विरुद्ध साबित करना चाहिए। अधिकांश बातें नियम के अनुसार हुई हों या सबको यथारीति और कानून के अनुसार मान लेने से विशेष अन्याय हो तो सभा को कानून के अनुसार ही मानकर निर्णय देना चाहिए। जो बात से स्पष्ट हो गैरकानूनी है उसे वैसा ही मानना ठीक है। जो बात गैरकानूनी नहीं है पर नियम की दृष्टि से थोड़ी अनुचित है पर उसकी वजह से विशेष अन्याय न होता हो तो उसे गैरकानूनी मानकर सभा को गैर कानूनी ठहराना ठीक नहीं। नियम के अनुसार यदि नोटिस ही न भेजा हो या सभासदों तक सूचना न पहुँचाई गई हो तो यह बात निःसन्देह कानून के विरुद्ध है, इस कारण सभा को गैरकानूनी ठहराना आवश्यक हो जाता है। इसके विपरीत नोटिस तो निकाला है पर जो दूर हैं अथवा परदेश में हैं, आ नहीं सकते, उन्हें नोटिस नहीं भेजा, तो यह बात थोड़ी अनुचित तो है लेकिन नियम के विरुद्ध भी है। तदपि यह गैरकानूनी नहीं हो जाती, अतएव उतने भर के लिए सभा को गैरकानूनी करार देने की आवश्यकता नहीं। सभा को चालू रखने में यदि किसी पर, किसी प्रकार का अन्याय न होता हो तो अनुचित बात को गैरकानूनी मानने की आवश्यकता नहीं। इस प्रकार का आक्षेप सभा के आरम्भ होने के बाद उठाने से आक्षेप-कर्ता की

नीयत पर सन्देह हो सकता है। यदि समय रहते आक्षेप न उठाया गया तो सभा आरम्भ करने के लिए अनुमति मिल गई, यह निष्कर्ष निकालना ठीक है। सभा की समाप्ति के समय सभा की वैधानिकता के बारे में आक्षेप उठाना नियम के अनुसार भले ही उचित साबित होता हो, तो भी अध्यक्ष आक्षेप-कर्ता के उस समय तक के आचरण को ध्यान में रखकर जो निर्णय उचित प्रतीत हो वही दे। सभा की वैधानिकता के बारे में, सभा के आरम्भ से ही आपत्ति उठाने के सम्बन्ध में नियम बिलकुल स्पष्ट होना चाहिए। नियम के अभाव में सभा आरंभ हो जाने के पश्चात् उठाए जानेवाले आक्षेप को व्यर्थ ठहराना ही न्यायोचित है।

कोरम—संस्था के हजारों सभासद् होते हैं, तथापि सभा में सब-के-सब उपस्थित नहीं रह सकते। सार्वजनिक सभाओं में आने का अधिकार सबको रहता है अतः कितने आदमियों के आ जाने पर सभा आरम्भ की जाय, इस बारे में नियम बनाना कठिन है। अतः कोरम का नियम वहाँ पर लागू नहीं होता। इसके विपरीत संस्था के सभासदों की संख्या निश्चित रहती है अतः उसे ध्यान में रखकर तथा संस्था के स्वरूप एवं कार्य को ध्यान में रखकर यह निर्धारित करना सम्भव है कि कितने सभासदों के उपस्थित रहने पर सभा का काम शुरू किया जा सकता है। सभा का अर्थ है वाद-विवाद, विचार-विनिमय। तथा उसमें से स्पष्ट होने वाले निर्णय आदि को ध्यान में रखकर यह संख्या निर्धारित की जानी चाहिए। यह निश्चित संख्या संविधान द्वारा अथवा नियमों के द्वारा निर्धारित की जाया करती है। इस निश्चित संख्या के अनुसार सभासदों के उपस्थित रहने पर सभा का काम आरम्भ किया जा सकता है अथवा चालू रखा जा सकता है। यह निश्चित संख्या ही कोरम है। सभा को प्रातिनिधिक स्वरूप देने के लिए और सभा के कार्य में उत्तरदायित्व की भावना को बनाए रखने के लिए, संस्था के समस्त सदस्यों तथा गणसंख्या के बीच एक निश्चित अनुपात रखना पड़ता है। नगरपालिकाएँ, लोकल बोर्ड, पंचायतें आदि में सामान्यतः सभासदों की कुल संख्या का $\frac{१}{३}$ कोरम माना जाता है। यहाँ के मध्यवर्ती विधान-परिषद् (संसद्) में तथा प्रांतीय विधान-सभाओं में यह अनुपात सामान्यतः $\frac{१}{६}$ बैठता है। ब्रिटिश पार्लियामेंट की कामन्स-सभा के सभासद् ६१२ हैं, पर केवल ४० सभासदों का वहाँ कोरम माना जाता है। जो संस्थाएँ नागरिकों की स्वेच्छा से अस्तित्व में आई होती हैं, उन सबमें उपरोक्त दृष्टि से गण-संख्या का अनुपात निर्धारित करना कठिन होता है। म्युनिसिपैलिटियाँ, लोकल बोर्ड, कारपोरेशन विधान-सभाओं आदि के सभासदों की संख्या कानून द्वारा निश्चित एवं मर्यादित होती हैं।

ये सारी संस्थाएँ कानून द्वारा अस्तित्व में आई हुई (स्टेटयुटरी बॉडीज) होती हैं। इसके विपरीत नागरिकों की स्वेच्छा द्वारा अस्तित्व में आई हुई संस्थाएँ, फिर चाहे वे दर्ज की हुई हों अथवा न की हुई हों, सभासदों की संख्या पर क्वचित् ही प्रतिबन्ध डालती हैं। जो व्यक्ति हिस्सा खरीद लेगा वही कम्पनी का सभासद् बन जायगा। जो चंदा देगा, उद्देश्य मानेगा वही सभासद् हो जायगा। ऐसी स्थिति में गण-संख्या निर्धारित करते समय सभासदों की कुल संख्या की अपेक्षा इस बात पर अधिक ध्यान देना चाहिए कि सफलतापूर्वक विचार-विनिमय तथा चर्चा किस प्रकार होगी। गण-संख्या के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ नियम होने अवश्य चाहिएँ। जहाँ गण-गणना के बारे में कोई नियम बना हुआ नहीं है वहाँ ५१ प्रतिशत सभासदों की संख्या को गण-संख्या माना जाता है। सभा का अर्थ है बहुमत से काम करने वाली जमात। बहुमत की उपस्थिति के अभाव में काम वैधानिक रीति से नहीं होगा। यह सर्वसम्मत सिद्धान्त यहाँ लागू होता है। जहाँ नियम होता है वहाँ उसकी उपयोगिता सिद्ध होती है।

अध्यक्ष को चाहिए कि वह आसन पर बैठने से पहले यह देख ले कि कोरम पूरा है या नहीं। कोरम के अभाव में सभा वैधानिक रूप में संगठित हुई है यह नहीं कहा जा सकता। वास्तव में यह प्रश्न विचारनीय है कि सदस्यों का कोरम पूरा न होने पर सभा का समय हो जाने के बाद अध्यक्ष को अपना आसन ग्रहण करना चाहिए या नहीं। कामन्स-सभा का अध्यक्ष कोरम देखे बिना स्थान ग्रहण नहीं करता। वह स्थानापन्न हुआ तो यह समझा जाता है कि कोरम पूरा हो गया, सभा सज्जित हो गई (हाउस इज मेड) तथापि अध्यक्ष कोरम के पूरा हुए बगैर स्थानापन्न नहीं होता। सभा का समय होते ही वह देखता है और यदि कोरम पूरा नहीं होता तो वह नियमानुसार एक निर्धारित काल तक ठहरता है। उसके पश्चात् वह फिर देखता है और यदि तब भी कोरम पूरा न हो तो सभा को अगले दिन तक के लिए स्थगित कर देता है। सभा का समय होते ही अध्यक्ष को अथवा सभा के संयोजक को चाहिए कि वह यह देख ले कि कोरम पूरा हुआ है या नहीं। संख्या परी न हो तो नियमानुसार उसे ठहर जाना चाहिए। उसके बाद फिर एक बार देखना चाहिए और यदि तब भी कोरम पूरा न हुआ हो तो नियम के अनुसार सभा को धकेल देना ही ठीक है। जिस सभा का आरम्भ ही नहीं हुआ उसे स्थगित किया गया है ऐसा नहीं कहा जा सकता। साधारणतया विज्ञापित समय से लेकर आध घंटे तक कोरम की प्रतीक्षा करना उचित है। उतने समय में यदि कोरम पूरा नहीं हुआ तो सभा का समय बढ़ा दिया ऐसा अध्यक्ष को आसन ग्रहण करते हुए केवल

खड़े होकर कह देना चाहिए। किन्हीं मौकों पर गण-संख्या यदि ठीक समय पर उपस्थित नहीं हुई, सभा को एकदम रद्द करने का अधिकार है। उदाहरणार्थ, सभासदों ने नामावली भेजकर जिस सभा को बुलवाया हो वह सभा (मीटिंग काल्ड अपोन रिक्विजीशन) अर्थात् प्रार्थित सभा, यदि समय पर गण-संख्या उपस्थित न हो तो रद्द की जा सकती है।

गण-संख्या के अभाव में जिस सभा को आगे धकेल दिया जाता है वह जब फिर बैठती है तो उस समय उसके लिए कोरम की आवश्यकता नहीं रह जाती। समय पर जो सभासद् जितनी भी संख्या में उपस्थित रहते हैं वे कानूनी तौर पर सभा का काम कर सकते हैं। आगे धकेली गई सभा का नोटिस प्रत्येक सभासद् को देने की आवश्यकता नहीं। जैसा नियम में उल्लेख हो उसके अनुसार उस दिन यदि सभा हो अथवा नियम में कुछ भी उल्लेख न हो, तो इतना यदि सूचित कर दिया जाय कि सभा अमुक दिन, अमुक स्थान पर, और अमुक समय पर होगी, तो उतने से ही काम चल जाता है। कोरम के उपस्थित रहते हुए जब अध्यक्ष, सभा की सम्मति से सभा को स्थगित कर देता है तो वह सभा स्थगित हुई मानी जायगी। कोरम के अभाव में तो अध्यक्ष अपना पद ही ग्रहण नहीं कर सकता। वह स्थानापन्न हुआ तो समझना चाहिए कि सभा सज गई। विधिपूर्वक काम करने का अधिकार उसे प्राप्त हो गया। अनेक बार केवल कोरम। जितनी ही सभासदों की संख्या के उपस्थित होने पर भी सभा को स्थगित करना वांछनीय होता है। तथापि अध्यक्ष यदि यह समझ कर, कि सभासद् केवल कोरम की संख्या-जितने ही उपस्थित हैं, बहुत थोड़े हैं, और होने वाली सभा प्रातिनिधिक नहीं हो सकेगी तथा अपने अधिकार का उपयोग करके सभा को स्थगित करना चाहे, तो उसके लिए यह सम्भव नहीं। सभा को स्थगित करने का अधिकार सभा को ही है। सभा जिस समय स्थगित की जाती है उसी समय, यह स्थगित सभा फिर कब बैठेगी, इसका निर्णय हो जाता है। अतः स्थगित हुई सभा के लिए फिर से नोटिस देने की आवश्यकता नहीं रह जाती। यदि अनिश्चित काल के लिए सभा स्थगित की गई हो तो उसके पुनः बैठने के सम्बन्ध में उचित रीति से नोटिस देना चाहिए। स्थगित सभा वही सभा समझी जाती है। उसका काम करना होता है अतः मूल सभा के कार्यक्रम-पत्र में जो विषय उल्लिखित नहीं रहता अथवा नोटिस में जिसका निर्देश किया हुआ नहीं है, ऐसे किसी भी नवीन विषय पर स्थगित सभा में विचार नहीं हो सकता।

कोरम देखकर अध्यक्ष को अपना स्थान ग्रहण करना चाहिए। स्थान

ग्रहण करने के पश्चात् फिर एक बार उपस्थिति के बारे में संदेह का निवारण कर लेना ठीक है। अध्यक्ष के आसन ग्रहण करने के साथ ही, सभा का कार्य आरंभ न हो इस विचार से, अनेक सभासद् सभा-स्थान का परित्याग करके बाहर चले जाते हैं तथा इस प्रकार कोरम पूरा नहीं होने देते। अतः आसन ग्रहण के अनंतर कोरम है या नहीं यह देखकर सभा का काम आरंभ करना ठीक रहता है। एक बार सभा आरंभ हो गई कि फिर कोरम पूरा है या नहीं, यह देखना अध्यक्ष का काम नहीं रह जाता। सभा के चालू हो जाने के पश्चात् सभा की समाप्ति तक सभा का काम विधिपूर्वक हो, इसके लिए कोरम का बना रहना आवश्यक है। तथापि उस समय वह है या नहीं, यह देखने का काम सभासदों का आवश्यक है। जब तक कोई व्यक्ति गण-संख्या की अनुपस्थिति के बारे में आपत्ति नहीं उठाता तब तक अध्यक्ष को इस बात की कोई आवश्यकता नहीं कि वह अपने-आप यह आपत्ति उठाए और सभा को स्थगित करे। सभा के काम को पूरा करना है, इस विचार से उसे सभा चालू ही रखनी चाहिए। कोरम के सम्बन्ध में आपत्ति उठाए जाते ही गिनती की जानी चाहिए। यदि यह मालूम पड़े कि कोरम पूरा नहीं तो सभा स्थगित कर देना उचित है। गिनती करने से पूर्व घंटी बजाकर अथवा अन्य किसी रीति से आसपास वाले सदस्यों को सभा में आने के लिए सूचना देना आवश्यक है। कारण, उनके उपस्थित हो जाने से सभा का काम चलता रहता है। तथापि उतने समय तक जो काम हो चुका होता है उसमें किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित नहीं होता। स्थगित सभा कब बैठे इसका कोई नियम बना हुआ न हो तो उसके बैठने की तारीख आदि के बारे में कार्यकारिणी-समिति को विचार करना चाहिए तथा उसे सभा का नोटिस भी देना चाहिए। कोरम पूरा रखकर सभा सज्जित रखना (मेक दि हाउस) तथा कोरम को उपस्थित रखकर उसे चालू रखना (कीप दि हाउस) कार्य-कारिणी-समिति का कर्तव्य है। विधान-सभाओं में यह काम सचेतक (ह्विप) का होता है।

कहीं-कहीं सभा के प्रारम्भ करने, वैधानिक दृष्टि से कोई प्रस्ताव पास करने और मत-विभाजन के लिए सदस्यों की संख्या में अन्तर होता है। इंग्लैंड के 'हाउस आफ लार्ड्स' में तीन सभासदों का कोरम है। तीन सभासद् उपस्थित रहें तो सभा का काम शुरू हो जाता है। पर मत-ग्रहण द्वारा निर्णय का अवसर आने पर तीस सभासद् उपस्थित हों तभी वह प्रश्न निर्णीत हुआ माना जाता है। अन्यथा सभा स्थगित कर दी जाती है। उसी प्रकार खास-खास विषयों के सम्बन्ध में यदि सामान्य प्रस्ताव स्वीकृत

किये जाने वाले हों तो उसके लिए बहुमत का होना जरूरी है—ऐसा नियम संस्थाओं में होता है। इस प्रकार के विषयों पर विचार करने के लिए सभा में उपस्थित सदस्यों की संख्या कितनी भी हो कार्रवाई तो शुरू हो जायगी, बहस भी हो सकेगी परन्तु जब तक मत-ग्रहण के नियमानुसार सभासदों की एक विशेष संख्या उपस्थित नहीं होगी, तब तक वह सभा कानूनी तौर पर कोई भी निर्णय नहीं कर सकती। उदाहरणार्थ, समस्त सभासदों में से—उपस्थित सभासदों में से नहीं—दो तिहाई सभासदों द्वारा जब तक मंजूरी न मिले तब तक अनेक मामलों में नगरपालिका व्यय नहीं कर सकती। मंजूरी के प्रस्ताव के समय केवल गण-संख्या द्वारा कानूनी तौर पर निर्णय नहीं किया जा सकता।

कार्यक्रम—(अजेंडा) गण-संख्या वाली सभा में अध्यक्ष को स्थानापन्न होकर प्रास्ताविक भाषण करना चाहिए। फिर प्राथमिक आदेशों का फैसला हो जाने के बाद विषय-सूची के अनुसार कार्रवाई करनी चाहिए। विषय-सूची तैयार करने का काम कार्य-कारिणी-समिति का हुआ करता है। उसमें लगभग निम्न विषय होते हैं :—(१) अध्यक्ष की नियुक्ति, (२) गत अधिवेशन की कार्रवाई का परिचय, (३) पत्र-व्यवहार, (४) समितियों अथवा कार्यकर्ताओं की रिपोर्ट, (५) धन का उपयोग, (६) जिन पर विचार होता है उनके सम्बन्ध में प्रस्ताव, (७) विशेष विषय, (८) प्रकीर्ण, (९) अध्यक्ष की अनुमति से कतिपय अन्य विचारणीय बातें।

कार्यक्रम तैयार करते समय उन विषयों को प्रथम स्थान दिया जाना चाहिए जो केवल औपचारिक हैं और केवल मंजूरी-भर के लिए जिन्हें सभा के सामने रखना है। जिनके बारे में कोई विरोध की सम्भावना नहीं, और जिन्ह केवल सभा की जानकारी के लिए सभा के सामने लाना है। उसके बाद उन विषयों को स्थान देना चाहिए जो महत्त्व के विषय हैं और जिन पर अच्छी तरह वाद-विवाद होना है। कार्य-समिति द्वारा रखे गए विषयों के अनन्तर वे विषय रखे जायँ जिन्हें सभासदों ने व्यक्तिगत रूप से विचारार्थ भेजा है। कार्यक्रम में विषय का उल्लेख इस रीति से हो कि पढ़ने वाले को विषय की सामान्य रूप-रेखा का ज्ञान हो जाय। उल्लेख स्पष्ट, असंदिग्ध एवं सारांश रूप में रहे। कार्यक्रम यदि अध्यक्ष की सलाह से तैयार किया जाय तो सभा का काम अधिक सुविधाजनक हो जायगा। अनेक बार सभासद् जानकारी हासिल करने के इरादे से सवाल पूछते हैं। कार्यक्रम यदि ठीक तरह से तैयार किया गया हो तो बहुत से प्रश्न उपस्थित नहीं होते।

सभासदों को बहस में ठीक तरह से भाग लेने के लिए उन विषयों की

जानकारी हासिल करने का पूरा अधिकार है जो कि केवल कार्य-समिति ही बता सकती है। यदि सभासद् उस प्रकार की जानकारी माँगें तो उसे वह देनी चाहिए।

प्रश्न प्रश्न का उद्देश्य जानकारी हासिल करना ही होना चाहिए। उसका स्वरूप मतप्रदर्शनात्मक, मत का अनुमान लगाने के लिए अथवा आलोचनात्मक न हो। प्रश्न जानकारी देने के लिए नहीं प्रत्युत जानकारी हासिल करने के लिए किया जाता है। उसमें कोई बात ऐसी नहीं होनी चाहिए जिससे किसी प्रकार की बदनामी की सम्भावना हो। वस्तुस्थिति का ज्ञान प्राप्त करना ही प्रश्नों का एक-मात्र उद्देश्य है। नियम बना हुआ हो तो प्रश्नों की सूचना पहले ही मिल जानी चाहिए। नहीं तो सभा में उन्हें केवल पूछा ही जा सकता है। अध्यक्ष का कर्तव्य है कि वह कार्य-समिति को आदेश दे कि वह योग्य प्रश्नों का उत्तर दे। प्रश्नों के उत्तरों द्वारा पूर्ण जानकारी मिल सके, उसके लिए प्रसंगानुकूल उपप्रश्न पूछने के लिए किसी प्रकार की रुकावट न हो। ये सब यथार्थ चर्चा के आवश्यक अंग हैं। सभासदों को यदि जानकारी हासिल हो गई तो सभा के अन्दर वातावरण अच्छा रहता है और चर्चा को योग्य दिशा मिल जाती है।

कार्रवाई का परिचय—सभा की पिछली कार्रवाई पढ़कर सुनाई जाय। उसमें ये बातें होनी चाहिएँ :—गत सभा में हुई बहस का सारांश तथा स्वीकृत निर्णय, उपस्थित सभासदों के नाम तथा उनकी संख्या, मतग्रहण और अन्य महत्त्वपूर्ण वस्तुओं का उल्लेख। सभा के समाप्त होते ही यह वृत्तांत तैयार करके रख लेना चाहिए तथा उस पर अध्यक्ष के हस्ताक्षर करवा लेने चाहिएँ। सारांश पक्षपात-रहित और निर्णय संक्षेप में लिया जाय। वह कार्रवाई इतनी व्यवस्थित हो कि जो सभासद् सभा में उपस्थित नहीं थे, वे उसे पढ़कर पूरी जानकारी प्राप्त कर सकें। उसमें सिर्फ त्रुटि का संशोधन किया जा सकता है। कोई त्रुटि हो गई हो उसके बारे में बोलने के लिए सभा में अवसर दिया जाय। प्रश्न पूछने पर उसकी जानकारी भी दी जानी चाहिए। गत कार्रवाई की स्वीकृति पर बहुत ज्यादा बहस न हो।

प्रकीर्ण तथा अध्यक्ष की आज्ञा से—सभा में ऐसा नहीं होता कि ऐसे मौके पर नोटिस के बिना भी जो जी में आय वही प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकता है। प्रकीर्ण का अर्थ है वे विषय जो बहुत महत्त्व के नहीं हैं, जिनमें किसी प्रकार का विरोध नहीं है अथवा जो आनुषंगिक हैं। ऐसे मौके का होने के नाते किसी भी विषय को अध्यक्ष प्रश्रय दे, यह उचित

नहीं। सभा की कार्रवाई लगभग खत्म होने को हो, सभासद् भी काफी उकता चुके हों, ऐसे समय चालाक सदस्य महत्त्व के विषय को उपस्थित करके उसे झटपट स्वीकृत करवा लेते हैं। अध्यक्ष को ऐन मौके पर किन्हीं विषयों को तभी उपस्थित करने की अनुमति देनी चाहिए, जब वह देखे कि उसके उपस्थित न करने से संस्था का काम रुक रहा है। संस्था की अपरिमित हानि हो रही है अथवा अन्य किसी रीति से अन्याय हो रहा हो। तथापि इस काम के लिए भी सभा की सम्मति लेना ठीक है। अन्यथा सम्भव है कि सभा को स्थगित करने का प्रस्ताव आ जाय और अध्यक्ष को निष्कारण ही नीचा देखना पड़े। इसी प्रकार जब उपस्थित सदस्यों में से बहुतेरे सभासद् कार्यक्रम में अन्य लिखित विषयों को आवश्यक मानकर उस पर विचार करने के लिए लिखित आवेदन करें, उस समय भी उपरोक्त दृष्टि से ही अध्यक्ष को काम लेना चाहिए। अध्यक्ष की अनुमति के बिना कार्यक्रम में अलिखित विषय पर विचार नहीं किया जा सकता।

वाद-विवाद पर नियंत्रण—कार्यक्रम में दिये हुए क्रम के अनुसार ही विषयों पर चर्चा होनी चाहिए। उसमें परिवर्तन करना हो तो सबकी सम्मति लेने की आवश्यकता रहती है। उपस्थित सदस्यों में से कोई भी यह सुझाव उपस्थित कर सकता है कि अमुक विषय पर बहस पहले हो, और यदि उसे बहुमत प्राप्त हो जाय तो अध्यक्ष उसी विषय को पहले चर्चा के लिए ले। अनेक संस्थाओं में ऐसा नियम है कि अनेक विषयों में से किस विषय को पहले स्थान दिया जाय, इसके लिए संस्थाओं को विषयों की सूची प्रकाशित करनी पड़ती है। वह सूची उन्हें बहुसंख्यक सभासदों के पास भेजनी पड़ती है। तात्पर्य यह है कि विषय को आधुनिकता देने के लिए बहुमत की आवश्यकता रहती है। अन्यथा, विषय उसी क्रम से उपस्थित किये जाने चाहिएँ जिस क्रम से वे कार्यक्रम में हैं। यह हमें मानकर ही चलना चाहिए कि कार्यक्रम तैयार करते समय विषयों के महत्त्व का विचार अवश्य किया गया होगा।

प्रस्ताव—सभा के सामने वर्णनीय विषय प्रस्ताव के रूप में आने चाहिएँ। सभा का मत अथवा निर्णय तब तक पूर्ण नहीं हो पाता जब तक कि प्रस्ताव के ऊपर मत नहीं ले लिए जाते। सभा के मत अथवा निर्णय की पूर्णता के लिए सभा के सामने एक स्पष्ट रूप में प्रस्ताव होना चाहिए। किसी निश्चित प्रस्ताव के अभाव में यदि चर्चा हो तो वह व्यर्थ ही है। प्रश्न और उत्तरों में से निर्मित हुए विषयों पर उस सभा में चर्चा नहीं की जा सकती और वैसा करना ठीक भी नहीं। कारण, चर्चा का विषय सभासदों को पहले से मालूम

होना चाहिए। चर्चा का अभिप्राय है, विविध मतों और विचारों का अधिकार। पर वह चर्चा व्यवस्थित और निर्णयात्मक स्वरूप में होने के लिए विषय का निश्चित रूप सभा के सामने लाना आवश्यक है। और यदि चर्चा का अंत समन्वयात्मक रूप में होना इच्छित हो तो सभा के सामने स्पष्ट स्वरूप का प्रस्ताव होना चाहिए। किसी ने कुछ कहा अथवा विषय को अस्पष्ट रखकर चर्चा हुई तो जब तक प्रस्ताव के रूप में सभा का मत व्यक्त नहीं होता, तब तक सभा की अमुक राय है, ऐसा कोई भी दृढ़तापूर्वक नहीं कह सकता। सभा का मत प्रस्ताव के रूप में ही व्यक्त होता है। इसलिए सभा का निर्णय अभीष्ट हो तो विषय को प्रस्ताव के रूप में ही आना चाहिए।

चाहे वह विगत कार्रवाई की स्वीकृति हो, चाहे समिति के आवेदन पर विचार हो, जब तक उसके संबंध में कोई संगत प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया जाता, तब तक उस पर चर्चा भी नहीं होती और निर्णय भी नहीं किया जाता। बहुत दफा कार्यकारिणी समिति की तरफ से खुले रूप में निवेदन उपस्थित किये जाते हैं। प्रश्नों का उत्तर देते समय बहुत दफा नीति भी जाहिर की जाती है। तथापि इस प्रसंग में इस समय भी उस पर चर्चा नहीं होने देनी चाहिए। सभा का मत यदि जानना हो तो यथारीति नोटिस देकर प्रस्ताव उपस्थित करना उचित है। तात्पर्य यह है कि सभा के सामने आने वाले विषय पर प्रस्ताव हो। किसी-न-किसी को सभा के सामने निश्चित मत उपस्थित करना चाहिए और वह ऐसा सुझाव भी पेश करे कि सभा उसे स्वीकार कर ले। ऐसी अवस्था में ही उसके ऊपर चर्चा हो सकती है तथा सभा अपना मत या निर्णय दे सकती है।

कार्यक्रम के अनुसार जिस विषय पर विचार किया जाना हो वह यदि प्रस्ताव ही हो तब तो कोई प्रश्न ही नहीं, हाँ यदि विचार के लिए उपस्थित किया गया विषय स्पष्ट हो, तो उसके लिए व्यवस्थित रूप में कोई प्रस्ताव सभा के सामने आना ही चाहिए। नया कर, कोई विचार, राजकीय परिस्थिति, अन्न-समस्या तथा समिति की रिपोर्ट के ऊपर विचार आदि सारे ही विषय अस्पष्ट कहे जायँगे। उनके निश्चित स्वरूप को स्पष्ट करने वाला प्रस्ताव सभा के सामने उपस्थित करना चाहिए। "इस सभा का मत है कि लगाए जाने वाले नवीन कर सभी दृष्टि से विचार करने पर गरीबों के लिए अन्यायकारक हैं।" ऐसा प्रस्ताव आने पर ही सभा में उस पर विचार शुरू होता है—"विद्यमान राजकीय परिस्थिति में सरकार को अमुक विषयों के संबंध में अपनी नीति में परिवर्तन करना चाहिए ऐसा इस सभा का मत है" इस रूप में प्रस्ताव आने

पर उस पर बहस होगी, संशोधन पेश किये जायँगे और अंत में उसके संबंध में सभा का मत स्पष्ट होगा। बहुत दफा सभा के सामने "इस विषय पर सभा विचार करे" ऐसा अस्पष्ट प्रस्ताव रखा जाता है और बहस की जाती है। उस अवस्था में भी यदि निश्चित रूप में कोई निर्णय अभीष्ट हो तो अनुरूप संशोधन पेश किया जाय। "ज्वायण्ट पार्लामेण्टरी कमेटी की रिपोर्ट की जाय" इस पर अनेक संशोधन पेश किये जा सकते हैं। रिपोर्ट पर विचार करने से विदित होता है कि वह सर्वथा त्याज्य एवं अस्वीकार्य है, ऐसा इस सभा का मत है", "रिपोर्ट पर विचार करने पर संरक्षणात्मक प्रतिबन्ध नहीं रहने चाहिएँ तथा संयुक्त व्यवस्था भी नहीं रहनी चाहिए, ऐसा इस सभा का मत है"—इस प्रकार के अनेक संशोधन आ सकते हैं। तात्पर्य यह कि संशोधन के अभाव में अनिश्चित समय तक बहस करने पर केवल 'विचार किया जाय' वाले प्रस्ताव से सभा का मत विदित नहीं हो सकेगा। निश्चित प्रस्ताव के रूप में जो विषय हो वह सभा के सामने निर्णय के लिए आना चाहिए। बहुत दफा सभा में दीर्घकाल तक स्ताव के अस्पष्ट स्वरूप पर तथा कभी-कभी अनौपचारिक स्वरूप पर बहस होती रहती है, और अंत में निश्चित प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है। तथापि संगठित एवं नियमबद्ध संस्थाओं की सभाओं में ऐसा किया जाना वांछनीय नहीं। कार्यकारिणी समिति को कम-से-कम बहस की सुलभता के विचार से एक प्रस्ताव अवश्य उपस्थित करना चाहिए।

प्रस्ताव का स्वरूप—जो प्रस्ताव विचारार्थ आने वाला हो उसे नियमों के अनुसार होना उचित है। उसका नोटिस आए और वह सभा के कार्य-क्षेत्र के अंतर्गत हो तथा विषय से संबंध करने वाला भी हो। वह सभा के और संस्था के मौलिक आशय के विरुद्ध अथवा उसके ध्येय से विपरीत नहीं होना चाहिए। उसमें असत्य का प्रतिपादन भी नहीं होना चाहिए। वह बदनामी करने वाला अथवा अपराध के लिए प्रेरित करने वाला भी नहीं होना चाहिए। कानून की मर्यादा में रहने वाला तथा सभ्यता का उल्लंघन करने वाला न हो। यदि वह नियम के अनुकूल न हो अथवा अन्य रीति से वह अनुचित एवं अनुशासनहीन हो, तो उसे उपस्थित करने की आज्ञा अध्यक्ष को नहीं देनी चाहिए। अध्यक्ष का कर्त्तव्य है कि वह उसमें योग्य संशोधन सुझाए और प्रस्तावक यदि उसको मंजूर कर ले तो दुरुस्त प्रस्ताव उपस्थित करने की अनुमति दे। सभा में होने वाले कार्य और आने वाले प्रस्ताव कानून के मुताबिक हैं गैरकानूनी नहीं है, यह देखने की जिम्मेदारी मुख्यतया अध्यक्ष की है। सभासद् भावना के अधीन होकर, द्वेष के कारण या उपहास के लिए, कुछ भी सुझा सकते हैं, पर उन

पर नियमानुसार नियंत्रण रखना अध्यक्ष का काम है। हिन्दुओं की संस्थाओं को कलमा पढ़ने तथा मुसलमानों की संस्थाओं को विष्णु-पूजा करने के बारे में कुछ भी कहने का अधिकार नहीं हैं। यह उनके कार्य-क्षेत्र में भी नहीं आता। बात-बात पर गुस्से में आकर कानून-भंग करने का प्रस्ताव उपस्थित करने वाले गरमदली सभासद् भी हुआ करते हैं। सभासद् के किसी रिश्तेदार का देहान्त हो जाने पर नगरपालिका का अधिवेशन स्थगित करने का प्रस्ताव भी आया करता है। इस अनुभव से फायदा उठाते हुए अध्यक्ष को चाहिए कि वह संस्था की प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए भी प्रस्तावों के सम्बन्ध में सावधानी से काम ले।

प्रस्ताव का रूप—प्रस्ताव के मंजूर होने से पहले प्रस्ताव की स्थिति एक सुझाव की-सी रहती है। यह कहना कि अमुक-अमुक बात हो जाय यह एक सूचना ही तो है। सभा ने उसे मंजूर कर लिया तो समझ लो कि उसे प्रस्ताव की संज्ञा प्राप्त हो गई। कोई प्रस्ताव सभा के सामने प्रस्तुत हुआ तो उसका यह अर्थ है कि सभा की मंजूरी के लिए एक सुझाव पेश किया गया है। सभा का मत निर्धारित हो गया कि वह प्रस्ताव है। प्रस्ताव, सिद्ध वस्तु का नाम है। कार्यक्रम में प्रस्ताव का उल्लेख है पर किसी-न-किसी को उसे गति देनी पड़ेगी। उसे 'मूव' अर्थात् उपस्थित करना पड़ेगा। कार्य-क्रम में अनेक संशोधन हो सकते हैं, अनेक विषय हो सकते हैं, पर जब तक कोई उनको गति न दे अथवा उपस्थित न करे तब तक उन पर चर्चा नहीं हो सकती। उन पर केवल इसीलिए वाद-विवाद नहीं हो सकता कि वे कार्यक्रम में लिखे हुए हैं। किसी-न-किसी को खड़ा होकर यह कहना होगा "मेरा यह सुझाव है कि इस विषय पर विचार किया जाय।" ऐसा सभा के सामने आकर कहना चाहिए। कहने का अभिप्राय यह कि वाद-विवाद के लिए आने वाले प्रत्येक विषय को पहले प्रस्ताव का रूप दे देना आवश्यक है।

प्रस्ताव का उपस्थापन—प्रस्ताव अथवा तद्विषयक संशोधन उपस्थित करने का अधिकार प्रत्येक सभासद् को है। सभा का निर्णय प्रस्ताव द्वारा व्यक्त होता है और उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए किसी अधिकारी सभासद् को वह प्रस्ताव सभा के सामने उपस्थित करना उचित है। कोई भी संशोधन सभा के सामने लाया जाय परंतु जो सभासद् नहीं है अथवा जिसे प्रस्ताव उपस्थित करने का अधिकार नहीं रह गया है, ऐसा व्यक्ति यदि कोई प्रस्ताव उपस्थित करे तो वह उचित नहीं। तथापि उसके संबंध में तत्काल आपत्ति करनी चाहिए। प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने के पश्चात् की गई आपत्ति व्यर्थ है। इसी प्रकार

पर्याप्त वाद-विवाद हो चुकने के पश्चात् की गई आपत्ति का भी कुछ महत्त्व नहीं फिर भी वाद-विवाद आरंभ हो जाने के पश्चात् आपत्ति उठने पर उसी प्रस्ताव को किसी योग्य सभासद् की ओर से उपस्थित करवाकर विचार किया जा सकता है। कुछ संस्थाओं में ऐसा नियम होता है कि जिसने उस प्रस्ताव का नोटिस दिया हो, उसी को प्रस्ताव पेश करना पड़ता है। उस अवस्था में भी पर्याप्त चर्चा हो चुकने के पश्चात् यदि आपत्ति की जाय और कोई दूसरे अधिकारी सभासद् वही प्रस्ताव उपस्थित करें, तो उसमें आपत्ति की कोई बात नहीं। इस सम्बन्ध में अध्यक्ष यदि वैसा निर्णय देकर काम चालू रखे तो वह अनुचित नहीं होगा। कभी-कभी नोटिस देते समय तो सभासदत्व और अधिकार रहता है, पर सभा के समय नहीं रहता। उस दशा में भी यदि विलंब से आपत्ति की जाय तो अध्यक्ष को उपरोक्त रूप में ही निर्णय देना चाहिए। इतनी बात जरूर है कि आपत्ति यदि प्रस्ताव के पेश करने से पूर्व अथवा पेश करते ही उठाई जाय, तो अध्यक्ष नियमानुसार यह निर्णय दे कि वह सभासद् प्रस्ताव पेश करने का अधिकारी नहीं है। यदि नोटिस की शर्त हो तथा अन्य किसी ने उक्त प्रस्ताव के लिए नोटिस न दिया हो तो वह प्रस्ताव रह जाता है। सामान्यतः विशिष्ट एवं मौलिक प्रश्नों के अतिरिक्त अन्य विषयों के प्रस्ताव के लिए किसी सभासद् ने नोटिस दिया तथा वह उपस्थित न हो सका, या उसने किसी अन्य सदस्य को प्रस्ताव पेश करने का अधिकार लिखित रूप में दे दिया हो तो उस अवस्था में, अध्यक्ष उस सदस्य को प्रस्ताव पेश करने की अनुमति प्रदान करे।

अनेक स्थानों पर वक्ता पहले अपना भाषण करता है और पीछे से प्रस्ताव उपस्थित करता है। उसे अध्यक्ष इसी शर्त पर बोलने की अनुमति दे कि वह आगे चलकर प्रस्ताव पेश करने वाला है। यदि वह भाषण करके कोई प्रस्ताव पेश न करे तो अध्यक्ष को मूर्ख बनना पड़ जाता है। अच्छा उपाय तो यह है कि अध्यक्ष वक्ता से पहले प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए कहे, तथा पीछे भाषण करने के लिए। अनेक बार यह भी होता है कि वक्ता भाषण तो दे जाता है पर प्रस्ताव पेश करना भूल जाता है। कार्यक्रम में यदि प्रस्ताव का उल्लेख हो और नोटिस भी दे रखा हो, तो उसके अनुसार प्रस्ताव उपस्थित करना चाहिए। उसमें यदि शाब्दिक स्वरूप का अथवा अन्य कोई छोटा-मोटा संशोधन करना हो तब उसके लिए अध्यक्ष की अनुमति लेना आवश्यक है। प्रस्ताव में प्रस्तावक को कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करना हो और उसके लिए नोटिस की शर्त हो तो वह संभव नहीं है।

अनुमोदन—प्रस्ताव की सूचना के लिए अनुमोदन आवश्यक है और वह अनुमोदन अधिकारी सभासद् की ओर से होना चाहिए। विधान-सभा में प्रस्ताव के लिए अनुमोदन की आवश्यकता नहीं है। तथापि सब स्थानिक स्वायत्त संस्थाओं में तथा अन्यत्र कानून द्वारा अस्तित्व में आने वाली संस्थाओं में अनुमोदन की आवश्यकता रहती है। इंग्लैंड की लार्ड-सभा में प्रस्ताव या संशोधन आदि के लिए अनुमोदन की आवश्यकता नहीं। इसके विपरीत कामन्स-सभा में दोनों को ही अनुमोदन की आवश्यकता होती है। यदि अनुमोदन के लिए कोई नियम न हो तो उसके लिए प्रचलन का रहना अभीष्ट है। जहाँ अनुमोदन आवश्यक है वहाँ वह अधिकारी सभासद् की ओर से आना चाहिए। अधिकारी सभासद् की ओर से अनुमोदन प्राप्त हुआ हो तो ज्यों ही अध्यक्ष को उसका अनौचित्य ज्ञात हो जाय अथवा किसी की ओर से आपत्ति उठाई गई हो तो अध्यक्ष तत्काल उसे ठीक करवा ले। यदि किसी प्रस्ताव का अनुमोदन किसी अधिकारी व्यक्ति ने किया हो, और उस पर बहस होते समय किसी ने इस बारे में कोई आपत्ति न उठाई हो तो उस अवस्था में वह प्रस्ताव गैरकानूनी साबित नहीं हो सकता। अध्यक्ष द्वारा उपस्थापित संशोधन आदि पर अनुमोदन की आवश्यकता नहीं रहती।

सभा के सामने प्रस्तुत प्रश्न—नियमानुसार प्रस्ताव उपस्थित किया जा चुका, अनुमोदन भी हो गया तो अब प्रस्ताव के ऊपर बहस करने की अनुमति अध्यक्ष द्वारा प्रदान की जानी चाहिए। विधान-सभा में प्रस्ताव उपस्थित होने के बाद अध्यक्ष प्रस्ताव पढ़कर सुनाता है और उसके बाद उस पर बहस की जाती है। अध्यक्ष द्वारा "प्रस्ताव पर बहस की अनुमति मिल गई और सभा में प्रस्ताव पर बहस हो" इस प्रकार की घोषणा के बिना सभा प्रस्ताव पर बहस नहीं कर सकती। अध्यक्ष द्वारा वह प्रस्ताव सभा के सामने चर्चा के लिए रखा जा चुका तो अब वह "सभा के सामने प्रस्तुत प्रश्न" (क्वैश्चन बिफोर दी हाउस) बन जाता है। तब उस पर बोलने का प्रत्येक सभासद् को अधिकार है। सभा के सामने 'प्रस्तुत प्रश्न' का अर्थ है नियमानुसार गति प्राप्त करके सभा के अध्यक्ष द्वारा बहस के लिए भेजा हुआ 'प्रस्ताव'। जिस विषय पर नियमानुसार बहस चालू है, फिर चाहे प्रस्ताव हो अथवा तद्विषयक कोई संशोधनों वह सभा के सामने प्रस्तुत प्रश्न कहलायगा।

भाग लेने का अधिकार—जो व्यक्ति संस्था का नियमानुसार सदस्य है, उसे सभा में बोलने तथा वाद-विवाद में भाग लेने का अधिकार है। उसे प्रस्ताव उपस्थित करने, संशोधन उपस्थित करने, सभा को स्थगित करने,

सुझाव पेश करने, बहस को बंद करने की माँग करने, प्रश्न पूछने, सूचनाएँ करने तथा मत-विभाजन की माँग आदि करने का अधिकार है। प्रत्येक संस्था के संविधान में सदस्यता की योग्यता का उल्लेख होता है। किसी संस्था की सदस्यता किस प्रकार प्राप्त होती है तथा सदस्यता से किस प्रकार च्युत हो जाना पड़ता है, इस संबंध में भी नियम बने रहते हैं। जैसे चन्दा बहुत दिनों से रुका हुआ हो, पुस्तकें तथा अन्य सामान गुम कर दिया हो, छुट्टी के बिना एक खास समय तक अनुपस्थित रहा हो, फौजदारी अपराध के कारण सजा हुई हो, संस्था के किसी प्रस्ताव द्वारा अथवा सरकार के किसी आदेश द्वारा सभा की सदस्यता रद्द समझी गई हो—और इस प्रकार के अथवा इसी आशय के अनेकों नियम होते हैं। बहस में भाग लेने सम्बन्धी सभासद् के अधिकारों के बारे में आपत्ति ठीक समय पर उठानी चाहिए। कहीं-कहीं सभा में भाषण देने का अधिकार रहता है पर मत देने का नहीं। इस परिस्थिति में आपत्ति उस समय उठाना चाहिए जब मत लिये जा रहे हों। अनधिकारी सभासद् के मत देने पर आपत्ति उठते ही वह मत कम कर देना उचित है। यदि यह मामला कोर्ट में चला जाय तो कोर्ट भी यही करता है। मत के संबंध में निर्णय हो चुकने के बाद आपत्ति यदि पहली बार ही कोर्ट में दाखिल हुई हो तो, कोर्ट उसे मान्य कर लेता है और अनधिकृत मतों के साबित हो जाने पर उन्हें कम कर देता है। अनधिकार-पूर्वक किसी ने सभा में भाग लिया हो अथवा अधिकारी अध्यक्ष के तत्त्वावधान में कुछ काम हुआ हो तो केवल इसीलिए वह काम गैरकानूनी साबित नहीं होता। राजनीतिक मामलों में सजा भोग आने के बाद लेखक[1] की अध्यक्षता में पूना-नगरपालिका की सभा का काम आगे चलकर आपत्ति उठाए जाने तथा सदस्यता रद्द हो जाने पर भी, विधियुक्त ही माना गया।

बोलने का अधिकार—अध्यक्ष जिसका नाम ले उसे बोलना चाहिए। जिन लोगों ने प्रस्ताव का नोटिस अथवा कोई संशोधन भेज रखा हो, अध्यक्ष को चाहिए कि उचित समय पर उन्हें प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए अथवा संशोधन पेश करने के लिए बुलाए। जब सामान्य चर्चा आरम्भ होती है तब एक ही समय अनेक सभासद् बोलने के लिए खड़े हो जाते हैं। उस समय उनका क्रम निर्धारित करने का अधिकार सभापति को रहता है और वह जिसका नाम ले उसको ही बोलना चाहिए। उचित रूप से चर्चा हो तथा सब पक्षों को

---

१ सभा-शास्त्र के लेखक

न्याय मिले, इस विचार से जो क्रम अभीष्ट हो उसी के अनुसार नाम निर्धारित करने चाहिएँ। कौन बोले, यदि यह निर्धारित करने का अधिकार अध्यक्ष को न हो और यह भी बहुमत से ही निश्चित हो, तो उससे अनर्थ हो जायगा। बहुमत वाला पक्ष अल्पमत वाले पक्ष को अवसर देगा इसका क्या भरोसा? सत्यवादी वक्ता की अपेक्षा लोकप्रिय वक्ता को ही सभा-मंच उपलब्ध हो जाने के कारण अनेक लोगों को समय नहीं मिलता। विधान-सभा में यदि एक ही समय दो वक्ता खड़े हो जायँ तो उस सभासद् को पहले मौका देने की प्रथा है जो नया हो अथवा जिसने अब तक अपना मुँह न खोला हो। पहले 'हाउस ऑफ कामन्स' में यह प्रथा थी कि यदि एक ही समय अनेक वक्ता बोलने के लिए खड़े हो जाते और सभापति द्वारा बताया हुआ क्रम उन्हें मान्य न होता, या प्रत्येक सभासद् पहले बोलने के अपने अधिकार पर आग्रह करने लगता, तो उस अवस्था में प्रस्ताव द्वारा इसका निर्णय हुआ करता था। पर अब यह प्रथा सर्वमान्य हो गई है कि अध्यक्ष जिसका नाम ले वही बोले तथा अन्य लोग बैठ जायँ। अध्यक्ष का निर्णय सभी मानते हैं। अध्यक्ष एक बार एक पक्ष के वक्ता को तथा अगली बार दूसरे पक्ष के वक्ता को बुलाने के साधारण क्रम को निश्चित करके वक्ताओं को बुलाता है। इंग्लैण्ड की लार्ड-सभा में जब कभी ऐसी समस्या उठ खड़ी होती है तो प्रस्ताव द्वारा निर्णय कर लिया जाता है। व्यवस्था, अनुशासन तथा न्याय इन तीनों दृष्टियों से, कौन बोले यह निश्चय करने का अधिकार अध्यक्ष को है। विधान-सभा में स्पष्ट रूप से यह अधिकार अध्यक्ष को दिया हुआ होता है। बोलने के लिए खड़े होने का अधिकार प्रत्येक सभासद् को है, परन्तु जो सभासद् अध्यक्ष के दृष्टि-क्षेत्र में आयगा और जिसका नाम सभापति लेगा, उसी को बोलना उचित है तथा औरों को बैठ जाना चाहिए।

एक ही बोले—सभा विचार-विनिमय अथवा किसी निर्णय के लिए होती है। अतः शान्ति उसकी पार्श्व-भूमि है। वह रहेगा तो सभा का काम हो सकेगा। इसलिए सभा में एक समय में एक ही व्यक्ति बोले तथा अन्यों को उसे शांतिपूर्वक सुनना चाहिए। सभा में बैठकर दूसरे लोग कितनी भी हल्की आवाज में बातचीत करें पर उससे सभा में व्यवधान उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता। सभा, गप्पें लड़ाने वालों का अखाड़ा नहीं है। जो उस समय बोल रहा हो सभा पूर्ण रूप से उसी की होनी चाहिए। जब तक वह बोल रहा है परस्पर काना-फूसी ठीक नहीं।

बोलने का ढंग—जिसका नाम अध्यक्ष ने लिया हो उसे चाहिए कि वह खड़ा होकर बोले। वह यदि बीमार हो अथवा अपंग हो तो अध्यक्ष की

अनुमति से वह बैठकर बोल सकता है। खड़े होकर बोलने से सारी सभा नज़र के सामने रहती है तथा अभिनय के लिए गुञ्जाइश रहती है। वक्ता की आवाज़ अधिक दूर तक पहुँचती है। वक्ता को जनता भली-भांति देख सकती है। वक्ता और श्रोता दोनों की दृष्टियाँ एक-दूसरे से मिली रहनी चाहिएँ। जब तक उनमें एक विशेष प्रकार का तादात्म्य उत्पन्न नहीं हो जाता तब तक यथार्थ रूप में भाषण में जान नहीं पड़ती। भैरवेर और सौरंग की नज़रें जब तक एक दूसरे के साथ नहीं मिलती तब तक बीन में माधुर्य का संचार नहीं होता। नाग भी फन उठाकर तब तक नहीं नाचता। वाणी का उतार और चढ़ाव, अर्थानुरूप अभिनय आदि ये सब श्रोता सुनें तथा देखें तभी वक्ता उनके मन में प्रवेश कर सकता है। अपने भाषण का श्रोताओं पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसे जो वक्ता नहीं देखता या नहीं समझता, वह या तो स्वयं अपना भाषण शीघ्र समाप्त कर देता है या फिर सभा उसे वैसा करने के लिए बाध्य कर देती है। खड़े होकर भाषण करते समय वक्ता श्रोताओं के हृदय देखता है—ऐसा कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं। वक्ता यदि खड़े होकर भाषण दे तो उसके शब्दों का सही-सही अर्थ, उसके हाव-भाव से, श्रोताओं को अधिक अच्छी तरह समझ में आ जायगा।

सभा का सामुदायिक रूप एक श्रेष्ठ वस्तु है। इस 'देवता' को प्रसन्न करना हो तो उसके सामने खड़े होकर बोलने से उसकी प्रतिष्ठा की रक्षा हो सकती है। वक्ता का गौरव भी इसी में है। कौरवों की सभा में श्रीकृष्ण ने भी इसी नियम का पालन किया था। अंगद ने जब राज-सभा में बैठकर बोलना आरम्भ किया तो रावण ने उसे अशिष्ट कहकर संशोधित किया था। सब विधान-सभाओं में यह प्रचलन है। जहाँ राजा अथवा राज-प्रतिनिधि विधान-सभाओं में आते हैं वहाँ राजा अथवा उसका प्रतिनिधि भी खड़ा होकर ही भाषण देता है। सभा में खड़े होकर बोलने का नियम अध्यक्ष सहित सब लोगों के ऊपर लागू है। अध्यक्ष को किसी प्रकार का निर्णय देते समय, भाषण करते समय, प्रस्ताव पढ़ते समय, मतों पर निर्णय प्रकट करते समय खड़ा होना चाहिए। जहाँ यह आचरण में नहीं लाया जाता वहाँ समझना चाहिए कि अयोग्य परम्परा चल रही है।

लिखित भाषण—वक्ता को भाषण करना चाहिए अर्थात् वह लिखित भाषण पढ़कर सुनाए। लिखित भाषण भाषण नहीं, प्रत्युत वह तो बाँचना है। चर्चा तथा विचार-विनिमय सभा का प्राण हैं। इस दृष्टि से भी भाषण का बाँचना अनुचित ही नहीं प्रत्युत निरर्थक भी है। लिखित भाषण जैसा कि

हम पिछले एक प्रकरण में कह भी आए हैं, किन्हीं कल्पनाओं पर आश्रित रहता है। उसमें सभा में जो कुछ हुआ या हो रहा है उसका समावेश नहीं हो सकता। अपनी पुरानी धारणाओं से चिपटे न रहकर जो बात यथार्थ में युक्ति-संगत प्रतीत हो और जो मन को जँच जाय, अपने मत और पक्ष का आग्रह छोड़कर उसे स्वीकार करने के लिए तैयार रहना, यह वाद-विवाद में भाग लेने वाले प्रत्येक सभासद् की तात्त्विक भूमिका होनी चाहिए। लिखित भी भाषण पढ़ना इस तात्त्विक भूमिका के तथा वाद-विवाद के मौलिक सिद्धांतों के विरुद्ध है। वक्ता और श्रोता के बीच में जो तादात्म्य और जो मनः संवेदना रहनी चाहिए, वह इस प्रकार भाषण पढ़कर सुनाने में नहीं रह सकती। इस संबंध में अधिक विवेचन हम पिछले प्रकरण में कर ही आए हैं। कामन्स-सभा में लिखित भाषण पढ़ने की मनाही है। उसका कारण यही माना जाता है कि वह प्रथा वाद-विवाद की तात्त्विक भूमिका से असंगत है।

यहाँ की केन्द्रीय विधान-सभा में लिखित भाषण करने की अनुमति है। बहुत-सी प्रांतीय विधान-सभाओं में ऐसा अनुमान नहीं है। स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं में इस बारे में शायद ही कहीं कोई नियम बना हुआ हो। तथापि लिखित भाषण करना भले ही नियम-विरुद्ध न हो पर वह असुविधाजनक और निरर्थक तो है। प्रभाव की दृष्टि से भी वह हल्के दर्जे का साबित होता है। प्रत्येक वक्ता यदि खड़ा होकर निबंध-पाठ करने लग जाय तो मुसीबत हो जायगी और वाद-विवाद होना भी मुश्किल हो जायगा। वक्ता यदि बाँचने लगे तो स्वभावतः सभा में अशांति मचने लग जाती है। अतः अध्यक्ष इस बात की ओर विशेष ध्यान दे कि वक्ता भाषण बाँचना न शुरू कर दे। इसके लिए जिस प्रकार भी नियंत्रण स्थापित किया जा सके उस प्रकार वह स्थापित करे। ऐसा करना अनेक दृष्टियों से वांछनीय है। जब कभी कोई महत्त्व की नीति उद्घोषित करनी हो, कोई महत्त्व का स्पष्टीकरण करना हो, अपना कोई प्रसगानुकूल उद्धरण पढ़कर सुनाना हो, तो यह बताने की आवश्यकता नहीं कि वक्ता को वैसा करने की छूट रहनी चाहिए। वक्ता को बोलते समय कुछ लिखित टिप्पणियाँ अपने पास रखनी हों तो उसमें कोई आपत्ति की बात नहीं है, उनका वह योग्य उपयोग भी कर सकता है। अनेक वक्ता अपने भाषणों को उद्धरणों का संग्रह ही बना डालते हैं। यह भी उचित नहीं। अनुपस्थित सभासद् का लम्बा-चौड़ा भाषणात्मक पत्र बाँचना भी अनुचित है। भाषण खुद ही करना चाहिए। और वह तैयार भी खुद ही करे। दूसरे का भाषण अथवा दूसरे द्वारा तैयार किया गया भाषण पढ़ना

यह अर्थ रखता है कि बोलने वाला स्वयं वाद-विवाद में भाग नहीं ले रहा। अथवा वह भाड़े के टट्टू की तरह काम कर रहा है। वाद-विवाद में कुछ अपने विचार वक्ता को उपस्थित करने चाहिएँ। जहाँ आस्था है, लगन है, वहाँ अनुरूप शब्द वक्ता को सूझते हैं। लिखित भाषण से वाद-विवाद की विडंबना होती है और उसमें नकलीपन आ जाता है।

भाषा—जहाँ सब लोग एक ही भाषा बोलते हैं वहाँ भाषा का सवाल ही नहीं उठता। पर, जहाँ अनेक भाषा बोलने वाले हैं और वे सभा के सभासद् भी हैं, वहाँ वक्ता को किस भाषा में बोलना चाहिए—यह एक सवाल पैदा हो जाता है। संस्था की कोई एक भाषा निश्चित हो, वक्ता को उस भाषा का सम्यक् परिज्ञान हो तथा उस भाषा में वह अपने विषय का प्रतिपादन इस प्रकार कर सकता हो कि श्रोताओं को वह अच्छी तरह समझ में आ जाय, तो उसको उस अधिकृत भाषा में ही बोलना चाहिए। यदि वह भाषा न आती हो अथवा बहुत अच्छी न आती हो, तो वह अपनी मातृ-भाषा में अथवा उस भाषा में, जिसमें बोलने से अधिकांश सदस्य उसका कहना समझ सकें, बोल सकता है। संस्था की कोई भाषा निश्चित न हो तो वक्ता को भाषा-स्वातंत्र्य रहना चाहिए तथा श्रोता उसमें किसी प्रकार की रुकावट पैदा न करें। वक्ता की सदा यही इच्छा रहती है कि वह अपने मनोगत विचार श्रोताओं पर व्यक्त करे और इसी दृष्टि से वह भाषा का चुनाव किया करता है। श्रोता यदि यह आग्रह करें कि वक्ता एक विशिष्ट भाषा में ही भाषण दे तो उससे उस भाषा के विषय में भले ही उनका प्रेमभाव व्यक्त होता हो, पर विचार-विमर्श अथवा बहस के लिए उससे कुछ भी मदद नहीं मिलती। उलटे उससे सभा की शान्ति भंग होने का खतरा बढ़ जाता है। सार्वजनिक सभा के अन्दर भी वक्ता को इस प्रकार की आजादी रहनी चाहिए। ऐसा उदाहरण देखने को मिला है कि जहाँ मुख्य वक्ता का भाषण मराठी में हो चुकने के पश्चात्, अध्यक्ष ने केवल धन्यवाद के शब्द भर मराठी में कहे और सभा का पर्यवसान दंगे के रूप में हुआ। वक्ता और श्रोता दोनों को भाषा-विषयक जिद प्रदर्शित नहीं करनी चाहिए।

स्थान—सार्वजनिक सभा में वक्ता को सभा-मंच पर खड़े होकर अथवा विशेष रूप से निर्माण किये गए आसन पर आकर भाषण करना चाहिए, यह हम पहले ही कह आए हैं। संस्थाओं की सभा में यह एक सामान्य प्रचलन है कि सभासद् जहाँ बैठा हो वहीं खड़ा होकर भाषण करे। यहाँ की स्थानीय स्वायत्त प्राप्त संस्थाओं में तथा विधान-सभाओं में यही प्रथा है। कामन्स-सभा

में भी यही प्रथा है। किन्हीं देशों की विधान-सभाओं में वक्ता को अपना स्थान छोड़कर वक्ता के लिए निर्धारित की हुई विशेष जगह पर जाकर बोलना होता है। यह भाषण-मंच अध्यक्ष के आगे और सभा के सामने तथा कुछ ऊँचाई पर रहता है। संस्था की सभाएँ कहीं हों, यह प्रायः निश्चित-सा रहता है। जहाँ सभासदों की संख्या बहुत अधिक नहीं रहती और सभासदों की बैठने की व्यवस्था भी बँधी हुई रहती है, वहाँ सभासद् को अपने बैठने की जगह पर खड़े होकर ही बोलना चाहिए। उदाहरणार्थ स्थानिक स्वायत्त संस्था, विधान-सभा प्रभृति संस्थाओं में सभासदों की संख्या सीमित रहती है और सामान्यतया सभासद् भी अलग-अलग समूहों में बैठते हैं। अधिकारारूढ़ पक्ष अध्यक्ष की दाहिनी ओर तथा विरोधी पक्ष बाईं ओर बैठता है। ऐसी व्यवस्था में बैठने की जगह पर खड़े होकर, विरोधी पक्ष को अपने सामने रखकर, बोलना वाद-विवाद की दृष्टि से अधिक अनुकूल रहता है। अपना पक्ष अपने पीछे अथवा अगल-बगल में है यह विश्वास वक्ता को प्रोत्साहन प्रदान किया करता है। विरोधी पक्ष आँखों में अंजन डालकर अपनी त्रुटियों को पकड़ने के लिए कृत-संकल्प बैठा है, यह जानकारी भाषण में उत्तरदायित्व निर्माण करती है। उसके साथ-ही-साथ स्वमत-स्थापन के निमित्त वक्ता को एक प्रकार का आह्वान-सा मिला रहता है। बोलने वाले तथा अन्य सभासद् एक ही स्तर पर आते हैं और पृथक्त्व का अथवा छोटे-बड़े का भाव उनमें उत्पन्न नहीं होता।

इस व्यवस्था से वाद-विवाद में विचारों को प्राधान्य प्राप्त होने में सहायता मिलती है। वक्ता अध्यक्ष के सामने वाले भाषण-मंच पर जब खड़ा होकर बोलने लगता है तब वह अनजाने ही सभा के वातावरण से थोड़ा-सा अलग हो जाता है। उच्च स्थान से बोलने के कारण उसका प्रभाव उसके मन पर भी पड़ता है। सारी सभा उसके सामने रहती है। उसके सहकारी, उसके अपने पक्ष के सभासद् उससे दूर रहते हैं। इस व्यवस्था में वक्ता के भाषण में भावनाओं को अधिक प्रोत्साहन मिलता है, ऐसा अनुभव है। यदि इस सभा में प्रेक्षक भी उपस्थित हों तो वक्ता का ध्यान, सभासदों की ओर आकृष्ट होकर, उनकी प्रयोजन-पूर्ति करने की ओर नहीं जाता, प्रत्युत प्रेक्षकों के ऊपर प्रभाव डालने की ओर अधिक अग्रसर होता है। यह अनुभव बड़ी-बड़ी संस्थाओं की परिषदों में तथा अधिवेशनों में हुआ है। अतः विचार-प्रधान कार्य करने वाली संस्थाओं की (डेलिवरेटिव बॉडीज़) सभाओं में भाषण-मंच नहीं रहना चाहिए। सभासद् अपने बैठने के स्थान से हीं भाषण दे, इसी दृष्टि से सभा की रचना की जाय। अध्यक्ष के दोनों पार्श्वों में दो पक्ष और बीच में खाली स्थान, इस रूप की रचना पक्ष-संगठन के

लिए विशेष अनुकूल रहती है। कौन किस पक्ष का है, यह समझ में आ जाता है और वक्ता उस दृष्टि से भाषण कर सकता है। इसके विपरीत, इस प्रकार की आयत रचना के स्थान पर यदि अर्धवृत्ताकार रचना रहे तो उससे पक्ष-भेद ठीक से स्पष्ट नहीं होता। सभासद् एक दूसरे से सटकर बैठें तो वे सब एक दूसरे से मिले हुए दृष्टिगत होते हैं; और इस कारण वक्ता के लिए यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि भाषण को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिए किस ओर मुख करके कौन से शब्द बोले। विशेष रूप से मध्य में बैठे हुए लोग किस पक्ष की ओर झुकेंगे, यह पता लगाना कठिन हो जाता है। परिमाणकारक विचार-विनिमय के लिए पहले इस बात का पता चल जाना आवश्यक होता है कि कौन किस मत को मानने वाला है। अतः सभा की रचना ऐसी होनी चाहिए कि जिससे इस बात का आसानी से पता लग जाय।

उपरिनिर्दिष्ट विवेचन विशेष रूप से उन संस्थाओं के लिए ही लागू होता है जिनकी सभाएँ बार-बार हुआ करती है। जिन संस्थाओं की सभाएँ साल में केवल दो या तीन बार होती हैं अथवा उससे भी कम, उनके लिए यह नियम लागू करने का विशेष प्रयोजन नहीं है। ऐसी सभाएँ नाम-मात्र के विचार-विनिमय की हुआ करती है। इस अवस्था में स्थान की दृष्टि से वक्ता को अध्यक्ष के समीप मंच पर खड़े होकर भाषण देना अनेक समय सुविधाजनक रहता है।

भाषण में रुकावट—अध्यक्ष की आज्ञानुसार जब तक वक्ता भाषण दे रहा हो, तब तक सभा उसी की है ऐसा मानना ठीक है। उसके काम में रुकावट पैदा करके दूसरे सभासद् को बोलने का, सुझाव या संशोधन उपस्थित करने आदि का अधिकार नहीं। भाषण करने वाले वक्ता से कोई जानकारी हासिल करनी हो, किसी प्रकार का कोई स्पष्टीकरण माँगना हो, कोई शंका करनी हो या कोई सवाल पूछना हो तो पूछने वाले को अपने स्थान पर खड़ा हो जाना चाहिए। पर, यदि भाषण देने वाला वक्ता नीचे बैठकर पूछने वाले को अवसर न दे तो प्रश्न पूछने वाला नीचे बैठ जाय। बोलने वाला वक्ता यदि अवसर न दे तो अध्यक्ष को पूछने वाले व्यक्ति को आज्ञा नहीं देनी चाहिए। एक ही समय में दो वक्ताओं का खड़े होकर बोलना सभा के कानून के विरुद्ध है। जो वक्ता बोल रहा है, जिसकी सभा है और वह जब तक नियमानुसार बोल रहा है तब तक उसे नीचे बैठने के लिए कहने का किसी को भी अधिकार नहीं है। यदि कोई उसे नीचे बैठने के लिए कहे तो अध्यक्ष का कर्तव्य है कि वह उसका निवारण करे।

अध्यक्ष का विशेषाधिकार—जब अध्यक्ष खड़ा हो, उस समय बोलने

वाले वक्ता को नीचे बैठना ही चाहिए। बहस के चालू रहते समय अनेक संचालन-सम्बन्धी प्रश्न उपस्थित होते हैं। उनका निर्णय देना आवश्यक होता है और यह करने का अधिकार अध्यक्ष का है। उपस्थित प्रश्नों पर निर्णय देने के लिए अथवा किसी अन्य कारण से अध्यक्ष ज्यों ही बोलने के लिए खड़ा हो, त्यों ही बोलने वाले वक्ता को नीचे बैठ जाना चाहिए। अध्यक्ष के बैठ जाने पर वक्ता फिर से अपना भाषण नियमानुसार चालू कर सकता है। अध्यक्ष के खड़े होने पर सभा में सर्वत्र शांति स्थापित हो जाय। सबको उसका कथन बैठकर शांति पूर्वक सुनना चाहिए। वह जो निर्णय दे उसे मंजूर करना चाहिए।

कानून के प्रश्न—संचालन-सम्बन्धी आक्षेप अथवा क़ानूनी सवाल अविलंब उपस्थित करने चाहिएँ। ऐसा कोई अवसर उपस्थित हो जाय तो उसका और अध्यक्ष का ध्यान आकर्षित करने का अधिकार प्रत्येक सभासद् को है। किसी सभासद् ने कोई कानूनी सवाल या कोई आपत्ति पेश की तो बोलने वाला वक्ता तत्काल नीचे बैठ जाय। यदि वह नीचे न बैठे तो अध्यक्ष उसे नीचे बैठने की आज्ञा दे। क़ानूनी सवाल या आपत्ति पेश करने वाले का भाषण नहीं करना चाहिए। उसे सिर्फ यह बतलाना चाहिए कि आपत्ति का स्वरूप क्या है। कानूनी सवाल पर अथवा आपत्ति पर अध्यक्ष की अनुमति के बिना किसी को वाद-विवाद करने का अधिकार नहीं है। और अध्यक्ष को भी तभी उस पर वाद-विवाद करने की आज्ञा देनी चाहिए जब कि वह देखे कि विषय बहुत ही महत्त्व का है; अन्यथा छोटी-मोटी बातों पर वाद-विवाद के लिए समय देकर समय का अपव्यय करना है। अध्यक्ष जो निर्णय दे उसे अन्तिम निर्णय माना जाय। यदि निर्णय नियमानुसार होगा और नियम ठीक एवं सर्वसाधारण की कल्पना के अनुरूप होंगे तो अदालत भी अध्यक्ष के निर्णय में रद्दो-बदल नहीं कर सकती।

कानूनी सवाल और आपत्ति सामान्यतया तीन प्रकार की होती हैं:—
(१) अधिकार का अतिक्रमण हो गया है (अल्ट्रा वायर्स) जो कार्य हो रहा है वह अधिकार से बाहर का है। जो प्रस्ताव, संशोधन अथवा बिल पेश किया गया है वह संस्था के कार्य-क्षेत्र में नहीं आता। अर्थात् नियम अथवा संविधान के द्वारा जो अधिकार दिये गए हैं, उनमें होने वाला कार्य अन्तर्भूत नहीं होता। (२) नियम के विरुद्ध होने वाला कार्य, जो नियम बने हुए हैं यह स्पष्ट उनके विरुद्ध गैर कानूनी हो। (३) संस्था के हित के विरुद्ध सामान्य न्याय-विषयक कल्पनाओं के विरुद्ध अथवा द्वेष-बुद्धि से काम किया जा रहा हो—आदि परि-

स्थितियों में आपत्ति उठाना उचित है।

संबोधन-पद्धति—"मान्यवर सभापति महोदय तथा उपस्थित सभासद् बन्धुओ" इस प्रकार सम्बोधन करके भाषण आरम्भ करने की सामान्य परिपाटी है। सार्वजनिक सभाओं में अध्यक्ष और सभासद् अथवा श्रोताओं को सम्बोधित करके भाषण करना ठीक रहता है। वहाँ का विषय हमेशा सीधा-सादा हुआ करता है। विस्तार पूर्वक वाद-विवाद सार्वजनिक सभा का प्रमुख अथवा प्राथमिक लक्षण नहीं होता। वहाँ के श्रोता वास्तव में श्रोता-मात्र होते हैं। उनकी संख्या में तथा बोलने वालों की संख्या में बड़ा भारी अन्तर होता है। बोलने वाले पाँच-सात हों तो सुनने वाले हजारों होते हैं। बोलने की तैयारी करके अथवा प्रश्न करने की दृष्टि से आने वाले लोग नाममात्र को होते हैं, अतः वक्ता के बोलते समय बीच में आपत्ति उठाने वाले अथवा प्रश्नोत्तर करने वाले बहुत थोड़े लोग होते हैं। इन बातों का अवसर बहुत ही कम रहता है। जन साधारण की उपस्थिति के कारण होने वाले भाषण किसी विशेष व्यक्ति को संबोधित करके होते हों, इसकी सम्भावना बहुत ही कम है। वैयक्तिक अथवा पक्षपातपूर्ण भावना का प्रदर्शित करने के अवसर वहाँ सामान्यतया उपस्थित नहीं होते। कारण, व्यक्ति अथवा गुट उस विशाल जन-समुदाय में अस्पष्ट लुप्त-सा हो जाता है। जिस सभा में सभासदों की संख्या सीमित रहती है उस सभा की अवस्था इससे सर्वथा भिन्न रहती है। जिस पर टीका-टिप्पणी करनी होती है वह व्यक्ति अथवा दल एकदम आँखों के समाने अथवा व्यक्तित्व की दृष्टि से पृथक् रूप में अपने सामने बैठे हुए होते हैं। विरोधी संगठित होते हैं तथा विषय की पार्श्वभूमि के ज्ञान के कारण विरोध के लिए उत्सुक तथा पूरी तरह तैयार रहते हैं। इस परिस्थिति में वक्ता के सभासदों को सम्बोधित करके बोलने से रुकावटें, प्रश्नोत्तर तथा कटुता आदि के उत्पन्न होने की सम्भावना अधिक बढ़ जाती है।

विचारणीय विषय के तात्त्विक वातावरण में से वैयक्तिक ईर्ष्या-द्वेष, मानापमान, तानेजनी आदि से मलिन हुए वातावरण में सभा पहुँच जाती है। इसे टालने के लिए वक्ता का अध्यक्ष को संबोधित करके बोलना वातावरण के औचित्य को बनाए रखने में पर्याप्त अंश तक सहायक होता है। अध्यक्ष को सम्बोधित करके जो भाषण दिया जाता है उसमें अभीष्ट मर्यादाओं का पालन होता है। चूंकि अन्य सदस्यों को सीधा सम्बोधित करके भाषण नहीं दिया जा रहा होता अतः उसमें 'तू-तू मैं-मैं' की गुञ्जाइश कम रहती है। अध्यक्ष को माध्यम बनाने से आलोचना का एक प्रकार का अप्रत्यक्ष भाव बना रहता है

और उसके कारण उसकी तीव्रता भी कम हो जाती है। सीधा बोलने से होने वाले परिणाम में और अध्यक्ष को बीच में करके बोलने से होने वाले परिणाम में अन्तर रहता है तथा उसमें तात्त्विक स्वरूप की हानि कुछ भी नहीं होती। इससे विचार-विनिमय के उन्नत वातावरण में होने के लिए सहायता मिलती है। चूँकि भाषण अध्यक्ष को सम्बोधित करके हो रहा होता है अतः अध्यक्ष अधिक जागरूक रहता है और नियमानुसार काम चलाने की ओर उसका ध्यान अधिक रहता है।

उपरोक्त विवेचन की दृष्टि से सार्वजनिक सभा में वक्ता यदि अध्यक्ष और सभा दोनों को सम्बोधित करके भाषण दे तो उसमें भी अनुचित कुछ नहीं। साल में एक-दो दफा काम करने के लिए होने वाली सभा में भी वक्ता यदि इसी प्रकार आचरण करे तो कुछ अनुचित नहीं होगा। परन्तु जिनका काम बार-बार होता रहता है और वे सब काम सभा द्वारा ही होते हैं, तो उन संस्थाओं की सभाओं में वक्ता के लिए यही उचित होगा कि वह केवल अध्यक्ष को ही सम्बोधित करके भाषण दे। यहाँ की सारी विधान-सभाओं में यही प्रथा है और नियम भी यही है। कॉमन्स-सभा में भी यही नियम है और सभा को सम्बोधित करके बोलना वहाँ अनुचित माना जाता है। लार्ड-सभा में अलबत्ता वक्ता केवल सभासदों को ही सम्बोधित करके भाषण देता है। बहुतेरी स्थानिक स्वायत्त संस्थाओं में यह नियम बनाया हुआ है कि वक्ता अध्यक्ष को ही सम्बोधित करके बोले। जहाँ यह नियम न बना हुआ हो वहाँ इस प्रथा को चालू करना उचित होगा।

भाषण की सीमा—सभा के सामने जो प्रश्न उपस्थित हों उन्हीं को लेकर वक्ता को अपना भाषण देना उचित है। अप्रस्तुत भाषण बन्द करने के लिए कहने का अधिकार अध्यक्ष को है। सभा के सामने कोई प्रस्ताव आया हुआ हो तो उस प्रस्ताव पर, सभा स्थगित करने का प्रस्ताव आया हुआ तो उस प्रस्ताव पर, कोई धारा हो तो उस धारा पर, संशोधन हो तो उस संशोधन पर; कहने का तात्पर्य यह कि सभा के सामने जो भी सवाल पेश हो उसी पर वक्ता को बोलना चाहिए। यदि किसी बिल की किसी एक धारा पर विचार चल रहा हो तो उस समय समस्त बिल पर भाषण देना अप्रासंगिक है। स्थगित प्रस्ताव के पेश होने पर वाद-विवाद के मुख्य विषय पर बोलना अप्रासंगिक है।

प्रस्तुतता—बिल पर होने वाली बहस की अनेक अवस्थाएँ होती हैं। जो अवस्था चल रही हो उस अवस्था को लेकर बोलना ठीक है। जिन बातों का फैसला हो चुका हो उन पर बोलना अप्रस्तुत है। केवल इतने भर से कोई

भाषण प्रस्तुत नहीं सिद्ध हो सकता, कि वह उन विषयों से सम्बद्ध है जो चालू प्रश्नों से तो ग्रसित नहीं हैं, परन्तु आगे विचारार्थ उपस्थित होने वाले हैं अथवा जिनका निर्देश कार्यक्रम में है। मुख्य प्रश्न पर विचार हो चुकने के पश्चात् यदि कोई आनुषंगिक विषय सभा के समक्ष हो तो पुनः मुख्य विषय पर बोलना अप्रस्तुत है। "साइकिलों पर कर लगाया जाय" यह प्रस्ताव पास हो जाने के बाद "विस्तृत योजना बनाने के लिए एक कमेटी बिठाई जाय"—ऐसा प्रश्न जब सभा के सम्मुख हो तो उस समय पुनः साइकिल-कर के गुण-दोषों के के बारे में बोलना अनुचित है।

कभी-कभी सभा के सामने ऐसा अस्पष्ट-सा प्रस्ताव उपस्थित होता है कि अमुक प्रश्न विचारार्थ कमेटी को सौंपा जाय, उस समय उस प्रश्न के गुण-दोषों के ऊपर विचार करना भी अप्रासंगिक है। कमेटी में कितने सदस्य रहें इस प्रश्न पर जब विचार हो रहा हो, उस समय मुख्य प्रश्न पर चर्चा करना सर्वथा अनुचित है। जब सभा के सामने यह प्रश्न हो कि अमुक पद्धति से सभा के काम को चलाया जाना चाहिए तो उस समय जो काम होने वाला है उसके गुण-दोषों के बारे में बोलना ठीक नहीं। निम्न विषयों पर चर्चा नहीं हो सकती सभ्यता के विपरीत कहकर घोषित किया गया विषय, अनुपयोगी सिद्ध किया गया संशोधन, मंजूर अथवा नामंजूर की गई आपत्तियाँ और सभा-संचालन से सम्बद्ध अध्यक्ष द्वारा दिया गया निर्णय। उस निर्णय को मंजूर करके चर्चा और वाद-विवाद किया जाना चाहिए। इससे सम्बन्धित चर्चा के उल्लेख आदि को प्रस्तुत प्रश्न नहीं माना जायगा। उस समय सभा के सामने अध्यक्ष पर अविश्वास का प्रस्ताव उपस्थित हो अथवा उसे हटाने के बारे में प्रस्ताव हो, उस समय उसके निर्णय प्रस्ताव के आशय के अनुकूल होंगे तो वे अवश्य प्रस्तुत माने जायँगे।

पुनरुक्ति—वक्ता का भाषण सभा के सामने उपस्थित प्रश्न के अनुसार होना चाहिए। अप्रस्तुत भाषण करने वाले को सूचना दे देनी चाहिए। यदि वह न माने तो अध्यक्ष को इस बात का अधिकार है कि वह वक्ता से भाषण बन्द करने को कहे। इसी प्रकार एक ही बात को बार-बार दोहराना, उन्हीं-उन्हीं प्रश्नों को अथवा उन्हीं-उन्हीं तर्कों को बार-बार उपस्थित करते चले जाना भी अप्रसंगिक है। अतः यदि कोई इस प्रकार कर रहा हो तो अध्यक्ष उसे बन्द कर दे। यह अधिकार सामान्यतया उसे विधान-सभाओं में प्राप्त रहता है। सामान्य-सभा में भी यह अधिकार अध्यक्ष को प्राप्त है। चर्चा का अर्थ पुनरुक्ति करना किसी भी अवस्था में नहीं है

अदालत के सामने प्रस्तुत विषय पर चर्चा—जो विषय अदालत में पेश किये हुए हों उनमें ऊहापोह नहीं करनी चाहिए। जो बात न्यायालय में निर्णय के लिए पहुँची हुई हो उस पर बहस करना अनुचित है। न्यायालय के सामने उपस्थित होने के कारण किसी बात पर निर्णय नहीं लिया जा सकता अथवा इस अवस्था में किसी प्रकार का प्रस्ताव लाकर उस विषय पर बहस की जाय तो इससे न्याय के कार्य पर अनुचित दबाव पड़ सकता है। उसका अर्थ यह हो सकता है कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से न्याय के कार्य पर अनुचित प्रभाव डालने का प्रयत्न किया जा रहा है। चाहे वे सभाएँ ऐसी संस्थाओं की हों जो रजिस्टर्ड हैं या ऐसी संस्थाओं की हों जो रजिस्टर्ड नहीं है, पर यह नियम सभी को मानना चाहिए। सभा की कार्रवाई प्रकाशित नहीं होगी अतः इस नियम की उपेक्षा करने में कोई हानि नहीं, यह मानना उचित नहीं। विधान-सभाओं में इस सम्बन्ध में बिलकुल स्पष्ट नियम बने हुए हैं। स्थानिक स्वायत्त संस्थाएँ तथा अन्य वे संस्थाएँ, जिनका निर्माण क़ानून द्वारा हुआ है, इस प्रचलन को स्वीकार करती हैं। भले ही उनके इस सम्बन्ध में कोई स्पष्ट नियम बने हुए न हों। न्यायालय के सामने मौजूद विषयों पर ऊहापोह करना एक प्रकार से न्यायालय का अपमान करना है। इसीलिए वह एक अपराध हो जाता है। असली विषय तो बहस में लाया ही नहीं जा सकता, उसका उल्लेख तक वर्ज्य है। किया हुआ अपराध निन्दनीय हो सकता है पर जब तक अपराधी ने वह अपराध किया है यह सिद्ध नहीं हो जाता, और जब तक न्यायालय अपना निर्णय प्रकाशित नहीं करता तब तक उस विषय की निन्दा करना अनुचित है।

वैयक्तिक आरोप—भाषण में वैयक्तिक आरोप नहीं होने चाहिएँ। बहस में वैयक्तिकता का अंश न रहे इस खयाल से कामन्स सभा में सभासदों का उल्लेख नाम लेकर नहीं किया जाता। सामान्यतया "माननीय सभासद्, मैंचेस्टर" "माननीय और विद्वान् सभासद् आक्सफोर्ड" "माननीय मंत्री पर-राष्ट्र-विभाग" आदि कहकर उल्लेख किया जाता है। निर्वाचन-क्षेत्र और पद अथवा व्यवसाय इत्यादि का भी उल्लेख किया जाता है। सभासद् के नाम से कभी उल्लेख नहीं किया जायगा। सभासद् के नाम का उल्लेख तभी किया जाता है जब अध्यक्ष को किसी सभासद् को सभा-गृह से बाहर जाने के लिए कहना होता है। सभासद् को नाम लेकर संबोधित करने का तात्पर्य यह निकलता है कि उस सभासद् को सभा-भवन से बाहर निकल जाने की आज्ञा दी गई है, उसकी सदस्यता रद्द कर दी गई है। नाम लेकर संबोधित करने की प्रथा अन्यत्र कहीं भी नहीं है।

लार्ड-सभा में भी अब यह प्रबन्ध नहीं है। इस प्रथा से वैयक्तिक भाव थोड़ा-सा कम अवश्य हो जाता है पर उसमें से वहाँ भी काम नहीं चलता। जहाँ अधिकार हो वहाँ और जिस प्रकार की वस्तु स्थिति हो, वहाँ उसके अनुरूप ही सभासदों का उल्लेख करना चाहिए। "विरोधियों का कहना यह है कि" "स्थायी समिति के अध्यक्ष का कहना यह है कि" "विभाग का कहना यह है कि" इस प्रकार संबोधन करने से हानि तो कुछ है नहीं उलटे फायदा ही है। "आदरणीय मित्र श्रीप्रकाश" "मेहरबान सभासद् श्री कालोखे" केवल 'श्रीयुत' अथवा 'राजश्री' 'संत' इत्यादि कहकर नाम का उल्लेख करने की प्रथा कुछ संस्थाओं में है। इस बारे में या तो वहाँ नियम बने होते हैं या फिर इस प्रकार का प्रचलन वहाँ रहता है। गौरव पूर्वक संबोधित करना वाद-विवाद में वांछनीय होता है। किसी भी प्रकार उल्लेख हो, पर वह सभ्यतापूर्ण हो। भाषण का उद्देश्य औरों के मत अपनी ओर करना तथा उनकी सहानुभूति को अपने पक्ष में करना है। इस दृष्टि से सभ्य और मधुर भाषा हमेशा ही प्रभाव पैदा करने वाली रहती है। प्रतिपक्षी अथवा अपने विरोधियों को अपमानजनक शब्दों में याद करना अथवा उन पर आरोप लगाना, उन्हें झूठा कहना और भद्दे ढंग से उनका उल्लेख करना शोचनीय नहीं है।

सभ्य भाषा का प्रयोग—वक्ता की भाषा सभ्य होनी चाहिए। अध्यापकों को इस बात की सावधानी बरतनी चाहिए कि सभा में होने वाली बहस में किसी प्रकार का अशिष्ट शब्द न बोला जाय। किसी प्रकार का प्रिय विषय प्रतिपादित न हो। किसी प्रतिपादित वस्तु के अशिष्ट होने के सम्बन्ध में कोई आपत्ति उठानी हो तो वह तत्काल उठानी चाहिए। ज्यों ही आपत्तिजनक शब्द वक्ता के मुँह से निकलें त्यों ही आपत्ति की जाय। यदि इस प्रकार की आपत्ति वक्ता के भाषण के समाप्त हो चुकने पर की जाय अथवा बहुत देर भाषण हो चुकने पर की जाय तो सभापति को चाहिए कि वह उस पर बहुत अधिक ध्यान न दे। यदि आपत्तिजनक शब्द अध्यक्ष ने स्वयं सुने हों तब तो कोई बात ही नहीं। यदि न सुने हों या अधूरे सुने हों तो आपत्ति करने वालों से कहे कि वे उन शब्दों को एक बार फिर पूरी तरह से सुनाएं। आपत्तिजनक शब्द वक्ता ने कहे हैं, इस बात का निर्धारण वक्ता से अथवा सभा से पूछकर करना चाहिए। यदि कोई संवाददाता वहां हो तो उसकी लिखी हुई रिपोर्ट देखनी चाहिए। कहे गए शब्द आपत्तिजनक हैं, ऐसा अध्यक्ष का मत बन जाय तो अध्यक्ष आपत्तिजनक शब्दों को वापिस लेने के लिए वक्ता से कहे। वक्ता को चाहिए कि वह भी अपने उन शब्दों को वापिस ले ले, इसी में उसकी प्रतिष्ठा है। यदि वह उन

शब्दों को वापिस लेने से इन्कार करे तो अध्यक्ष उससे अपना भाषण बन्द करने के लिए कह दे। उस अवसर पर सभा को त्यागकर बाहर चले जाने की आज्ञा भी अध्यक्ष दे सकता है। अध्यक्ष के निर्णय पर फिर वाद-विवाद की आवश्यकता नहीं रह जाती।

तुच्छ, अपमानजनक, बदनामी करने वाले शब्द अशिष्ट कहलाते हैं। असत्य कथन और भ्रान्ति उत्पन्न करने वाली बातें आपत्तिजनक हैं। 'सभा को मूर्ख बनाया', 'बच्चों का-सा विरोध', 'स्वतन्त्रता के ढोंगी भक्त', 'खल पुरुष', 'निर्लज्ज', 'उद्धत', 'गुण्डा', 'पाजी', 'देशद्रोही', 'खूनी', 'सभ्य व्यक्ति को शोभा न देने वाला व्यवहार', 'झगड़ालू', 'शर्म महसूस कराने वाला कृत्य', 'असत्य जानकारी दी', 'कम अधिक करके जानकारी दी', 'नालायक लोगों का प्रतिनिधि', 'बावला', 'आत्मा का विक्रय करने वाला' तथा 'नाम मात्र का मुसलमान' इत्यादि वाक्यों का व्यवहार सभा-शास्त्र की दृष्टि से निन्दनीय ही नहीं आपत्तिकारक भी है। ऐसा भिन्न-भिन्न विधान-सभाओं के अध्यक्षों ने स्थिर कर दिया है। सभासदों के व्यवहार के बारे में की गई आलोचना यदि ठीक हो, उसमें तानेबाजी व्यंजना में कही मर्मान्तक बातें हों अथवा किसी समय कटुता या तीव्रता आ जाय, तो उससे भाषण अशिष्ट नहीं हो जाता। "बारम्बार तथा असंबद्ध भाषण करके सभा के काम में विघ्न उपस्थित कर रहे हैं"—ऐसा कहना कोई अनुचित नहीं है। "श्रीयुत⋯⋯का नेतृत्व अत्यन्त ओजस्वी है अतएव उसकी तरफ कोई देख नहीं सका", "विवेकके साथ इनकी गहरी मित्रता नहीं है", "सत्य की सिर्फ जानकारी' से ही काम नहीं चलता उसे व्यक्त करनेका ढंग भी आना चाहिए" "इसके लिए श्री ⋯⋯क्या करेंगे ?" "अनुयायी लोगों का पीछे चलना, विचार न करना, और केवल नेताओं पर श्रद्धा रखकर व्यवहार करना श्रेष्ठ धर्म है, इस धर्म का पूर्ण परिपालन करने वाले के विरुद्ध कुछ भी कैसे कहा जा सकता है"—ये तथा इस प्रकार के अन्य वाक्य अशिष्ट नहीं हैं। जो शब्द स्पष्ट ही गाली-गलौज से भरे हुए हैं, अपशब्द हैं, अथवा अश्लील हैं; जहाँ केवल अपमान करने का, बे-आबरू करने का ही इरादा है, जहाँ पगड़ी उछालने की चेष्टा स्पष्ट दिखाई देती है, वहाँ अध्यक्ष की गई आपत्ति को सत्य मानकर व्यवहार करे।

वाद-विवाद के समय अनेक बार क्षुब्ध करने वाला अपमान-कारक तथा असभ्य भाषा का भी इस्तैमाल हो जाता है और वातावरण गर्म हो उठता है। अनेक बार तो शब्दों से बढ़ते-बढ़ते मामला हाथा-पाई तक भी पहुँच जाता है। अध्यक्ष को आपत्तिजनक शब्द वापिस लेने के लिए तो कहना ही चाहिए, यदि

प्रसंग आ पड़े तो वक्ता को खेद-प्रदर्शन करने की भी वह आज्ञा दे। यदि वक्ता उचित शब्दों में खेद प्रदर्शित करे तो उस प्रकरण को वहीं समाप्त कर दें। अध्यक्ष को हमेशा इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि सभा के अन्दर किसी का अपमान न हो, अथवा सभा की कार्रवाई के चलते समय ऐसा कोई काम न होने पाय जिससे किसी के सम्बन्ध में किसी प्रकार की गलतफहमी फैल जाय। हाथापाई की नौबत न आने पाय। जो-जो आपत्तिजनक व्यवहार सभा में हुए हों और जो सभासद् उसके लिए दोषी हो, अध्यक्ष उसके द्वारा उसका जो भी उचित परिमार्जन हो सकता है, वह करवाए। सभा के भीतर उत्पन्न हुआ विरोध सभा की समाप्ति के साथ ही समाप्त हो जाना चाहिए। वैयक्तिक मित्रता अथवा वैयक्तिक संबंधों पर उसका असर न पड़े। सब खिलाड़ियों की वृत्ति से रहें। रास्ते के झगड़ों को घर में न घुसने दें। उसी प्रकार सभा में होने वाले झगड़ों को चौराहे पर नहीं जाने देना चाहिए। कॉमन्स-सभा में अध्यक्ष के कथनानुसार लोगों ने अपने झगड़े खत्म नहीं किए तो झगड़ने वालों को हवालात में रहना पड़ता है। तब तक उनका छुटकारा नहीं होता जब तक वे अध्यक्ष के कथनानुसार काम करने तथा अपने झगड़े खत्म करने का आश्वासन नहीं दे देते। सार्वजनिक कामों में से उत्पन्न हुए व्यक्तिगत द्वेष के कारण नगर पर तथा देश पर भयानक विपत्ति आ पड़ने की अनेक मिसालें मौजूद हैं।

अन्य संस्थाओं की निन्दा—सभासद् के लिए जैसे यह बात वांछनीय है कि वह किसी अन्य सभासद् की निंदा अथवा अप्रतिष्ठा न करे, उसी प्रकार अपने भाषण में वह किसी अन्य संस्था की निंदा न करे, यह भी आवश्यक है। योग्य आलोचना करने का उसे पूर्ण अधिकार है और होना भी चाहिए। विधान-सभाओं में किसी अन्य विधान-सभा की अनुचित आलोचना करना तथा अप्रतिष्ठा करना मना है।

वैयक्तिक आलोचना—सभासदों के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति सभा में नहीं रहते अतः उन पर किसी प्रकार की वैयक्तिक आलोचना नहीं की जानी चाहिए। उनके सार्वजनिक कृत्यों के बारे में भी जो आलोचना हो वह उचित और प्रासंगिक हो। जिनकी आलोचना की जा रही है, वे यदि वहाँ अपना पक्ष रखने के लिए उपस्थित नहीं हो सकते, तो उस अवस्था में सभापति किसी भी प्रकार की अपमानकारक, अन्याययुक्त एवं आरोपपूर्ण आलोचना न होने दे। राजा की आलोचना वर्ज्य है पर राजकीय कारोबार की आलोचना हर हालत में हो सकती है। व्यक्तिशः अधिकारी आलोचना का पात्र नहीं, पर उसका काम आलोचना का विषय हो सकता है।

न्यायालय की आलोचना—भाषण में ऐसी कोई आलोचना नहीं होनी चाहिए जिससे कि न्यायालय की मान-मर्यादा भंग हो। निर्णय पर यदि तात्त्विक दृष्टि से चर्चा की जाय तो कोई बुराई नहीं। उससे निष्पन्न होने वाले परिणामों की ओर ध्यान आकृष्ट करना अथवा उस पर चर्चा करना अनुचित नहीं है। यह कहने कि वह निर्णय अप्रामाणिक है अथवा पक्षपातपूर्ण है आदि बातों से न्यायालय की मान-मर्यादा भंग होती है।

संस्था की अनुचित आलोचना—अपनी ही संस्था की अप्रतिष्ठा करने वाली बातों पर वाद-विवाद अच्छा नहीं। सभा जो निर्णय दे वह सभा का निर्णय है। उसकी भी प्रतिष्ठा है। सभा के निर्णय की अवहेलना अनुशासन के विरुद्ध है। सभासद् यदि स्वयं बुरा-भला कहने लगे या अप्रतिष्ठा करने लगे तो जनता में संस्था का क्या मूल्य रहेगा। उसकी प्रतिष्ठा नष्ट हो जायगी। विधान-सभाओं में सभा के निर्णयों का अनुशासन हीनता पूर्वक उल्लेख करना नियम-विरुद्ध है। विधान-सभा द्वारा बनाए हुए कानूनों का भी भद्दे रूप में उल्लेख करना अनुचित है। जब सभा के सामने निर्णय को परिवर्तित करने का प्रस्ताव अथवा कानून को रद करने का प्रश्न उपस्थित हो, उस समय किसी भी प्रकार का उल्लेख करना आपत्तिजनक नहीं। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि जो भी उल्लेख किया जाय वह सर्वथा सम्बद्ध हो। 'मूर्खता से भरा कानून', 'प्रयोजन-हीन निर्णय', 'अपनी ही नाक काटने वाला बर्ताव' इत्यादि सारे उल्लेख अनु-शासन के विरुद्ध हैं। 'म्युनिसिपैलिटी क्या है सारा गुण्डों का कारोबार है' इस प्रकार का उल्लेख कोई सभासद् करे तो वह कदापि क्षम्य नहीं हो सकता। 'संस्था तो लार टपकाने वालों की बन गई है', 'भाड़े के टट्टुओं की है'—ये सारे उल्लेख अप्रतिष्ठा करने वाले हैं।

भाषण में अपराध—भाषण की भाषा सभ्य तो होनी ही चाहिए उसके साथ ही इस बात का भी ध्यान रखा जाय कि वह किसी प्रकार के अपराध को प्रोत्साहन देने वाला तथा किसी की बदनामी करने वाला न हो तथा भाषा की सभ्यता का चोला पहनकर भी अपराध किया जा सकता है। वक्ता जो कुछ बोलता है उसके लिए वह कानूनन जिम्मेदार है। जो सभा किसी संगठित संस्था की है, खुल्लम-खुल्ला काम करने वाली है, ईमानदारी से कानून-सम्मत विषयों पर चर्चा करने के लिए अथवा तत्सम्बन्धी विचार करने के लिए एकत्र हुई है, वहाँ किसी प्रकार कानून के विरुद्ध भाषण अथवा अन्य कोई चेष्टा न होने पाय, यह देखने का नैतिक उत्तरदायित्व अध्यक्ष पर है। भाषण-स्वातन्त्र्य एक बहुमूल्य अधिकार है और साथ ही वह एक शस्त्र भी है। उसका किसी भी

अवस्था में दुरुपयोग नहीं होना चाहिए। भाषण-स्वातन्त्र्य के अभाव में मनुष्य का मन मसोसा जायगा, व्यक्तित्व झुलस जायगा, उसकी वृद्धि नहीं हो सकेगी और अन्याय के विरुद्ध आवाज नहीं उठाई जा सकेगी।

भाषण-स्वातन्त्र्य—भाषण-स्वातन्त्र्य का अर्थ यह नहीं कि जहाँ चाहे और जो मन में आए बोलने लग पड़े। शांति से सभा चल रही हो उस समय 'आग-आग' या 'साँप-साँप' कहकर चिल्लाने और सभा में गड़बड़ी मचाने का नाम भाषण स्वातन्त्र्य नहीं है। भाषण का अर्थ निंदा भी नहीं है। भाषण में उचित और योग्य आलोचना की सीमाओं का पालन किया जाना चाहिए। सभा में भाषण करने के कारण ऊल-जलूल बोलने का अधिकार नहीं मिल जाता। केवल विधान-सभा में सभासद् द्वारा किये गए भाषण के कारण उस पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। वहाँ भी राजद्रोह से भरा अथवा बदनामी करने वाला भाषण करने की मनाही है। यदि कोई उस प्रकार का भाषण करे अथवा वैसा कुछ उल्लेख हो जाय तो अध्यक्ष सभा के नियम के अनुसार उसका यथोचित निराकरण करता है। या तो उतना हिस्सा सभासद् को वापस लेने के लिए कहा जाता है या फिर छपने वाले अधिकृत समाचार में से उतना हिस्सा निकाल दिया जाता है। अधिकृत वृतान्त (ऑफिशियल रिपोर्ट) में आए हुए मैटर के बारे में भी सभासदों के विरुद्ध कानून का सहारा लेकर कोई कुछ नहीं कर सकता। समाचार-पत्रों में छपी हुई रिपोर्ट के बारे में वक्ता के विरुद्ध कोई कुछ नहीं कर सकता और यदि सभा का इतिवृत्त सरल तथा यथातथ्य (फेयर एण्ड एक्यूरेट) होगा तो समाचार-पत्र के विरुद्ध भी कुछ नहीं किया जा सकता। हाँ, उतना ही भाषण सभासद् ने अथवा अन्य किसी ने छापा तो प्रकाशक के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई हो सकती है। ऐसा और इतना भाषण-स्वातन्त्र्य केवल विधान-सभा में ही रहता है और यह उचित भी है। इतनी स्वतंत्रता यदि उन्हें न रहे तो अनर्थ हो जायगा। सत्ताधारियों की ही खीर ज्यादा पकने लगेगी।

लोकमत को योग्य अवसर प्राप्त हो इसके लिए लोक-प्रतिनिधियों को बहस-मुबाहिसे के वक्त कानूनी कार्रवाई का डर नहीं रहना चाहिए। कुछ भी बोलने से कानूनी कार्रवाई होने लग जाय तो ऐसे वातावरण में उचित और पूर्ण चर्चा नहीं हो सकेगी। जब तक सारी दृष्टियों से विषय पर चर्चा न हो ले तब तक यथार्थ निर्णय नहीं दिया जा सकता। विधान-सभा में इतनी आजादी अत्यन्त आवश्यक है। जो पार्लियामेंट करेगी वह निःसन्देह कानूनी वस्तु होगी। परन्तु पार्लियामेंट का कानून बनने से पूर्व कोई उसे पेश करेगा, उस पर बहस-मुबाहसा करना होगा, इसके अभाव में वह कानून की शक्ल में नहीं आ सकता।

यदि फलस्वरूप निर्मित होने वाला कानून कानून के मुताबिक है और उसके विरुद्ध कोई शिकायत नहीं कर सकता तो उससे पहले की चर्चा उसी प्रकार की है। उसके विरुद्ध भी किसी को कोई शिकायत करने की गुन्जाइश नहीं रह सकती। पार्लियामेंट को जितनी स्वतन्त्रता है उतनी ही स्वतन्त्रता उसके सभासदों को भी रहना चाहिए। यदि पार्लियामेंट के कानून से राज्य को किसी प्रकार का कोई ख़तरा नहीं है, तो जिस चर्चा में से उस कानून का जन्म होता है उस चर्चा से भी किसी प्रकार का कोई खतरा नहीं हो सकता। क्योंकि चर्चा के अभाव में और प्रस्ताव के अभाव में वह कानून ही नहीं हो सकता। प्राचीन परम्परा और प्रथा के अनुसार की गई यह कामन्स-सभा की सन् १६६७ की घोषणा, भाषण-स्वातन्त्र्य की आवश्यकता को उत्कृष्ट रूप से प्रतिपादित करती है।

यथार्थ आलोचना—विधान-सभा के अतिरिक्त अन्य सभाओं में वक्ता को कानूनी कार्रवाई से कहीं भी संरक्षण नहीं दिया गया है। लोकल बोर्ड, नगर-पालिका, कंपनी की सभा अन्य संस्थाओं की सभाओं तथा सार्वजनिक सभाओं में दिया गया भाषण, यदि अपराध की कक्षा में आता होगा तो उस पर मुक़दमा चलाया जा सकता है। अन्य कानूनी कार्रवाई भी की जा सकती है। उस भाषण में उचित आलोचना की मर्यादा का पालन किया गया हो तो वह भाषण अपराध या अपमान-जनक सिद्ध न होगा। भाषण में प्रतिपादित वस्तु सत्य हो तो उस पर दिवानी दावा नहीं किया जा सकता। पर फौजदारी कोर्ट में मुकदमा चलाया ग़या हो तो इतना भर सिद्ध कर देने से काम नहीं चलेगा कि वह प्रतिपादन सत्य था। प्रत्युत वहाँ यह भी सिद्ध करना होगा कि जो कुछ कहा गया है वह सार्वजनिक हित से प्रेरित होकर ही कहा गया है। वक्तव्य सत्य होना चाहिए अथवा जिसने वह वक्तव्य दिया है उसने ईमानदारी से तथा सत्य समझकर ही दिया है। यदि यह सिद्ध कर दिया जाय तो फिर वह वक्तव्य अपमानजनक नहीं रह जाता। अपने न्याय्य हित की रक्षा के लिए किया गया सत्य-कथन आपत्तिजनक नहीं होता।

उचित और योग्य आलोचना का अर्थ है वस्तुस्थिति पर आधारित, सार्वजनिक विषयों से सम्बद्ध बातों पर किया गया मत-प्रदर्शन। सच्ची बात कहना अथवा वस्तुस्थिति का प्रतिपादन करना मत-प्रदर्शन नहीं होता। मत-प्रदर्शन का अर्थ है वस्तुस्थिति पर आधारित अपनी राय प्रकट करना। इसलिए आलोचना करते समय जिस वस्तुस्थिति का आधार लेकर आलोचना करनी है, उसका यथातथ्य कथन करना चाहिए। उसमें किसी प्रकार की अतिशयोक्ति न हो और उस वस्तुस्थिति से आलोचना का सम्बन्ध रहे। जिस पर मत प्रकट करना है

वह विषय सार्वजनिक होना चाहिए। सार्वजनिक हित की उसके साथ संगति होनी आवश्यक है। भाषण में केवल व्यक्तिगत आक्रमण करना अनुचित है। वैयक्तिक गुण-दोष दिखाने में यदि किसी प्रकार का सार्वजनिक महत्त्व न हो तो वह अनुचित है। आरोप भले ही सत्य हों, पर उनका यदि सार्वजनिक विषय से किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध न हो तो उसे उचित अथवा योग्य आलोचना नहीं कहा जा सकता। व्यक्ति का सार्वजनिक बरताव एक सार्वजनिक विषय है। सब प्रकार के सार्वजनिक कृत्य, ग्रंथ, नाटक, सभा, राजकीय कारोबार और सामाजिक कथाएँ इत्यादि बातें, आलोचना का विषय बन सकती हैं। उचित और योग्य आलोचना छल-छिद्र से मुक्त होती है। प्रसंग का दुरुपयोग करके उसमें व्यक्तिगत क्रोध अथवा द्वेष का पुट नहीं मिला रहना चाहिए। अनुचित कारणों का सम्बन्ध जोड़ना ठीक नहीं। जिस भाषा में वह आलोचना की जाती है, उसकी तीव्रता और कटुता से वक्ता की ईमानदारी का अनुमान कानून किया करता है।

संरक्षित प्रसंग—विधान-सभा का भाषण जिस प्रकार कानूनी कार्रवाई से पूर्ण तथा सुरक्षित है उस प्रकार अन्य किसी भी स्थान का भाषण नहीं। तथापि किन्हीं स्थानों पर होने वाले भाषणों के सम्बन्ध में वक्ता को थोड़ा बहुत, पर, अप्रत्यक्ष स्वरूप का संरक्षण मिलता है। जिन स्थानों पर वक्ता को कानून द्वारा प्राप्त नैतिक अथवा सामाजिक कर्तव्य-पालन करने के लिए भाषण करना होता है, एकाध वस्तु प्रतिपादित करनी होती है, वहाँ यदि निश्छल भाव से, प्राप्त अवसर का अनुचित लाभ न उठाते हुए भाषण किया गया हो, तो न्यायालय उसे संरक्षण प्रदान करता है। पर भाषण करने वाले को यह सिद्ध करना पड़ता है कि वह प्रसंग वैसा था। दुर्भावना से की गई आलोचना थी—ऐसा अदालत मान ले तो भाषण उस अवस्था में अपराध सिद्ध होता है। जिस सभा में वह भाषण हुआ हो उसका वृत्तांत यदि कोई जान-बूझकर अपने खर्च से छपाए और बाँटे तो वह भी उसकी दुरभिसंधि का बोधक साबित होता है। विधान-सभा के भाषणों में यदि कोई प्रसंग आय तो वह पूर्णतया संरक्षित रहता है।

भाषण कैसा ही क्यों न हो पर अदालत को उसके बारे में कुछ भी करने का अधिकार नहीं है। उस पर कोई सुनवाई ही नहीं हो सकती। अन्य स्थानों पर कर्तव्यानुसार किये गए भाषण अपमानजनक हों, तो भी यदि यह सिद्ध हो जाय कि ऐसा करना प्राप्त प्रसंग के अनुरोध से आवश्यक था, तो उसके पीछे कोई दुरभिसंधि नहीं, यह विदित हो जाने पर वह अपराध नहीं माना

जाता। ऐसे प्रसंग मर्यादित संरक्षण के प्रसंग माने जाते हैं।

काल की मर्यादा—जान-बूझकर सभा के कामों में लगातार विघ्न उपस्थित करने के इरादे से भाषण करना, अपने भाषण करने के अधिकार का दुरुपयोग है। नियमानुसार प्रत्येक सदस्य को भाषण करने का अधिकार है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि इस मौके का अथवा अधिकार का अनुचित फायदा उठाया जाय। हरेक विषय पर कुछ-न-कुछ बोलकर, संशोधन उपस्थित करके या स्थगित प्रस्ताव लाकर अथवा अन्य रीति से सभा की चर्चा को लम्बा खींचने की कोशिश करना ठीक नहीं। किन्हीं स्थानों पर भाषणों के लिए काल की मर्यादा नहीं रहती। उदाहरणार्थ किसी बिल पर चर्चा चल रही हो तो उसके लिए भाषणों पर समय की कोई सीमा नहीं रहती। वहाँ कोई, घंटों तक भाषण ही देता चला जाय और इस प्रकार समय का ध्यान न रखे तो यह ठीक नहीं। जहाँ वक्ता का आशय ही यह है कि सभा में जान-बूझकर बाधा उपस्थित की जाय, वहाँ निश्चय ही योग्य भाषण की मर्यादा का उल्लंघन होता है। ऐसे अवसरों पर सभापति को अधिकार है कि वह वक्ता से अपना भाषण बन्द करने के लिए कहे। तथापि अध्यक्ष को अपने इस अधिकार का उपयोग तब तक नहीं करना चाहिए जब तक कि वक्ता का आशय स्पष्ट न हो जाय।

समिति का उल्लेख—समिति में क्या हुआ यह बताना वक्ता के लिए उचित नहीं। समिति का वातावरण और स्वरूप अनौपचारिक रहता है। कई बार सुलह समझौते की दृष्टि से काम होता है। सुझाव अनौपचारिक रीति से पेश किये जाते हैं। इस अवसर पर कौन क्या बोलता है इसका मुख्य सभा में उल्लेख करना अनुचित है। समिति की जो रिपोर्ट छपी हो उसमें जितनी बातें आई हुई हों, उनका उल्लेख किया जा सकता है। समिति में क्या हुआ और किस प्रकार हुआ, इसके बारे में किये जाने वाले उल्लेखों को अनुशासन के विरुद्ध माना जाना चाहिए। रिपोर्ट में जो बातें आई हुई हों उनका उल्लेख तब तक करना ठीक नहीं जब तक कि रिपोर्ट सभा के सामने न आ जाय। कार्यकारिणी में क्या हुआ अथवा स्टैंडिंग कमेटी में क्या हुआ, इसके बारे में उल्लेख करना अथवा चर्चा करना यह अर्थ रखता है कि फिर से उन चर्चाओं को आरम्भ किया जा रहा है। अथवा वहाँ हुई बातों की सत्यता और असत्यता के सम्बन्ध में फिर वाद उत्पन्न किया जा रहा है। इन समितियों की जो अधिकृत रिपोर्ट प्रकाशित हुई हो, उतना ही विषय भाषण का विषय हो सकता है। उतने ही के बारे में किया गया उल्लेख प्रसंगानुकूल रहता है।

अध्यक्ष के निर्णय पर आलोचना—सभा-संचालन के काम में अध्यक्ष

जो निर्णय दे उसे अंतिम मानकर चलना चाहिए। अतः उनके बारे में किसी भी प्रकार का विरोधात्मक अथवा आलोचनात्मक उल्लेख भाषण में होना ठीक नहीं। जब अध्यक्ष के ऊपर अविश्वास, निन्दा या उसे हटाने के सम्बन्ध में नियमानुसार प्रस्ताव जब आयें तो अध्यक्ष के पिछले निर्णय पर आलोचना करना उचित है। जब तक कोई प्रश्न सभा के सामने नहीं आता तब तक उस पर किसी प्रकार की चर्चा नहीं की जा सकती और उस पर कोई बोल नहीं सकता। सभा के सामने प्रश्न किस प्रकार लाया जा सकता है और वह चर्चा का विषय किस प्रकार हो सकता है, इस पर अन्यत्र प्रकाश डाला जा चुका है। सभा अपने निर्णय से आज्ञा देती है अथवा अपना मत प्रकट करती है। निर्णय का स्वरूप कैसा भी क्यों न हो उसके लिए सभा के सामने प्रस्ताव या सुझाव अवश्य आना चाहिए। उसके अभाव में किसी को भी खड़े होकर कुछ कहने का अधिकार नहीं।

सभा के सामने प्रश्न हो—प्रस्ताव की सूचना उपस्थित करने वाला पहले बोलेगा परन्तु उसे चाहिए कि वास्तविक सूचना पहले उपस्थित हो जाय तब वह बोले। यही नियम संशोधन पेश करने वाले के लिए भी लागू होता है। तथापि वह प्रसंगतः पहले बोलता है और उसके बाद अपना संशोधन पेश करता है। इन नाम-मात्र के अपवादों को छोड़कर सभा के सामने जो प्रश्न उपस्थित हो, उसके बारे में वक्ता को बोलना चाहिए। सभा के सामने मौजूद प्रश्न पर सभासदों को बोलने का अधिकार है। प्रधान से या कार्यकारिणी समिति से प्रश्न पूछ सकने का अधिकार सभासद् को है। तथापि भाषण करना अथवा बोलना आदि तभी हो सकता है जब सभा के सामने निर्णय के लिए कोई प्रश्न विद्यमान हो।

सभा के कार्यक्रम के बारे में अथवा अन्य प्रकार के स्पष्टीकरण विधान-सभा में सरकार की ओर से किये जाते हैं तथा नीति प्रकट की जाती है। इस स्पष्टीकरण के ऊपर अथवा निवेदन के ऊपर बहस नहीं हो सकती। उसके ऊपर यदि बहस करनी ही हो तो नियमानुसार उसकी सूचना देकर एक प्रस्ताव सामने लाना चाहिए, फिर चाहे वह प्रस्ताव अविश्वास का हो अथवा कार्य को स्थगित करने के बारे में हो। जब तक सभा के सामने कोई प्रस्ताव किसी प्रश्न के रूप में नहीं आ जाता तब तक उसके ऊपर चर्चा नहीं हो सकती। यही नियम अन्य संस्थाओं की सभाओं के लिए भी लागू है। कार्यकारिणी समिति द्वारा किये गए स्पष्टीकरण के बाद किसी भी प्रश्न की चर्चा करना वर्जित है। उसके बारे में यदि कोई निश्चित प्रस्ताव आ जाय तो उसके ऊपर चर्चा करना ठीक

रहता है। इसी प्रकार अधिकार का त्याग करते समय भी स्पष्टीकरण किये जाते हैं। उसके ऊपर भी चर्चा वर्जित है। किसी ने अधिकार का त्याग किया, त्याग-पत्र दिया अथवा स्पष्टीकरण किया तो उस समय अधिकारारूढ़ जो लोग हैं, उन्हें स्पष्टीकरण का अवसर मिलना उचित है। परन्तु उस पर सभा में चर्चा नहीं होनी चाहिए। इसी प्रकार चर्चा में अनेक बार तत्काल स्पष्टीकरण करना सम्भव नहीं। ऐसे मौकों पर पीछे से स्पष्टीकरण करने का अवसर दिया जाना चाहिए। परन्तु स्पष्टीकरण केवल स्पष्टीकरण ही हो। उसका स्वरूप एक नवीन वाद-विवाद को आरम्भ करने वाला हो। इस प्रकार के स्पष्टीकरण के ऊपर बहस करना ठीक नहीं।

अध्यक्ष के निर्णय पर अप्रसन्न होकर कोई व्यक्ति अथवा कोई पक्ष सभा-भवन को छोड़कर चला जाय, अथवा उसके इस कार्य के ऊपर सभा-भवन में आलोचना की गई हो, तो पीछे से उसे अपने सम्बन्ध में अपना स्पष्टीकरण उपस्थित करने का अवसर मिलना चाहिए। उचित अवसर पर और उचित परिस्थिति में अपने व्यवहार के बारे में स्पष्टीकरण करने का मौका, अध्यक्ष को चाहिए कि व्यक्तिशः प्रत्येक सभासद् को दे तथापि दिये गए स्पष्टीकरण के ऊपर बहस नहीं हो सकती। जब सभा के सामने प्रश्न होगा तभी बहस हो सकेगी।

बहस एक ही प्रश्न पर होती है—एक समय में एक ही प्रश्न सभा के सामने बहस के लिए आ सकता है। एक से अधिक प्रश्नों के ऊपर बहस नहीं हो सकती। जब किसी प्रस्ताव को स्थगित करने के लिए कोई सुझाव सभा के सामने आता है, तो वह स्थगित करने का सुझाव सभा के सामने एक प्रश्न हो जाता है और उस प्रश्न पर चर्चा हो सकती है। चर्चा को स्थगित करने का सुझाव पेश किया जाय तो उस समय चर्चा को स्थगित करना, सभा के सामने एक प्रश्न बन जायगा। प्रस्ताव के विषय की उपेक्षा करने वाला संशोधन यदि सभा में आता है तो वह भी सभा के सामने एक प्रश्न बन जाता है। जो प्रश्न प्रत्यक्ष रूप से सामने आया है उसके ऊपर ही चर्चा होगी। जब तक उसका कोई एक फैसला नहीं हो जाता तब तक पहले के प्रश्न के ऊपर एक साथ चर्चा नहीं हो सकती। प्रस्ताव तथा तत्सम्बन्धी स्थगित करने की सूचना, इन दोनों प्रश्नों के ऊपर एक साथ चर्चा नहीं हो सकती। एक समय एक ही प्रश्न पर चर्चा होती है और उस पर निर्णय किया जाता है। उसके बाद जो प्रश्न सभा के सामने आय उस पर चर्चा होगी और उस पर निर्णय होगा। यह चर्चा का एक क्रम है। इस क्रम को बनाए रखने से चर्चा

सुलभ और व्यवस्थित होती है।

निर्णीत प्रश्न के ऊपर चर्चा—जिस विषय का निर्णय सभा एक बार कर चुकी है उसे सभा के सामने पुनः प्रस्तुत करना ठीक नहीं है। सभा के निर्णय का अर्थ है, सभा द्वारा पूर्ण विचार करने के बाद दी गई सम्मति। इस सम्मति का कुछ-न-कुछ मूल्य और कुछ प्रतिष्ठा होनी चाहिए। उसी के साथ यह भी मानकर चलें कि सभा का निर्णय कोई वज्र-लेख नहीं है अथवा ऐसा कोई कानून नहीं है जिसके अन्दर कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। यथार्थ में कुछ समय तक तो एक बार का किया हुआ निर्णय स्थिर रहना ही चाहिए। यदि सभा ने सवेरे एक विषय के ऊपर निर्णय किया और तत्काल सायंकाल को उस निर्णय में परिवर्तन कर डाला तो उसमें सभासदों की कोई कीर्ति नहीं है। कम-से-कम उस सभा के अन्दर तो उस निर्णय में परिवर्तन नहीं होना चाहिए। सभा कार्य-क्रम में दिये हुए विषय की समाप्ति तक चालू रहती है। वह यदि अनेक बार स्थगित होती रही तो यह नहीं समझना चाहिए कि वह समाप्त ही हो गई है। अतः एक बार किये गए निर्णय को उसी सभा में बदलना वांछनीय नहीं। विधान-सभाओं में ऐसा नियम है कि जिस विषय पर एक बार निर्णय हो जाता है उस विषय पर, उसी अधिवेशन में, प्रश्न उपस्थित करके पुनः चर्चा नहीं की जा सकती। इसके लिए कुछ अपवाद हैं तथापि सामान्य नियम वही है जो पहले बताया गया है। पहले से स्थानिक स्वायत्त संस्थाओं में ऐसा नियम रहा है, कि जिस विषय का निर्णय सभा एक बार कर चुकी, तीन महीने तक उस निर्णय में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। विषय का स्वरूप तत्त्वतः वही हो तो प्रस्ताव की भाषा बदलने से विषय नहीं बदल जाता। 'नगरपालिका प्रकाशन, अधिकारी की नियुक्ति करे और उसे ६० रुपये वेतन दे' इस प्रस्ताव के गिर जाने पर 'अमुक स्थान पर काम करने वाला व्यक्ति प्रकाशन का काम करे और उसे कार्याधिक्य के कारण वेतन स्वरूप ४० रुपये दिये जायँ और उचित भत्ता भी दिया जाय" इस प्रकार का प्रस्ताव लाना गैर-कानूनी है। कारण, तत्त्वतः पहला और यह प्रस्ताव एक ही है। "अमुक स्थान पर काम करने वाला व्यक्ति प्रकाशन का काम करे" यह प्रस्ताव ठीक है। यहाँ निर्णय में प्रकाशन अधिकारी न रखें और उस काम में खर्च न किया जाय ऐसा निश्चय हो चुका है, प्रकाशन न किया जाय यह निर्णय का अर्थ नहीं है। अतः उपर्युक्त प्रस्ताव आ सकता है।

अनेक बार नया प्रस्ताव उसी विषय पर होता है परन्तु उसकी भाषा ऐसी रखी जाती है कि उसके लिए अनुमति नहीं रोकी जा सकती। अनेक बार

नये प्रस्ताव द्वारा पहले का निर्णय अर्थ हीन हो जाता है। "संस्था का आर्थिक निरीक्षण करने के लिए एक समिति की नियुक्ति की जाय और उस पर उचित निर्णय किया जाय" इस प्रस्ताव के पास हो चुकने के बाद "संस्था की आर्थिक परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए ऐसी कोई योजना हाथ में न ली जाय जिसके ऊपर खर्च करना आवश्यक हो" इस प्रस्ताव के आने पर उसके लिए अनुमति को नहीं रोका जा सकता। और यदि वह पास हो जाता है तो पहले का किया हुआ निर्णय निरर्थक हो जाता है। जो विषय, प्रस्ताव द्वारा स्वीकृत या अस्वीकृत करना निश्चित हो चुका है वही विषय संशोधन के रूप में फिर उपस्थित नहीं किया जा सकता। "मार्ग-निर्माण समिति में श्री दीर्घसूत्रे को भी एक सभासद् के रूप में लिया जाना चाहिए"—इस प्रस्ताव के अस्वीकृत हो जाने के बाद, आगे चलकर "मार्ग-निर्माण समिति ने अब तक अपना विवरण उपस्थित नहीं किया अतः उससे प्रार्थना है कि वह यथा-शक्ति शीघ्र प्रारम्भिक स्वरूप का विवरण उपस्थित करे"—ऐसा प्रस्ताव सभा के सामने आने पर उसमें यदि "जिसमें श्री दीर्घसूत्रे हैं", यह वाक्य "समिति ने"—इसके आगे डाला जाय, ऐसे संशोधन उपस्थित करने पर वहाँ लागू नहीं हो सकता। कारण श्री दीर्घसूत्रे समिति में न लिये जायें, यह निर्णय प्रस्ताव अस्वीकृत करके पहले सभा पहले ही कर चुकी है। तात्पर्य यह है कि जो विषय का प्रश्न किसी भी स्वरूप में सभा के सामने बहस के लिए आकर निर्णीत हो चुका है, वह फिर किसी भी रूप में उसी सभा में या अधिवेशन में एक निश्चित काल तक बहस के लिए नहीं लिया जा सकता। मगर उस विषय पर चर्चा होने के बाद निर्णय होना चाहिए और यह ज़रूरी है।

प्रस्ताव सभा के सामने उपस्थित किया गया या संशोधन उपस्थित किया गया और उसे नियमानुसार अनुमोदन मिला तो संशोधन रद हो जाता है या गिर जाता है। इस स्थिति में उसके अन्तर्गत विषय का निर्णय हो गया—ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार चर्चा के लिए प्रस्ताव स्वीकार किया अथवा कोई संशोधन स्वीकार किया गया, और उसके ऊपर बहस हुई तथा बहस होने के बाद सभा ने उसे वापस लेने की अनुमति दी, उसके अनुसार वह वापस ले लिया गया, तो उसका अन्तर्गत विषय तय हो गया या सभा ने उस पर अपना निर्णय दे दिया—यह नहीं कहा जा सकता। निर्णय का अर्थ यह होता है कि वह विषय सभा के सामने प्रस्ताव के रूप में उपस्थित हुआ और उसके ऊपर सभा ने अपना मत पूरी तरह से व्यक्त कर दिया। सभा के सामने प्रस्ताव बहस के लिए आया हो, और बहस भी हो परन्तु सभा का मत जब तक उसके ऊपर

नहीं दिया जाता, तब तक वह निर्णीत हुआ नहीं समझा जायगा। विषय को स्थगित करने के कारण अथवा अन्य किसी कारण, उस पर चर्चा स्थगित हुई या उपेक्षित कर दी गई, तो इतने से विषय का निर्णय हो गया—ऐसा नहीं कहा जा सकता। सभा ने उस प्रस्ताव को अनिर्णीत छोड़ दिया, यह इसका अर्थ हुआ। इसके विरुद्ध सभा का मत क्या है, यह निष्कर्ष निकालना गैर-कानूनी है।

लिया हुआ निर्णय उसी सभा में, उसी अधिवेशन में या किसी निर्धारित काल के अन्दर रद नहीं किया जा सकता। इसलिए इस दृष्टि से लाया हुआ प्रस्ताव या संशोधन, बहस के लिए स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसका अर्थ यह नहीं है कि निर्णय के अनुसार या आनुषंगिक रूप में प्रश्न पर चर्चा नहीं की जा सकती। समिति में प्रस्ताव स्वीकार हो जाने के बाद उसमें कौन रहे, इस विषय का प्रस्ताव लाना उचित है। योजना को स्वीकार करने के बाद उसके सम्बन्ध में होने वाले व्यय के बारे में प्रस्ताव उपस्थित करना उचित है। पहले के निर्णय के विरुद्ध इस प्रकार का प्रस्ताव चर्चा के लिए स्वीकार नहीं किया जा सकता। पहले के निर्णय के अनुसार उसको प्रभावशाली या व्यापक बनाने की दृष्टि से यथार्थ रूप में प्रस्ताव या संशोधन यदि नियमानुसार आ गया हो तो वह प्रसंगानुकूल और कानूनी होता है। इस प्रकार कहीं-कहीं किये गए निर्णय को उसी अधिवेशन में या किसी निश्चित काल के अन्दर बदल लेने के सम्बन्ध में भी नियम बने रहते हैं। नियम के अनुसार इस प्रकार का प्रस्ताव यदि उपस्थित हुआ और सभा के सामने प्रश्न के रूप में आया तो उसके ऊपर बहस हो सकती है। संस्था के हित की दृष्टि से उस सभा में दिया गया निर्णय रद करना यदि अभीष्ट हो या प्रतिष्ठा के अनुरूप हो; तो सभा को उसे बदलने का अधिकार है। हुसंख्यक सभासद् यदि अपने नाम की तालिका भेजकर किये गए निर्णय को रद समझें और इस पर किसी प्रस्ताव की सूचना यदि अध्यक्ष के पास भेजें, तो अध्यक्ष को चाहिए कि वह उस पर विचार करे। जहाँ इस तरह का नियम न हो तो अध्यक्ष संस्था का हित और संस्था की प्रतिष्ठा को ध्यान में रखकर अपना निर्णय दे। यदि अनुचित प्रतीत हो तो अनुमति नहीं देनी चाहिए जहाँ कहीं नियम हो वहाँ नियम के अनुसार निर्णय दिया जाना ही उचित है। बहुत-सी स्थानिक संस्थाओं में नोटिस द्वारा अस्वीकृत किये गए प्रस्ताव को रद किया या सकता है। रद करके उसकी जगह दूसरा प्रस्ताव पास हो सकता है। बहुसंख्यक सभासदों के हस्ताक्षरों की सूची देकर किसी प्रस्ताव को रद करना हो तो वह प्रस्ताव तथा उसको रद करने के

लिए उपस्थित किया गया दूसरा प्रस्ताव, दोनों उस सूची में आने चाहिएँ। नियम के अनुसार सूची और नोटिस, नियम के अनुसार विशेष अथवा साधारण रूप में आयोजित सभा में, निर्णय के परिवर्तन करने वाले अथवा रद करने वाले प्रस्ताव, सभा के सामने प्रश्न के रूप में उपस्थित होते हैं अथवा उसके ऊपर चर्चा की जा सकती है।

एक ही बार बोलने का अधिकार—सभा के सामने एक ही प्रश्न चर्चा के लिए उपस्थित रहता है तथा उसके सम्बन्ध में होने वाले वाद-विवाद के के अन्दर वक्ता को एक ही बार बोलने का अधिकार है। चर्चा में यदि यह मर्यादा न हो तो कुछ लोग बार-बार बोलेंगे। चर्चा को अभीष्ट स्वरूप प्राप्त हो और उसमें अनुशासन अथवा व्यवस्था बनी रहे, इस दृष्टि से सभासद् को सभा के सामने विद्यमान प्रस्ताव के बारे में एक ही बार बोलने का अवसर दिया जाना वांछनीय है। इस व्यवस्था द्वारा कइयों को अवसर प्राप्त होगा और अनेक दृष्टिकोण सभा के सामने आ सकेंगे। ऐसी परम्परा में अध्यक्ष नवीन सभासद् को पहले बोलने का मौका देता है। इसी प्रकार यदि स्थगित सभा दूसरी बार शुरू हो, जिस व्यक्ति का भाषण पिछली सभा में अपूर्ण रह गया और वह उस समय की चर्चा को आरम्भ करने के लिए उपस्थित हो, तो उसे अपना भाषण चालू करने का अधिकार रहता है। मगर उस सदस्य को वहाँ उपस्थित होना चाहिए। अध्यक्ष ने यदि दूसरे का नाम लिया और उसने भाषण देना आरम्भ भी कर दिया तो अधिकार नष्ट हो जाता है, और उसके पश्चात् उसे चर्चा में भाग ग्रहण करने का अधिकार नहीं रह जाता। ऐसी अवस्था में यदि वह भाषण देगा तो यह उसका अन्य भाषण माना जायगा। कुछ सदस्य ऐसे भी होते हैं जो यह कहकर कि मुझे संशोधन का नोटिस पेश करना है, मुख्य प्रश्न के ऊपर भाषण देते हैं, और उस पर अपना संशोधन उपस्थित किये बगैर ही अपना भाषण समाप्त कर डालते हैं। कुछ देर तक चर्चा हो जाने के बाद फिर वे लोग अपना संशोधन उपस्थित करने के लिए खड़े होते हैं। इस प्रकार दूसरी बार भाषण करने का मौका हासिल कर लेते हैं। ऐसा करना ठीक नहीं। संशोधन को उपस्थित करने वाले को एक ही मौका दिया जाना चाहिए। और उतना ही मौका उसे मिलना चाहिए। संशोधन उपस्थित करते समय जो कुछ बोलना हो वह बोले। अध्यक्ष सावधान रहकर उसी प्रश्न पर दो बार बोलने के उसके प्रयत्न को नियमानुसार विफल कर दे।

किन्हीं प्रसंगों में अध्यक्ष सभासद् को सभा की अनुमति द्वारा दूसरी बार बोलने का अवसर दे सकता है; परन्तु वैसा मौका आये तब। विधान-सभा में

यदि सरकारी पक्ष और प्रधान-मंडल का पक्ष चर्चा के आरम्भ में लोगों को विदित हो जाय तो चर्चा में अधिक सहूलियत होती है। बहुत मर्तबा वह पक्ष उसी समय अथवा कुछ देर तक चर्चा हो चुकने के बाद सभा के सामने उपस्थित किया जाता है, और उसके अनन्तर चर्चा में उपस्थित हुए मुद्दों के सम्बन्ध में सरकार की ओर से खुलासा किया जाना अभीष्ट और आवश्यक होता है। इस परिस्थिति में सरकार के अथवा प्रधान मंडल के पक्ष को उपस्थित करने वाले सभासदों को पुनः बोलने का मौका देना युक्त, तथा सांगोपांग चर्चा की दृष्टि से उचित प्रतीत होता है। अन्य संस्थाओं में कार्यकारिणी-समिति को तथा संयोजक-समिति को भी समान परिस्थितियों के उपस्थित हो जाने पर इस प्रकार के मौकों का दिया जाना अनुचित नहीं। नगरपालिका में या लोकल बोर्ड में स्थायी-समिति और कार्यकारिणी-समिति का काम एक-जैसा ही होता है। मुख्य सभा में उनके द्वारा उपस्थित किये गए प्रस्ताव अधिकारी पक्ष की ओर से उपस्थित किये हुए समझे जाते हैं। इस दृष्टि से उनको भी उपरोक्त रीति से यथा प्रसंग अवसर प्रदान करने में अध्यक्ष को आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

स्पष्टीकरण—वाद-विवाद में कई बार व्यक्तिगत आक्षेप किये जाते हैं और भाषण में मूल अभिप्राय की अवहेलना की जाती है। परन्तु निराकरण का अवसर उस व्यक्ति को अवश्य मिलना चाहिए, जिसके बारे में यह चर्चा हो रही हो। वह यदि पहले बोल चुका है और उसे फिर बोलने का अधिकार नहीं है, लेकिन इस व्यवस्था से उसके साथ अन्याय होता हो तो, उसे स्पष्टीकरण करने का समय देना न्यायोचित है। अनेक सभासदों का यह प्रयत्न होता है कि उनको यथा सम्भव अन्त में भाषण करने का समय प्राप्त हो। अपने भाषण के अन्त में प्रस्तुत प्रश्न पर मत-विभाजन किया जाय। लेकिन जो सभासद् पहले भाषण कर चुका हो उसके भाषण की उपेक्षा न हो तथा अन्य जिस सभासद् ने पीछे से भाषण किया है, वह पहले किये जा चुके भाषणों का विपर्यास न करे—अध्यक्ष को इस बात की सावधानी रखनी चाहिए। किसी-न-किसी को तो पहले बोलना ही होता है। पहले भाषण करने का मौका प्राप्त करने के लिए भी स्पर्धा होती है। पहले में, खड़े होकर अपने उद्देश्यों के सिद्ध करने का प्रयत्न रहता है, तो दूसरे में, अपने ही स्थान पर मजबूती के साथ बैठकर अपने उद्देश्य को सिद्ध करने की कोशिश होती है।

अनेक बार स्पर्धा के कारण कोई भी सभासद् भाषण करने के लिए खड़ा नहीं होता, इस प्रकार के भी मजेदार प्रसंग अनुभव में आते हैं। तात्पर्य यह है कि जिससे अन्याय हुआ है, उस सभासद् को स्पष्टीकरण करने के लिए अवसर

मिलना चाहिए। पर इस मौके का यह अभिप्राय नहीं कि फिर आदि से लेकर अन्त तक भाषण ही किया जाय। स्पष्टीकरण का अर्थ है, जितने अंश में गलत बयानी हुई है उतने ही अंश तक वह स्पष्टीकरण मर्यादित रहे। उसके अन्दर वस्तुस्थिति का कथन हो। स्पष्टीकरण का अभिप्राय नवीन वाद-विवाद का आरम्भ नहीं, और ऐसा होना भी नहीं चाहिए कि जिससे फिर अन्य सभासद् को स्पष्टीकरण करने की आवश्यकता प्रतीत हो। स्पष्टीकरण पर स्पष्टीकरण यदि होने लग जायँ तो इससे गड़बड़ पैदा होती है, स्पष्टीकरण के ऊपर ही चर्चा होने लग जाती है और मुख्य प्रश्न धरा रह जाता है। अतः अध्यक्ष उतने ही स्पष्टीकरण की अनुमति दे जितना आवश्यक हो। उसे चाहिए कि वह सभासद् को स्पष्टीकरण के अवसर का अनुचित लाभ न उठाने दे।

स्पष्टीकरण कब किया जाय—जिस भाषण से स्पष्टीकरण की आवश्यकता प्रतीत हो, उस भाषण के समाप्त होते ही स्पष्टीकरण करने का इच्छुक सभासद् उठ कर खड़ा हो जाय और अध्यक्ष के सामने यह कहे कि मैं स्पष्टीकरण करना चाहता हूँ और अध्यक्ष जब अनुमति दे तब उसे स्पष्टीकरण करना चाहिए। यदि अनेक बार स्पष्टीकरण करने वाला सभासद् उठकर खड़ा हो जाता है परन्तु भाषण कर्ता उसे स्पष्टीकरण का मौका नहीं देता, उस समय स्पष्टीकरण की इच्छा वाले सभासद् को नीचे बैठ जाना चाहिए और भाषण के समाप्त होते ही उठकर खड़ा होना चाहिए। यदि बोलने वाला सदस्य मौका दे तो अध्यक्ष को चाहिए कि वह स्पष्टीकरण के लिए मौका दे। स्पष्टीकरण के समाप्त होते ही बोलने वाले सदस्य को अपना भाषण आरम्भ करने का अधिकार है।

उत्तर देने का अधिकार—उत्तर देने के अधिकार का अर्थ है—उस प्रश्न पर दूसरा भाषण करने का अधिकार चाहना। प्रस्ताव उपस्थित करने वाले को यह अधिकार है। इसी प्रकार चर्चा के आरम्भ होने से पहले सभा को स्थगित करने का प्रस्ताव उपस्थित करने वाले को यह अधिकार है। सभा के आरम्भ होने से ठीक पहले यदि यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया, तो यह माना जाता है कि इसके अन्दर कुछ तथ्य है और उस समय उत्तर देने का अधिकार प्रदान करना उचित है। संशोधन उपस्थित करने वाले को यह अधिकार नहीं। किन्हीं स्थानिक स्वायत्त संस्थाओं के नियमों में संशोधन उपस्थित करने वाले को यह अधिकार दिया हुआ है। इसके कारण चर्चा में निष्कारण विलम्ब होता है। यह अधिकार प्रस्ताव उपस्थित करने वाले को ही रहना चाहिए। दो बार बोलने का अवसर प्राप्त हो, इस आशय से अनेक संशोधन उपस्थित किये जाते हैं। ऐसा भी अनुभव है कि विधान-सभाओं में कई बार संशोधन

इस लिए उपस्थित किये जाते हैं, कि एक बार तो भाषण देने का अवसर प्राप्त हो। विधान-सभाओं में संशोधन उपस्थित करने वाले को उत्तर देने का अधिकार नहीं रहता। चर्चा के आरम्भ हो जाने के पश्चात् चर्चा अथवा सभा के स्थगितीकरण का प्रस्ताव लाने वाले व्यक्ति को यह अधिकार नहीं है। उत्तर देने के अधिकार का अर्थ यह है कि जिस विषय की विशेष चर्चा होती है, उसके ऊपर प्रस्ताव उपस्थित करने वाले को अपना कथन, उपस्थित मुद्दों को ध्यान में रखकर करने का अवसर देना। उत्तर देने का अभिप्राय यह नहीं है कि जो कहा जा चुका है, उसी को फिर दोहराया जाय। आक्षेप या आलोचना का उत्तर देना चाहिए नए मुद्दे उपस्थित हुए हों तो उन पर अपना मत व्यक्त करना चाहिए परन्तु इससे नवीन मुद्दे उपस्थित करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता। अन्त में भाषण करने का मौका मिलता है, अतः कुछ नई बातें कहकर और उसके ऊपर चर्चा करने का अवसर न प्रदान करते हुए मत प्राप्त करना अनुचित और अन्याय्य है। चर्चा के आरम्भ हो जाने के पश्चात बार-बार आने वाले स्थगितीकरण के प्रस्तावों के ऊपर वाद-विवाद किया जाना या लम्बे चौड़े भाषणों का होना ठीक नहीं है। इसलिए इस प्रकार का प्रस्ताव लाने वाले को उत्तर देने का अधिकार देना उचित नहीं। इस प्रकार के प्रस्तावों के ऊपर होने वाली चर्चाओं में विशेष मुद्दे भी उपस्थित नहीं होते, इस दृष्टि से भी उत्तर देने का अधिकार न दिया जाना ही ठीक है। इसी प्रकार औपचारिक स्वरूप के काम के बारे में आने वाले प्रस्तावों के सम्बन्ध में, उनको उपस्थित करने वाले को उत्तर देने का अधिकार नहीं है। पूर्व प्रश्न (प्रीवियस क्वेश्चन) उपस्थित करने वाले को भी उत्तर देने का अधिकार नहीं है। पूर्व प्रश्न किसे कहते हैं इसका विचार हमने आगे किया है।

प्रस्तावक और अनुमोदक लोग बहुत बार केवल प्रस्ताव ही उपस्थित करते हैं या उसका अनुमोदन करते हैं और भाषण करने का अधिकार सुरक्षित रखते हैं। वस्तुतः एक बार खड़े होकर प्रस्ताव उपस्थित किया या उसका अनुमोदन किया कि वह भाषण ही हो जाता है। प्रस्तावक के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि पहले उसने भाषण किया हो या भाषण का अपना अधिकार सुरक्षित रखा हो, तो भी उसे उत्तर देने का अधिकार है। इसलिए यह प्रश्न उपस्थित नहीं होता। अनुमोदक को दो बार भाषण करने का अधिकार नहीं है, तथापि यदि उसने इतना ही कहा हो कि 'मैं अनुमोदन करता हूँ' तो इसे भाषण का नाम देना थोड़ा-सा अन्याय-जनक प्रतीत होता है। उपयुक्त रीति से अनुमोदन केवल औपचारिक ही हो तो अनुमोदक को अपना भाषण

सुरक्षित रखने का अधिकार होना चाहिए। आगे चलकर उसे भाषण करने का अधिकार दिया जाय। यह वांछनीय है और ऐसी प्रथा अब सर्व सम्मत हो चुकी है। जहाँ प्रस्ताव के लिए अनुमोदन की कोई आवश्यकता नहीं, वहाँ यह प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। जब अनुमोदक ही नहीं है तब उसके भाषण को सुरक्षित रखने का प्रसंग ही नहीं उत्पन्न होता। काम-काज के औपचारिक प्रस्ताव के ऊपर भाषण सुरक्षित रखने का अथवा उत्तर देने का अधिकार नहीं है। इसलिए कामन्स-सभा में इस तरह का प्रस्ताव सभासद् खड़े होकर उपस्थित नहीं करता, प्रत्युत बहुत बार वह अपने स्थान पर बैठकर ही अपनी टोपी ऊपर करता है। उसका भाव यह है कि उसके नाम पर आया हुआ अथवा उसके नाम से किया जाने वाला प्रस्ताव उसने यथा रीति उपस्थित कर दिया होता है। इस युक्ति के कारण उसे आगे चलकर चर्चा में भाषण करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। कॉमन्स-सभा में ऐसा नियम है कि खड़ा होकर सभा के सामने उपस्थित प्रश्न के उत्तर में यदि एक भी वाक्य किसी ने उच्चरित किया या केवल प्रश्न ही उपस्थित किया, तो यह भी भाषण हो जाता है। केवल 'मैं अनुमोदन करता हूँ' ऐसा किसी ने खड़ा होकर कहा तो वह भी भाषण है। और यही वाक्य बैठकर कहने का अधिकार नहीं है। कारण, खड़े होकर बोलने का नियम है। इसलिए बहुत बार अनुमोदक इस टोपी की युक्ति का अनुमोदन करता है, उठता नहीं, बोलता नहीं, तथा आगे चलकर भाषण करता है। इस नियम पर हमें यह अधिक उत्तम प्रतीत होता है कि टोपी उठाने की प्रथा की अपेक्षा, भाषण को सुरक्षित रखने का नियमानुसार अधिकार दिया जाय।

संशोधन उपस्थित करने वाले को फिर उत्तर देने का अधिकार नहीं है। इसी प्रकार भाषण सुरक्षित करने का भी अधिकार नहीं। एक बार संशोधन उपस्थित करते समय बोल चुकने के बाद फिर बोलने का अधिकार नहीं। संशोधन के अनुमोदक के लिए भी भाषण को सुरक्षित रखने, उत्तर देने का अथवा चर्चा में भाषण करने का अधिकार नहीं। जो कुछ बोलना हो, वह संशोधन उपस्थित करते समय ही बोलना चाहिए। यदि सभी व्यक्तियों को बोलने का अवसर दिया जाय, और वह भी अनेक बार बोलने का अवसर दिया जाय; अथवा भाषण सुरक्षित रखने का अधिकार दिया जाय तो चर्चा की मर्यादा ही सुरक्षित न रह सकेगी और इस प्रकार वास्तविक चर्चा नहीं हो पायगी। मत प्रकट नहीं होगा और उलटे पैंतरेबाजी ही दिखाई देगी। सभा की अनुमति से संशोधक ने अपना संशोधन वापिस ले लिया है, तो भी स्वयं उसको अथवा

अनुमोदक को उक्त चर्चा में भाषण करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता। वे एक बार भाषण कर चुके होते हैं। सभा स्थगित हुई और फिर आयोजित होकर उसी प्रश्न के ऊपर चर्चा शुरू हुई तो भी पुनः भाषण करने का अधिकार प्राप्त नहीं होगा।

नवीन प्रश्न—एक ही प्रस्ताव पर पुनः भाषण करने का अधिकार नहीं, इसका अर्थ उस ही चर्चा में नवीन प्रश्न सभा के सम्मुख उपस्थित होने पर भी बोलने का अधिकार नहीं, ऐसी बात नहीं। मुख्य प्रश्न के ऊपर चर्चा के चालू रहते समय सभा को स्थगित करने के प्रस्ताव के आने पर, सभा के सामने नवीन प्रश्न आया है, ऐसा माना जाता है। उस पर बोलने का अधिकार सबको है। मुख्य प्रश्न पर जिन सभासदों के भाषण हो चुके हैं, उनको भी यह अधिकार है। 'इस प्रश्न की चर्चा स्थगित की जाय' यह प्रस्ताव भी एक नया प्रश्न है। इसी प्रकार यदि संशोधन भी स्वतन्त्र प्रश्न के रूप में उपस्थित किया गया हो तो वह भी नवीन प्रश्न हो जाता है। प्रत्येक नवीन प्रश्न के ऊपर भाषण करने का सभासदों को अधिकार है। प्रत्येक भिन्न प्रश्न के ऊपर एक बार बोलने का अधिकार है। जिसने एक प्रश्न पर एक बार भाषण किया उसे उसी प्रश्न पर फिर भाषण करने का अधिकार नहीं। जिसने प्रश्न के ऊपर एक बार भाषण किया, संशोधन उपस्थित किया, उसका अनुमोदन किया और चर्चा को स्थगित करने का प्रस्ताव उपस्थित किया है, ऐसे व्यक्ति को पुनः संशोधन उपस्थित करने का अधिकार नहीं। सभा या चर्चा को स्थगित करने अथवा तत्सम्बन्धी प्रस्ताव भी उपस्थित करने का अधिकार नहीं। अन्य कोई इस रीति से सभा के सामने नवीन प्रश्न उपस्थित करे तो उस पर बोलने का उसे अधिकार है। जिसने प्रश्न के ऊपर संशोधन उपस्थित करते हुए भाषण किया, उसको पुनः संशोधन उपस्थित करने का अधिकार नहीं। परन्तु कोई संशोधन उपस्थित हो जाय तो उसके ऊपर बोलने का अधिकार है। क्योंकि वह नवीन प्रश्न हो जाता है। परन्तु संशोधन में जिस सीमा तक नवीन विषय होता है उस सीमा तक ही उसका भाषण मर्यादित रहना चाहिए। उसी प्रकार जिसने प्रश्न के ऊपर संशोधन उपस्थित किया हो अथवा उसका अनुमोदन किया हो, उसे उसी प्रश्न के ऊपर दूसरा संशोधन उपस्थित करने का अथवा उसका अनुमोदन करने का अधिकार नहीं है। परन्तु अन्य किसी ने कोई संशोधन उपस्थित किया हो और वह नवीन विषय हो, तो उसको उस पर बोलने का अधिकार है।

किस संशोधन द्वारा चर्चा में नवीन विषय का निर्माण होता है, सभा के सामने नवीन प्रश्न उपस्थित होता है, यह अध्यक्ष को निर्धारित करना होता है।

संशोधन द्वारा यदि नवीन प्रश्न न उपस्थित होता हो तो पुनः भाषण करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार जिसने चर्चा अथवा सभा को स्थगित करने का प्रस्ताव एक बार उपस्थित किया है उसे दूसरी बार उस प्रस्ताव को उपस्थित करने का अधिकार नहीं। यदि किसी दूसरे ने उसे उपस्थित किया हो तो उसके ऊपर बोलने का अधिकार उसे प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार की व्यवस्था कॉमन्स-सभा के नियम के अन्दर भी विद्यमान है।

तथापि स्थगित-प्रस्ताव, अनेक संस्थाओं में उसी सभासद् को नियमानुसार पुनः पुनः उपस्थित करने का अधिकार प्राप्त है। सभा स्थगितीकरण के प्रस्ताव के ऊपर भाषण नहीं करना चाहिए, केवल उसको उपस्थित ही करना चाहिए। इस प्रकार का नियम भी अनेक स्थानिक स्वायत्त संस्थाओं में है। एक बार सभा को स्थगित करने का प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि पुनः उस सभासद् को उसे उपस्थित करने का अधिकार नहीं होता। इसके पीछे जो सन्निहित तत्त्व है वह यह है कि एक ही सभासद् को एक ही प्रश्न के ऊपर दो बार भाषण करने का अधिकार नहीं होता। उसे स्वयं अधिकार न हो परन्तु सभा के सामने अन्य व्यक्तियों ने स्थगितीकरण का प्रस्ताव उपस्थित किया हो तो, उसी विषय के ऊपर उसे पुनः भाषण करने का अधिकार प्राप्त होता है, यह भी सत्य है। उसे भाषण करने का अधिकार प्राप्त होता है, यह जानकर प्रत्येक स्थगितीकरण के प्रस्ताव के ऊपर भाषण की पाबन्दी लगा दी जाय, यह अभीष्ट नहीं। कम-से-कम चर्चा के आरम्भ होने से पहले ही जो प्रथम चर्चा अथवा सभा को स्थगित करने का प्रस्ताव आया है, उसके ऊपर भाषण करने का अथवा चर्चा करने का अधिकार रहना चाहिए। स्थगितीकरण के कारणों का विदित होना अभीष्ट रहता है। चर्चा के आरम्भ हो जाने के पश्चात् आने वाले स्थगितीकरण-विषयक प्रस्ताव के ऊपर चर्चा की दृष्टि से अधिक नियंत्रण का रहना उचित है। प्रत्येक आधे घंटे के बाद उपस्थित होने वाले स्थगितीकरण के प्रस्ताव के ऊपर चर्चा तथा भाषण को मना करना सर्वथा अनुचित नहीं। जो प्रस्ताव केवल काल-हरण करने वाले (डिलेटरी मोशन्स) हैं, जिनका उद्देश्य केवल यह है कि चर्चा की समाप्ति न हो, उसका कोई परिणाम न निकले, वह लम्बी खिंच जाय अथवा उसके रास्ते में इतनी रुकावटें पैदा हो जायँ कि वह स्थगित करनी पड़ जाय, तो इस प्रकार के प्रस्तावों का नियंत्रण होना अत्यंत आवश्यक है। इसलिए 'चर्चा को स्थगित किया जाय' या चर्चा के आरम्भ हो जाने के पश्चात् 'सभा को स्थगित किया जाय' आदि प्रस्ताव के ऊपर होने वाला भाषण प्रस्तावगत विषय की सीमा तक ही मर्यादित रहना चाहिए। "लोक-मत का अन्दाजा लगाने के लिए बिल को

अन्दर निन्दात्मक उल्लेख का विषय नहीं हो सकता और यदि कोई ऐसा उल्लेख करता है तो वह अनुचित है। अध्यक्ष ने 'सार्वजनिक सुरक्षा-बिल' (पब्लिक सेफ्टी बिल) के ऊपर जो निर्णय दिया है, वह नियम के मूल आशय के विरुद्ध है और सभा में नियम का अर्थ करने का अधिकार केवल अध्यक्ष को ही है, यह सही है तो भी उसके द्वारा किया हुआ अर्थ सरकार स्वीकार नहीं करेगी और वह चुप नहीं बैठेगी। सरकार ने नियम-परिवर्तन करने का निश्चय कर लिया है—इस प्रकार की घोषणा गवर्नर जनरल लार्ड हैलीफैक्स ने विधान-सभा के सामने भाषण करते समय की थी। उस पर तत्कालीन अध्यक्ष विट्ठल भाई पटेल ने यह आपत्ति उठाई कि यह उल्लेख अवैध है और विधान-सभा में इस प्रकार कहा जाना अध्यक्ष और विधान सभा का अपमान है, अध्यक्ष के अधिकार एवं स्वतन्त्रता का अतिक्रमण है।

गवर्नर जनरल ने पत्र द्वारा निम्नलिखित अर्थ का स्पष्टीकरण किया—"अध्यक्ष के निर्णय के ऊपर टीका-टिप्पणी करना और उसके सम्बन्ध में विरोधात्मक वक्तव्य देना यह अनुचित है, यह तथ्य गवर्नर जनरल को मान्य है और उसके भाषण का इस प्रकार का अर्थ किया जाय, इस सम्बन्ध में उसे खेद प्रतीत होता है। अध्यक्ष, सभा के नियम का अर्थ करने वाला, व्यवस्था बनाए रखने वाला एक-मात्र अधिकारी है, यह अध्यक्ष का कथन गवर्नर जनरल को मान्य है।" अध्यक्ष यदि अनुशासन के विरुद्ध व्यवहार करेगा तो नियम के अनुसार सभा अपना अधिकार उपयोग में लायगी अन्यथा वह सभा की पद्धति के सम्बन्ध में, नियम के सम्बन्ध में, एक-मात्र अधिकारी है और उसके निर्णय के ऊपर वाद-विवाद न हो सकेगा। अध्यक्ष के निर्णय के ऊपर यदि तत्काल चर्चा होने लग जाय और सभा के बहुमत द्वारा वह रद्द होने लगे तो अनर्थ एवं अव्यवस्था उत्पन्न हो जायगी। बहुमत के बल पर केवल प्रस्ताव ही पेश नहीं किया जा सकता प्रत्युत कौन बोले, कितना बोले, क्या बोले आदि सम्बन्धी सभी निर्णय बहुमत के द्वारा ही होंगे। अल्प मत वालों के ऊपर अन्याय होगा और युक्तियुक्त, सांगोपांग चर्चा का होना अशक्य हो जायगा। विभिन्न मतों का आविष्कार होगा और जो मत सभा बनाती है वह मत नहीं बन सकेगा, केवल एक पक्षीय चर्चा होकर निर्णय हो जायगा। सभा द्वारा उचित रीति से विचार-विनिमय किये जाने के पश्चात् निष्पन्न होने वाला वह निर्णय नहीं रहेगा। संक्षेपतः सभा का और चर्चा का मुख्य उद्देश्य विफल हो जायगा। अतएव सबको न्याय-प्राप्त होने की दृष्टि से, सभा के कामों में व्यवस्था तथा समाधान बनाए रखने के लिए अध्यक्ष को सभा पर नियन्त्रण एवं संचालन

सम्बन्धी अन्तिम निर्णय का अधिकार रहना उचित और आवश्यक है। एतद्-विषयक उसका निर्णय अन्तिम स्वरूप का है, ऐसा समझकर सभा को उस परिस्थिति में उसे मान लेना चाहिए।

कागज-पत्रों में उल्लेख—भाषण के सम्बन्ध में हम ऊपर जो मर्यादाएँ उल्लिखित कर आए हैं वे ही सभा की चर्चा के लिए भी लागू होती हैं। भाषणों में जो अवतरण अथवा कागज-पत्रों के अन्दर आए हुए उल्लेख हों, वे ग्रंथ अथवा कागज-पत्र सबके लिए उपलब्ध होने चाहिएँ। जो प्रकाशित ग्रंथ हैं उनके सम्बन्ध में तो प्रश्न ही नहीं। परन्तु अप्रकाशित अथवा गैर-कानूनी तौर से प्रकाशित हुए ग्रंथ और रिपोर्ट इत्यादि से अवतरणों को पढ़कर सुनाना चर्चा की दृष्टि से अनुचित है। जो साधन-सामग्री एक सभासद् अर्जित कर सकता है, वह प्रत्येक को उपलब्ध हो सके, ऐसा अवसर सबको मिलना चाहिए। इसी प्रकार निजी पत्र अथवा दस्तावेज आदि में से यदि कुछ पढ़कर सुनाना है तो वे कागज-पत्र सभा के सामने पढ़ने वाले के द्वारा रखे जाने चाहिएँ। यदि गुप्त अथवा निजी कागज सभा के सामने उपस्थित न किये जायँ और उनके ऊपर अपना कोई मत आधारित करना हो, तो यह कार्य सभा के ऊपर एक प्रकार का अन्याय होगा। सभा के सामने कागज प्रस्तुत करके जोशो-खरोश के साथ पक्षपातपूर्वक मत-प्रतिपादन करना अथवा वक्तव्य देना हो, तो वह कागज सम्पूर्ण रूप में पढ़कर सभा के सामने पेश कर दिया जाय अथवा सभा के सामने रख दिया जाय। सभासद् को उसके भीतर का सारा प्रतिपाद्य विषय अवगत होना चाहिए। वह सही है या झूठ है इसकी परीक्षा करने का अवसर भी मिलना चाहिए। सभा का अर्थ है, निर्णय करने वाले न्यायालय के समान एक प्रकार का संविधान। अतएव न्यायालय में जिस प्रकार दाखिल न हुए कागज का उल्लेख नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार सभा में भी होना उचित है। विधान-सभाओं में इस नियम के लिए कुछ मर्यादाएँ होती हैं।

जो कागज-पत्र 'सार्वजनिक हित' की दृष्टि से सभा के सामने उपस्थित करने के लिए अनुपयुक्त हैं, उनका यदि उल्लेख किया गया हो तो भी वे प्रस्तुत नहीं किये जाते। इसी प्रकार सरकार का गुप्त पत्र-व्यवहार, प्रत्येक विभाग के अन्तर्गत किया हुआ पत्र-व्यवहार, सरकार को उपलब्ध हुआ कानून-विशारदों का परामर्श तथा अन्य लिखित सलाह और मशविरे आदिकों का उल्लेख करके भी, सरकार उन्हें विधान-सभा के सामने उपस्थित नहीं करती। यही प्रथा ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में भी है। इसी प्रकार जो कागज-पत्र न्यायालय में भी दाखिल नहीं किए जा सकते उस प्रकार के वैयक्तिक कागज-पत्रों को विधान-

सभा के सामने दाखिल नहीं किया जा सकता। तथापि उनका उल्लेख किया जा सकता है और वह भले ही अपूर्ण रूप में हों तो भी अनेक बार वैसा करने दिया जाता है। न्याय की दृष्टि से चर्चा को पूरी-पूरी गति प्राप्त कराने के लिए उल्लिखित कागज़ सभा के सामने आने चाहिएँ। इसके लिए केवल एक ही अपवाद है और वह है—'सार्वजनिक हित की दृष्टि से वैसा करना योग्य नहीं है।' इसी प्रकार से सार्वजनिक हित की दृष्टि से एक-आध कागज़ यदि सभा के सामने न आने दिया जाय और वैसा करना वांछनीय हो, तो अध्यक्ष उसका उल्लेख करने दे और यह फैसला दे कि वह कागज़ पत्र सभा के सामने न लाया जाय। विधान-सभा के अतिरिक्त वस्तुतः कागज़ को सभा के सामने न आने देना उचित है अथवा नहीं, यह निर्धारित करने का अधिकार सभा के अध्यक्ष को है। यों ही सत्ताधिकारी पक्ष के द्वारा उल्लेख किया जाय और कागज़-पत्र सभा के सामने उपस्थित करना 'अवांछनीय' है, यह कहकर इन्कार कर दिया जाय तो यह उचित नहीं है।

रुकावटें—भाषण और वाद-विवाद की जो सीमा सर्व-सामान्य रूप से बाँधी गई है, उसकी मूल भूमिका चर्चा को बन्द करना नहीं प्रत्युत उसका उद्देश्य है, उसमें व्यवस्था एवं न्याय को बनाए रखना। सब प्रकार की विचार-सरणियों को अवसर मिले, नाना प्रकार के मत प्रकट हों एवं अल्प मत वालों के साथ न्याय हो और उचित अवसर सबको मिल सके, ऐसा करने के लिए ही सभा का संचालन होना चाहिए। भाषण-स्वातंत्र्य का अर्थ उच्छृङ्खलता या या कलह करना न हो, यह बात सभासद् मंजूर कर लें। बहुमत वाले पक्ष सहिष्णुता का प्रदर्शन करें, यह जैसा सत्य है वैसा ही यह भी सत्य है कि अल्प-मत वाले भी सदभिरुचि का प्रदर्शन करें। सभा-संचालन के नियम बहुसंख्यकों के हाथ में आकर अत्याचार के समान बन सकते हैं, उसी प्रकार अल्प-संख्यकों के हाथ में आकर रुकावट और विलम्ब का शस्त्र बन सकते हैं। सैकड़ों संशोधनों को उपस्थित करना, बार-बार स्थगित करने का प्रस्ताव उपस्थित करना, प्रत्येक प्रश्न के ऊपर मत-विभाजन की माँग करना, जितने आदमी बोल सकें उतने और जितनी देर बोल सकें, उतनी देर, निष्कारण भाषण करते चले जाना—ये सब सभा के नियमों का उल्लंघन किए बिना भी किया जा सकता है और किया जाता है। इसके विपरीत प्रस्ताव पर अनुमोदन के होते ही उस पर मत-ग्रहण करने के लिए प्रस्ताव लाना, चर्चा न होने देना, कोरम को भंग करना, महत्त्वपूर्ण एवं तात्कालिक प्रश्न कह करके साधारण नियमों को ताक

में रखकर झटपट पास करवा लेना आदि भी नियम का उल्लंघन किए बिना ही किये जा सकते हैं।

नियमों का दुरुपयोग न किया जाय, सभासद् उनकी सहायता से सभा-कार्य के अन्दर रुकावटें उपस्थित न करें, यह सब देखने-भालने का कार्य अध्यक्ष का है। और यदि कभी अध्यक्ष को वक्ता के अवांछनीय उद्देश्य के बारे में पूर्ण विश्वास हो जाय तो उसे चाहिए कि वह उस चर्चा के ऊपर सीमा निर्धारित कर दे। जैसा हम पहले कह आए हैं, जान-बूझकर रुकावटें उपस्थित करने वाले उक्त वक्ता को भाषण बन्द करने के लिए कहना चाहिए। प्रस्ताव पर तत्काल मत ग्रहण किया जाना चाहिए, अथवा प्रसंग पड़ने पर ऐसा प्रस्ताव अथवा संशोधन उपस्थित करने की अनुमति ही नहीं देनी चाहिए। जिन सभासदों को निर्णय अमान्य हो, उन्हें सभा से बाहर जाने के लिए कहने का और यदि वह स्वेच्छा से न जाते हों, तो उन्हें बलपूर्वक बाहर निकाल देने का अधिकार प्रत्येक अध्यक्ष को है।

अशिष्ट व्यवहार—सभा में शान्ति बनाए रखने के लिए आवश्यक सीमाओं का बंधन डालने का अधिकार अध्यक्ष को है। असभ्य व्यवहार करने वाले, गुण्डागर्दी अथवा दंगा मचाने वाले सभासद् को भी बाहर निकाल देने का प्रत्येक अध्यक्ष को अधिकार प्राप्त है। किन्हीं प्रसंगों में अपराधी सभासद् की सदस्यता को कुछ काल तक रद्द करने का अधिकार भी अध्यक्ष को रहना चाहिए। अध्यक्ष ऐसे उद्धत सभासद् को एक दिन के लिए भी सदस्यता से वंचित कर सकता है। परन्तु उससे भी अधिक काल तक उसे अलग करना हो तो उसके लिए सभा की सम्मति लेना आवश्यक है और सभा उचित निर्णय दे सके, उसके लिए अपराधी सभासद् को आवश्यक स्पष्टीकरण करने का अवसर भी दिया जाना उचित है। साधारणतया तहकीकात के लिए अथवा अपराधी सभासद् को अपना पक्ष उपस्थित करने के लिए अवधि दिये बगैर सभा उनके बारे में कोई निर्णय दे, यह वांछनीय है।

समय की पाबन्दी—सभा का कार्यक्रम पूर्ण हो सके अतएव आवश्यक है कि समय की पाबन्दी हो। वह सभासदों के लिए भी जरूरी है। साधारणतया प्रस्तावक को बीस मिनट से अधिक न बोलना चाहिए। जहाँ उत्तर देने का अधिकार हो, वहाँ उत्तर के लिए भाषण पन्द्रह मिनट काफी है। जो सभासद् अथवा पक्ष, प्रस्तुत विषय की विशेष जानकारी रखते हों उन्हें यदि थोड़ा अधिक समय भी दिया जाय तो बाधा नहीं होती और चर्चा को अच्छी दिशा मिल जाती है। किसी-किसी प्रसंग पर ऐसे भाषण, जो सभा को बहुत पसन्द

हों, कुछ अधिक देर होने दिए जायँ तो कोई भी व्यक्ति उसके लिए अध्यक्ष पर आक्षेप नहीं करता। पसन्द न आने वाले भाषण पर समय की पाबन्दी हो तो श्रोता उसे सहन कर लेते हैं। तालियों और शोर-शराबे के साथ भाषण-समाप्ति होने की अपेक्षा यदि निश्चित समय पर समाप्त हो सके तो कहीं अच्छा होता है। बोलने वाले पर समय की पाबन्दी होती है, अतः जो कुछ मन में आए बोलता चला जाय, उसे इस बात का अधिकार नहीं है। अल्प-संख्यक वक्ताओं को अध्यक्ष यदि थोड़ा-सा अधिक समय दे तो कटुता उत्पन्न नहीं होती और यदि हो भी तो बहुत कम। श्रोता विरुद्ध हों, भाषण के लिए यदि समय बहुत ही सीमित हो, उस पर नियंत्रण बहुत कड़ाई के साथ हो तो यह सम्भावना रहती है कि वक्ता कुछ चिढ़ जाय। अपने मन की भड़ास निकालने के लिए वक्ता को समय मिलने से शान्ति प्राप्त होती है। श्रोताओं का मनोरंजन भी होता है। तथापि अध्यक्ष यह सावधानी रखे कि वह भाषण गाली-गलौज़ से भरा हुआ अथवा अशिष्ट न हो।

हाँ कभी-कभी किसी चर्चा का विषय बहुत महत्त्वपूर्ण होता है और उस समय यदि समय बढ़ाना भी पड़े तो कुछ हानि नहीं। ऐसे प्रसंगों पर वक्ता परिस्थिति को समझ-बूझकर अपना भाषण करे। चर्वित-चर्वण, पुनरुक्ति तथा अप्रासंगिक मुद्दे वक्ता को स्वयं छोड़ देने चाहिएँ। वक्ता यह बात अपने ध्यान में रखे कि श्रोता यदि ऊब जाय तो उन्हें अपने अनुकूल नहीं बनाया जा सकता। "खड़े हो जाओ, ऊपर गरदन करके भाषण करो और न्यायाधीश के ऊँघना आरम्भ करने से पहले ही भाषण समाप्त कर दो।"[1] ऐसा करने से वह प्रभाव-शाली होता है। यही उपदेश सभा के वक्ताओं के लिए भी उपयोगी है।

विषय का महत्त्व समझकर समय पर पाबन्दी लगाई जाय, वह कहीं व्यर्थ न सिद्ध हो अतएव चर्चा का रूप ऐसा ही रहना चाहिए। समय की पाबन्दी निर्धारित करते समय पहले सम्मति ले लेनी चाहिए। उसी प्रकार जहाँ काल-मर्यादा नहीं है वहाँ सभा की सम्मति से समय निर्धारित करना भी उचित होता है और यही प्रथा भी है। विषय की चर्चा आरम्भ होने से पहले समय का निश्चय अध्यक्ष की सम्मति द्वारा करना उचित है। जहाँ नियमानुसार ऐसा न हो, जैसे विधान-सभा में आने वाले बिलों पर; वहाँ होने वाले भाषण यदि प्रसंगानुकूल न हों, पुनरुक्तिपूर्ण हों अथवा भाषण-स्वातंत्र्य का दुरुपयोग करने वाले हों, नियमों का दुरुपयोग जान-बूझकर किया जा रहा हो तो उचित

1—Stand up. speak up and bring your argument to a close before the learned judge begins to dose.

अवसर पर उसे बन्द करने के लिए कहना चाहिए। समय की पाबन्दी है अतएव वाद-विवाद अधूरा न रहने पाय, लेकिन यह भी आवश्यक है कि ज़रूरत से ज्यादा वाद-विवाद न बढ़े—अध्यक्ष इन दोनों बातों पर नियन्त्रण रखे।

वैधानिक (स्टेच्युटरी बॉडी) संस्थाओं की बैठकें बराबर आयोजित होती रहती हैं। इसके अतिरिक्त एक बार की सभा एक ही दिन में समाप्त हो जाय ऐसी भी कोई बात नहीं। इन सभाओं में जिन विषयों पर चर्चाएँ होती हैं उनका भी काल निर्धारित करना उचित है। जो सिङ्क संस्थाएँ वैधानिक नहीं हैं वर्ष में एक या दो बार संस्था की ओर से सभा बुलाया करती हैं, उनके लिए भी समय की पाबन्दी आवश्यक है। सरकारी संस्था, व्यापारी कम्पनियों आदि की सभाएँ, राजनीतिक सभाएँ और वाचनालय सदृश संस्थाओं की सभाएँ ऐसी नहीं हैं जिन्हें हर रोज या बार-बार बुलाया जा सके। सधारण सभा (जनरल बॉडी) की बैठक वर्ष में एक बार और अधिक हुआ तो दो बार हुआ करती है; और वे भी तीन या चार घंटों की अपेक्षा देर तक काम नहीं करतीं। यह बात ध्यान में रखते हुए सभा में किसी विषय पर की जाने वाली चर्चा को अधिक समय तक चलाना असंभव है। अतएव इस प्रकार की सभाओं में अध्यक्ष पहले ही एक उचित समय निर्धारित कर दे जिससे उतने समय में ही पूरी चर्चा हो जाय। उसके बाद अध्यक्ष मत-विभाजन के साथ कार्रवाई खत्म कर दे। जहाँ व्यक्तिगत रूप से वक्ता पर समय की पाबन्दी आयद होती है वहीं वाद-विवाद के पूरे समय का भी काल-निर्धारण होना आवश्यक है।

दिया हुआ समय (अलॉटेड टाइम) समाप्त होते ही चर्चा बन्द करने की सूचना देने की कोई आवश्यकता नहीं। चर्चा को कब बन्द किया जाय, यह समय निर्धारित करने से अपने-आप ही निश्चित हो जाता है। प्रश्न पर आए हुए प्रस्ताव, संशोधन इत्यादि सबका विचार किया जाना उचित है। वक्ताओं का क्रम अध्यक्ष को न्याय-बुद्धि से निर्धारित करना चाहिए। बहुत दफा नियमों के अन्दर ही विशिष्ट चर्चाओं की काल-मर्यादा निर्धारित की हुई होती है। कितनी ही संस्थाओं में कार्यकारिणी-समिति प्रस्ताव के पास होने के पश्चात् व्यक्ति सभासदों के प्रस्ताव लिये जाते हैं। उस निर्धारित समय में जितने विषयों की चर्चा संभव है उतनी ही हो सकती है। उस समय के समाप्त होते ही चर्चा भी समाप्त हो जायगी, चाहे अपूर्ण रूप में ही क्यों न हो।

विधान-सभाओं में कुछ विषयों की चर्चा का समय नियमों के अन्दर ही विद्यमान रहता है। अनुमान-पत्र-सम्बन्धी चर्चा निश्चित दिनों तक ही होती

है। माँगों के ऊपर होने वाली चर्चा भी निश्चित दिनों के अन्दर-ही-अन्दर पूरी करनी पड़ती है। आखिरी क्षण आते ही चर्चा बन्द हो जाती है। जिन माँगों का निर्णय नहीं हो जाता, अध्यक्ष उन माँगों के ऊपर क्रम से मत लेता है। चर्चा बन्द करने की सूचना देनी नहीं पड़ती। इसी प्रकार उस समय, सभा के स्थगितीकरण का प्रस्ताव, अन्य प्रकार का प्रस्ताव अथवा संशोधन, अध्यक्ष स्वीकार नहीं करता। दिए हुए समय के अन्दर ही चर्चा होनी चाहिए, यदि वह समाप्त न हुई हो तो उपर्युक्त पद्धति से उसे समाप्त कर दिया जाता है और सभा का निर्णय ले लिया जाता है। इस पद्धति को विनोद में हत्या-पद्धति (गिलोटीन) कहते हैं। अनुमान-पत्र सम्बन्धी चर्चा की जैसी काल-मर्यादा है वैसी ही वित्त-व्यवस्था-बिल-सम्बधी चर्चा की काल-मर्यादा नहीं। कारण, वह बिल है और उसे पास होकर कानून बनना है। कोई विशेष और सार्वजनिक महत्त्व का प्रश्न हो तो उस पर चर्चा करने के लिए सभा को स्थगित करने का प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है। उसके ऊपर चर्चा दो घंटों के अन्दर नियमानुसार समाप्त कर दी जाती है। उस काल में यदि चर्चा समाप्त न हुई तो वह विषय उसी प्रकार बिना चर्चा के रह जाता है तथा पुनः सभा के सामने उसे उपस्थित नहीं किया जा सकता।

सभा में व्यवहार—सभा का अर्थ है, किन्हीं निश्चित विषयों के ऊपर नियम के अनुसार विचार करने के लिए एक जगह एकत्रित सभासद। जिस प्रकार बोलने वाले सभासद् के लिए इस प्रकार की मर्यादाएँ हैं कि वह किस प्रकार बोले, क्या बोले, कब बोले तथा किसके ऊपर चर्चा करे आदि, उसी प्रकार सभा के कार्य की सफलता के लिए अन्य सभासदों के लिए भी मर्यादाएँ हैं। अध्यक्ष, वक्ता और श्रोता सभी नियम से बँधे हुए हैं। जो सभासद् है उसी को सभा में उपस्थित होने का अथवा बोलने का अधिकार है। सार्वजनिक निमन्त्रण के अनुसार उपस्थित रहने वाले सारे श्रोता ही उस सभा के सभासद् होते हैं। संगठित एवं नियम के अनुसार चलने वाली संस्थाओं की सदस्यता केवल उनकी सभाओं में उपस्थित रहने से नहीं मिलता। संविधान के अनुसार प्रार्थना-पत्र भेजकर सभासद् होना चाहिए या उसमें भाग लेकर या निर्वाचित होकर सभासद् हो जाने के पश्चात् जब तक नियम के अनुसार उसकी सदस्यता कायम है, तब तक सभा में उपस्थित रहने का उस व्यक्ति एवं उसमें भाग लेने का अधिकार है। सभा में उपस्थित रहने का एवं भाग लेने का अधिकार भी नियम के अनुसार उसे उपयोग में लाना चाहिए। जिस समय सभासद् वक्ता न हो उस समय वह अपने स्थान पर शान्ति से बैठे।

सभासद् यदि आपस में कानाफूसी करने लगे तो वक्ता का भाषण सुनाई नहीं देगा और चर्चा में न्यूनता आ जायगी। श्रोता सभासदों का कर्तव्य है कि वे सभा चालू रहते समय व्यर्थ हीं सभा में इधर से उधर न जायँ। वक्ता और अध्यक्ष के बीच में से तो यथासम्भव उन्हें जाना ही नहीं चाहिए और यदि जाना ही हो तो झुककर जायँ ताकि वक्ता के भाषण में किसी प्रकार की रुकावट न हो। सभा के चालू रहते समय निरन्तर सभा-गृह से बाहर जाना और फिर अन्दर आना ठीक नहीं। इस प्रकार आने-जाने से सभा में विघ्न उत्पन्न होता है। केवल तभी जाना चाहिए जब बहुत जरूरी काम हो और वह भी बहुत ही अदब के साथ तथा किसी किस्म की आवाज़ न करते हुए। आते समय भी इसी प्रकार आना चाहिए। विधान-सभा में से बाहर जाने वाला सभासद् पहले अपनी जगह पर खड़ा होता है, अध्यक्ष को थोड़ा-सा झुककर अभिवादन करता है और उसके पश्चात् जाता है। जब आता है तब अपनी जगह पर खड़ा होता है अध्यक्ष को थोड़ा झुककर अभिवादन करता है और उसके बाद बैठता है। सभा चालू रहते समय सभा-गृह में शान्ति तो हो ही, परन्तु व्यर्थ में अखबारों की फड़फड़ाहट भी न हो। उन्हें वास्तव में चाहिए कि जो चर्चा हो रही हो उसे सुनें अतः उस समय वहाँ और कुछ पढ़ना उचित नहीं। तथापि कुछ-कुछ पढ़ने का काम आ जाय तो उसे हाथ के ऊपर की ओर पकड़कर तथा जोर से नहीं पढ़ना चाहिए। तात्पर्य यह है कि सभा की कार्रवाई में किसी भी प्रकार की गड़बड़ न होने पाय।

सभा चालू रहते समय तम्बाकू पीना, चाय पीना अथवा अन्य पेय पीना या खाना शिष्ट-सम्मत नहीं। नरेन्द्र-मंडल में खाने-पीने और तम्बाकू पीने आदि सब कामों के लिए सभा के चालू रहते समय पूरी छूट थी। इन सभासदों के सामने काम-काज के कागजों के स्थान पर केक और केले का संभार रहता था और सारा वातावरण सभा के स्थान पर क्षुधा-शान्ति-भवन का-सा प्रतीत होता था। चर्चा के लिए आवश्यक वातावरण इस प्रकार के वातावरण में उत्पन्न नहीं होता। अन्य किसी भी विधान-सभा में इस प्रकार की अनुमति नहीं है। भाषण देते समय वक्ता का बीच-बीच में पानी पीना आपत्तिजनक नहीं है। यह सुविधा यदि सबको दे दी जाय तो पेय लाकर देने वाले लोगों का आना-जाना सभा में शुरू हो जाता है और सभी का ध्यान टूट जाता है। सभा-गृह से बाहर पेय अथवा तम्बाकू पीने की जगह रहनी चाहिए। सभा चालू रहते समय बीड़ी पीने की सुविधा प्रदान की जाय तो सभा में प्रकाश के स्थान पर धुआं ही धुआं दिखाई देने लगेगा।

कानूनी विधान-सभाओं में मत-ग्रहण के समय (ड्यूरिंग डिवीजन) सभासद् को बीड़ी पीने की अनुमति रहती है परन्तु मत-दान यदि सभा-गृह में हो रहा हो तो वह भी नहीं रहती। मत-दान के लिए सभासद् को मत-दान के कक्ष में (वोटिंग लौबी) जाना पड़ता हो तो यह सुविधा दी जाती है, कारण उस समय सभा के सामने दूसरा कार्य नहीं रहता। सभासद् मत देने के लिए जाते रहते हैं, थोड़ा-सा अनौपचारिक वातावरण उत्पन्न हो जाता है। इस एक अपवाद को छोड़कर सभासद् कितने ही महत्त्व का क्यों न हो उसे भी इस नियम का पालन करना पड़ता है। सभा के अध्यक्ष पर भी यह नियम लागू है। सभा की प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखने की वास्तविक जिम्मेदारी अध्यक्ष की है। उसका व्यवहार आदर्श होना चाहिए।

सभासदों को जो स्थान निश्चित किये गए हों, उन्हीं पर बैठना चाहिए। स्थान यदि निश्चित किये हुए हों तो अपने-अपने दल-समूहों में बैठें। एक बार एक स्थान पर बैठ जाने के अनन्तर सभा की समाप्ति तक स्थान बदलना ठीक नहीं। स्थान के बार-बार बदलने से सभा के कार्य में अनियमितता आती है। अध्यक्ष को वक्ताओं का क्रम निर्धारित करते समय कठिनाई उपस्थित होती है। निश्चित स्थान रहने से कौन-सा दल कहाँ-कहाँ बैठा है, कौन-सा सभासद् कहाँ है--यह अध्यक्ष को विदित होता है। अतएव नियम-बद्ध संस्थाओं को चाहिए कि वे अपनी सभाओं में सभासदों के लिए स्थान निश्चित कर दें। विधान-सभाओं में यह परिपाटी है कि पार्टी के अनुसार भाग दिया जाता है। इस भाग में उस पक्ष के लोग किस प्रकार बैठें यह पक्ष स्व निर्धारित करता है। फिर वह व्यवस्था अध्यक्ष को बतला दी जाती है। इस प्रकार की व्यवस्था से चर्चा सुलभ होती है। सभासदों को अपने पक्ष का कौन है तथा प्रतिपक्षी कौन है, इसका भी ज्ञान आसानी से हो जाता है। अतः सभासद् की जगह निश्चित् की हुई होनी चाहिए। जहाँ कहीं यह सम्भव न हो वहाँ सभासद् जिस एक जगह पर बैठ जायँ, उस जगह को सभा की समाप्ति तक न छोड़ें। मत-ग्रहण के समय जब मत-दान के कक्ष में जाना हो, उस समय झुण्ड के रूप में खड़े होकर धीमी आवाज़ में बातचीत करने की बहुत सी विधान-सभाओं में अनुमति रहती है। इसी प्रकार अपने स्थान पर सभ्य रीति से बैठना चाहिए; टेढ़े-मेढ़े होकर बैठना, या सभा में सोना आदि सभा की प्रतिष्ठा के विपरीत है।

सभा में बैठकर सभासदों का कर्तव्य है कि जो भाषण हो रहा है, उसे शान्ति पूर्वक सुनें। वक्ता के भाषण में बार-बार रुकावट पैदा करना, व्यर्थ ही

एक के बाद एक प्रश्न पूछ करके संत्रस्त करना, बीच ही मे कुछ का कुछ जोर से पुकारकर उसके भाषण मे एवं विचार-प्रणाली मे गडबड़ी पैदा कर देना आदि उचित नहीं। यदि लगातार प्रश्न होने लग जायँ तो मुख्य मुद्दे ताक में ही रह जाते हैं। अनेक बार कलह-कोलाहल का वातावरण उत्पन्न हो जाता है। बोलने वाला वक्ता कोई गवाह नहीं है। जो लगातार उससे जिरह की जाय उसका प्रतिपाद्य विषय अथवा विचार-सरणी पसन्द न हो तो अपनी अप्रसन्नता प्रकट करने के लिए निरतर तालियाँ बजाना, टेबुल के ऊपर हाथ पटकना, निरंतर छेड़-छाड करना आदि शिष्ट सम्मत नहीं है। अपनी अप्रसन्नता प्रकट करने के लिए सभा-स्थल का परित्याग करके थोडी देर के लिए बाहर चले जाना सीधा-सादा उपाय है। 'नीचे बैठो', 'बोलने दो', 'वाह वाह' इत्यादि उद्गार उचित समय पर अथवा उचित अनुपात मे प्रकट करना आपत्तिजनक नहीं है। वक्ता के उपहास के लिए हँसना, तालियाँ पीटना आदि उसका अपमान नहीं है; प्रत्युत सभा का अपमान है। इसे ध्यान मे रखना आवश्यक है।

वक्ता से यदि कोई प्रश्न पूछना हो तो उठकर पूछे और जब वक्ता नीचे बैठकर प्रश्न पूछने का अवसर दे, तभी वह प्रश्न पूछा जा सकता है। प्रश्न भी लगातार पूछते चले जाना अयुक्त है। प्रश्न भी वास्तव मे प्रश्न हो। उसका स्वरूप वाद-विवादात्मक नहीं होना चाहिए। यदि उसका स्वरूप वाद-विवादात्मक हो तो वह प्रश्न न होकर एक प्रकार से भाषण ही हो जाता है। यदि अधिकार हो तो प्रश्न के स्थान पर भाषण ही करना ठीक रहता है। श्रोताओं की ओर से प्रश्न के रूप मे अथवा आलोचनात्मक वाक्य के द्वारा उपस्थित की जाने वाली बाधा, चर्चा को अभीष्ट दिशा प्रदान करती है। चर्चा मे प्रसन्नता का वातावरण भी उत्पन्न करती है। विनोदयुक्त तथा मार्मिक विषयों का स्पष्टीकरण करने वाले और युक्तियुक्त वाक्यों के द्वारा किसी प्रकार की कोई रुकावट पैदा नहीं होती। परन्तु ये वाक्य थोड़े एवं चटकीले रहें तभी उनमें लज्जत रहती है। अन्यथा मामला बिगड़ जाता है और ऐसा होना हानिप्रद है। वक्ता के भाषण को असम्भव बना देने वाली रुकावटें अवश्य ही रोक दी जानी चाहिएँ। 'शेम शेम' इत्यादि [illegible] शोर बन्द कर देना चाहिए। कारण, इस प्रकार के शोर-गुल मे भाषण के अंदर रुकावटें पैदा होती हैं। सभा की शान्ति के भंग होने [illegible] है। पार्लमेंटों की भावना इस प्रकार की रुकावटों से [illegible] और वातावरण गन्दा हो जाता है। ऐसा न होने देने का प्रयत्न करें। परन्तु मार्मिकता और [illegible] जवाबों को

योग्य दिशा प्राप्त होने के कारण चर्चा से मन के अंदर बढ़ने वाली तनातनी खत्म हो जाती है।

चीनी के ऊपर लिये जाने वाले महसूल के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर हो रहे थे और वातावरण गर्म होता जा रहा था। उस समय एक सभासद् ने निम्न-लिखित वाक्य का उच्चारण करके वातावरण को ठण्डा कर दिया, "आदरणीय सदस्य के मुँह में चीनी होने पर भी उनसे मीठा नहीं बोला जा रहा है। वास्तव में कहीं देशी चीनी की मिठास तो कम नहीं हो गई?" मोटर के तेल पर नियन्त्रण हो, इस विषय पर बोलने वाला मद्रासी वक्ता इतनी तीव्र गति से बोलता जा रहा था कि श्रोताओं के लिए उसको ठीक-ठीक समझना असम्भव हो गया। उस समय एक सभासद् ने अत्यन्त गम्भीरता से कहा—"सरकार को चाहिए कि वह तत्काल भाषण की गति पर नियंत्रण रखने वाला बिल पास करे। लोक-कल्याण के लिए ऐसा करना आवश्यक होगया है।" इसका जो जो परिणाम होना चाहिए था वही हुआ और वक्ता स्वाभाविक गति से बोलने लगा। "दिन-रात हम स्वराज्य का चिन्तन किया करते हैं" ये शब्द कांग्रेस-पार्टी के नेता के मुँह से ज्यों ही बाहर निकले त्यों ही—"तो सूत कब कातते हैं।" इस प्रकार का एक चुभता हुआ प्रश्न एक सभासद् ने पूछा और एकदम वातावरण में अन्तर आ गया। देश का संरक्षण सरकार किस प्रकार करती है, यह बतलाते हुए "स्थल सेना, समुद्री सेना तथा विमान इत्यादि सब तैयार हैं और उनका उपयोग संरक्षण के लिए पर्याप्त है।" इस प्रकार ही "भारत-रक्षा कानून के लिए भी न्याय प्रदान कीजियेगा, कारण कि रक्षा का भार इसी पर विशेष पड़ा हुआ दीखता होता।" ऐसा कहने वाले सभासद् ने मर्म भेद करके सचाई को व्यक्त कर दिया। आदरणीय "आप पशुओं के प्रसिद्ध डॉक्टर हैं" इस वाक्य का तिरस्कारार्थ उच्चारण करते ही—क्योंकि प्रस्तुत डॉक्टर प्रसिद्ध सर्जन थे—दूसरे सभासद् ने "हाँ आपके ऊपर शस्त्र-क्रिया करते समय वे इसी प्रकार के डॉक्टर थे" यह कहकर ज्यों ही ताना मारा तो पहला सभासद् नीचे बैठ गया और सभा में होने वाली अशिष्टता टल गई। भाषण और वाद-विवाद में जब तक विनोदपूर्ण और शिष्ट व्यंग्यात्मक शैली का उपयोग होता है, सभ्य भाषा इस्तेमाल होती है, तब तक सभा वाद-भूमि है, रण-क्षेत्र है। योग्य आयुधों के उपयोग करने का अधिकार श्रोता और वक्ता दोनों को है। अधर्म-युद्ध नहीं हो रहा है, इतना ही अध्यक्ष को देखना चाहिए। सभा में पांडित्य, मार्मिकता यदि प्रदर्शित नहीं की जायगी अन्यत्र कहाँ प्रदर्शित की जायगी?

शब्दों से चलकर हाथा-पाई पर नौबत न आने पाय। मुद्दों की जगह गुद्दे न आने चाहिएँ; इस बात की सावधानी अध्यक्ष रखे। इसीलिए विधान-सभा के अंदर डण्डे और छुरियाँ ले जाने की मनाही है। तथापि अनेक बार कामन्स-सभा के अन्दर पुस्तकों का उपयोग, खोपड़ियाँ बजाने के काम में किया गया है। नियमबद्ध संस्थाओं की सभाओं में डण्डे और छुरियों के लिए मनाही होनी चाहिए। अन्य संस्थाओं में भी इस परम्परा का पालन करना लाभदायक होगा।

सभासद् सभा में कैसी पोशाक धारण करके आयें इस सम्बन्ध में भी कुछ मर्यादाएँ होती हैं। स्थानिक स्वायत्त संस्था, विधान-सभा आदि में तद्विषयक नियम भी बने होते हैं। सभासद् यह दृष्टि में रखकर पोशाक धारण करें कि वे सभा में जा रहे हैं। अपवाद स्वरूप किसी एक-आध महापुरुष को यदि विशिष्ट प्रकार की वेश-भूषा हो और अन्य सारे लोग उसका अनुकरण करने लगें तो यह ठीक नहीं। वैयक्तिक अभिरुचि का विचार करते हुए भी कुछ मर्यादाएँ इस विषय में रहें यह ठीक है। अदालतों में जितनी मर्यादा पाली जाती है उतनी तो पालन की जानी ही चाहिए। देश, काल और परिस्थिति के अनुसार सभासद् सभ्य मानी जाने वाली पोशाक में आयँ ऐसी परिपाटी तो रहे ही यह ध्यान रहे कि सभा कोई कुम्भ का मेला नहीं है जहाँ नागा, यती, फकीर और नाना रूपधारी लोगों की भीड़ होती है। सभा, सभ्य लोगों का समुदाय है अतएव यह ध्यान रखना जरूरी है।

भाषण की मर्यादाएं बनी रहें, नियमानुसार चर्चा हो, सभा में व्यवस्था और शान्ति रहे—इन सब बातों की ओर सावधानी से देखने का काम अध्यक्ष का है। इन बातों के लिए सब प्रकार के आवश्यक अधिकार नियम द्वारा अथवा प्रथा द्वारा अध्यक्ष को प्राप्त हैं। गैर कानूनी अथवा अनुशासन-विरुद्ध बात को देखकर यदि कोई उसे सामने लाए तो अध्यक्ष तत्काल उसका फैसला करे और उसके अनुसार काम करवा ले। अध्यक्ष सभापति है, उसे सभा का न्याय-युक्त संचालन करना चाहिए। सभा सर्व-सत्ताधारिणी तो है; परन्तु नियम के अनुसार लोगों ने स्वयं उसने सुव्यवस्था के लिए सारा अधिकार अध्यक्ष के सुपुर्द किया होता है। दिये हुए अधिकार-क्षेत्र में एवं परम्परा से आने वाले अधिकार-क्षेत्र में अध्यक्ष का निर्णय उस सभा की हद तक तो अंतिम निर्णय होता है। सभा-संचालन के कार्य में उसके अनुसार उस पर आचरण करें। उसकी आज्ञा माननी चाहिए और न मानने वाले को सभा से बाहर निकाल देने का अधिकार उसे प्राप्त है। [illegible] बातों पर उसकी [illegible]

को कुछ काल तक रद्द करने का भी अधिकार है। सभा के नियमों को कार्यान्वित करने का काम उसका है और उसे उतने अधिकार रहने ही चाहिएँ। जहाँ नियम अथवा प्रचलन स्पष्ट हैं वहाँ वह उनके अनुसार निर्णय दे। जहाँ नियम लागू नहीं, प्रसंगानुकूल प्रचलन नहीं है या, जहाँ क्या निर्णय दिया जाय, इस प्रकार की शंका होती है, वहाँ उसे सभा का मत लेकर निर्णय देने का अधिकार है। उसे चाहिए कि वह पैदा हुई परिस्थितियों को सभा के सामने रखे और उस पर विचार होने दे परन्तु स्वतः चर्चा में भाग न ले। सभा द्वारा दिये गए मत को स्वीकृत करके उसके अनुसार निर्णय करे।

नियम के अनुसार सभी संस्थाओं में, जिनमें विधान-सभाएँ भी समाविष्ट हैं, उपस्थित कानूनों के मुद्दों तथा बाधाओं पर निर्णय देना अध्यक्ष का कर्तव्य है। तथापि विशिष्ट परिस्थितियों में अध्यक्ष को सभा के मत का अनुमान लगाने का अधिकार है। सभा द्वारा दिये हुए मत को स्वीकार करके वह जो निर्णय देता है, वह उसी का निर्णय समझा जाता है। कामन्स-सभा में ऐसी ही प्रथा है। अनेक बार उपस्थित मुद्दों पर सभा में चर्चा होने के बाद, चर्चा का झुकाव देखकर अध्यक्ष अपना मत बना ले और तब निर्णय दे। सभा का प्रत्यक्ष मत यदि लिया जाय तो वह अधिक अच्छा रहता है।

प्रस्ताव वापस लेना—नियमानुसार प्रस्ताव होना चाहिए। जो भी सभा के सामने प्रश्नों के तौर पर उपस्थित किये जाते हैं, वे सब नियमानुसार हों। जिस प्रस्ताव की भाषा अशिष्ट तथा अनुचित हो अथवा पूर्णतः अंशतः नियमानुसार नहीं हो तो वह जिस रूप में है उसी रूप में उपस्थित करने की अनुमति अध्यक्ष नहीं देगा। यदि प्रस्ताव नियम के अनुसार है और सभ्य भाषा में है तो अध्यक्ष को अनुमति देनी चाहिए। जब कोई प्रस्ताव नियम के अनुसार उपस्थित किया जाता है और उसका अनुमोदन हो जाता है, तब वह सभा के सामने का प्रश्न बन जाता है। कितने ही स्थानों पर जो सभा के सामने का प्रश्न होता है, उसे अध्यक्ष पढ़कर सुनाता है और उसके बाद उसकी चर्चा शुरू होती है। एक बार सभा के सामने का प्रश्न बन जाने के पश्चात् उसे सभा की अनुमति के बिना वापस नहीं लिया जा सकता। वह प्रश्न सभा की सम्पत्ति बन जाता है। सभा चाहे तो उसे स्वीकार करे अस्वीकार करे, उसकी उपेक्षा करे, चाहे तो उसमें थोड़ा संशोधन कर ले या फिर उसे वापस लेने की अनुमति दे दे। जो वस्तु सभा के सामने का प्रश्न बन जाती है, उसके ऊपर न तो अध्यक्ष का, न उसे उपस्थित करने वाले का और न अनुमोदक का अधिकार रहता है। सभा के सामने का प्रश्न प्रस्ताव के रूप से हो चाहे संशोधन

के रूप में, जब तक सभा की सम्मति उसको प्राप्त नहीं हो जाती तब तक उसे वापस नहीं लिया जा सकता। एक भी सभासद यदि उसे वापस लेने के लिए इन्कार कर देता है तो उसे वापस लेने की अनुमति नहीं मिल सकती। और सभा की अन्तिम सम्मति मिलने पर ही उसका निर्णय होगा। जिसने सभा के सामने प्रश्न या प्रस्ताव उपस्थित किया है उसे ही उसे वापस लेने का अधिकार होता है, अनुमोदक या समर्थक को नहीं। प्रस्तावक ने यदि प्रस्ताव को वापस लेने की अनुमति माँगी तो अध्यक्ष सभा के सामने यह प्रश्न रखेगा "इस प्रस्ताव को वापस लेने की अनुमति दी जाय?" यदि एक भी आवाज़ 'नहीं' आई तो वह अनुमति अस्वीकृत कर दी गई, ऐसा निर्णय देकर मूल प्रस्ताव के ऊपर सभा का मत लेने के बाद उसका फैसला करना चाहिए।

बहुत बार वाद-विवाद में एक प्रस्ताव अथवा संशोधन वापस लेकर उसी के मेल-जोल का दूसरा प्रस्ताव या संशोधन उपस्थित किया जाता है। परन्तु उस समय भी सभा की सर्वसाधारण सम्मति आवश्य रहती है। इस प्रकार की सम्मति न मिले तो पहला प्रस्ताव या संशोधन वापस नहीं लिया जा सकता। वापस लेने के लिए सभा ने यदि उपरिनिर्दिष्ट नियम के अनुसार अनुमति दी, तो उसका अर्थ यह हो जाता है कि उस विषय के ऊपर सभा ने अपना कोई निर्णय नहीं दिया, और पुनः उसी विषय को सभा के सामने उपस्थित किया जा सकता है। इसी प्रकार अनेक बार अनुमति न देना वांछनीय सिद्ध होता है; क्योंकि इससे विषय की परिसमाप्ति हो जाती है। प्रथम प्रस्ताव एवं तदनंतर संशोधन सभा के सामने का प्रश्न बन जाने के पश्चात् जब तक संशोधन का फैसला नहीं हो जाता तब तक मूल प्रस्ताव को वापस लेने की प्रार्थना अध्यक्ष को सभा से नहीं करनी चाहिए। संशोधन सभा के सामने का प्रश्न बना हुआ होता है और जब तक उसका कोई फैसला न हो जाय, तब तक प्रस्ताव के प्रश्न का फैसला नहीं हो सकता। इसलिए जब तक संशोधन वापस न ले लिया जाय, वह अमान्य होकर अथवा मान्य होकर किसी फैसले पर न पहुँच जाय, तब तक मूल प्रस्ताव को वापस नहीं लिया जा सकता। संशोधन के मान्य हो जाने पर प्रस्तावक को चाहिए कि वह संशोधन सहित मूल प्रस्ताव को वापस लेने की अनुमति माँगे। सभा यदि अनुमति न दे, तो संशोधन सहित प्रस्ताव पर अध्यक्ष को सभा का मत लेकर फैसला करना चाहिए।

प्रश्नों की उपेक्षा—सभा के सामने प्रश्न को अनेक तरीके से उपेक्षित किया जा सकता है। अध्यक्ष प्रश्न को रीति के अनुसार यदि चर्चा के लिए उपस्थित करे, उसी समय सभा स्थगित करने का प्रस्ताव लाकर विषय को

उपेक्षित किया जा सकता है। यह सभा के स्थगितीकरण का प्रस्ताव सभा के सामने विद्यमान प्रश्न के ऊपर संशोधन के रूप में नहीं होता, यह एक स्वतंत्र प्रस्ताव होता है। बोलने वाले वक्ता का भाषण समाप्त होते ही यह उपस्थित किया जा सकता। भाषण समाप्त होते ही प्रस्ताव लाने की इच्छा वाले व्यक्ति को उठकर खड़ा होना चाहिए और अध्यक्ष से कहे कि मुझे सभा स्थगित होने का प्रस्ताव उपस्थित करना है।

सभा स्थगित करना—सभा स्थगित करने का प्रस्ताव आते ही अध्यक्ष को चाहिए कि वह इसे प्राथमिकता दे। चल रहे विषय को उसी प्रकार और वहीं छोड़कर इस प्रस्ताव को उपस्थित करने की आज्ञा दे। वह प्रस्ताव "अब सभा स्थगित हो" केवल इसी रूप में हो। स्थगितीकरण के कारणों को प्रस्ताव में समाविष्ट करना ठीक नहीं। उन्हें भाषण के समय कहना चाहिए। इस स्थगितीकरण के प्रस्ताव के ऊपर होने वाली चर्चा में उस व्यक्ति को भाग लेने का अधिकार है, जिसने मुख्य प्रश्न सभा के सामने उपस्थित किया हो। पहले सभा के स्थगितीकरण के प्रस्ताव के ऊपर उचित चर्चा होने देना अभीष्ट है और उसके ऊपर भाषण करने की भी अनुमति दी जाय। यह स्थगितीकरण का प्रस्ताव यदि स्वीकृत हो गया, तो सभा के सामने के मुख्य प्रश्न का विषय उपेक्षित हो जाता है और सभा अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो जाती है। फिर नोटिस देना पड़ता है और फिर सभा इत्यादि का सारा जंजाल करने के पश्चात् ही उस विषय को सभा के सामने लाया जा सकता है। बहुत बार सभा के सामने किसी भी प्रकार के प्रश्न के उपस्थित होने से पहले इस प्रकार का स्थगितीकरण का प्रस्ताव लाया जाता है। अध्यक्ष के आसन-ग्रहण करते ही सभा को स्थगित करने का प्रस्ताव लाने वाला व्यक्ति उठकर खड़ा हो जाता है और वह अध्यक्ष से कहता है, कि मुझे इस प्रकार का प्रश्न उपस्थित करना है। अध्यक्ष को उसकी अनुमति देनी चाहिए।

अनिश्चित काल तक के लिए सभा को स्थगित करने का प्रस्ताव, सभा के आरम्भ अथवा चर्चा आरम्भ होने के पश्चात् किसी भी समय उपस्थित किया जा सकता है। इतना ही नहीं बल्कि एक बार अस्वीकृत होने के बाद भी बार-बार उस सभा में उपस्थित किया जा सकता है। परन्तु इस प्रकार के दो प्रस्तावों में कुछ-न-कुछ कालान्तर रहे। इस प्रकार का नियम सर्वत्र बना रहता है जहाँ नियम न हो वहाँ आध घण्टे से अन्तर को आवश्यक मान लेना चाहिए। पहले स्थगितीकरण के प्रस्ताव पर चर्चा होने दी जाय। उसके पश्चात् आने वाले प्रस्तावों को केवल प्रस्तावों के रूप में ही उपस्थित करने देना

चाहिए और तत्काल उसके ऊपर मत ग्रहण किया जाय। चर्चा-समाप्ति के प्रस्ताव के अस्वीकृत हो जाने के पश्चात् सभा के स्थगितीकरण का प्रस्ताव तब तक उपस्थित नहीं किया जा सकता, जब तक कि उस प्रस्ताव के ऊपर मत ग्रहण नहीं हो जाता और उसका परिणाम प्रकट नहीं किया जाता। कारण, सभा ने इस बात का फैसला कर लिया होता है कि मत लिया जाय और किस का निर्णय किया जाय। वह फैसला उस अवस्था में निष्फल हो जाता है। इसी प्रश्न के ऊपर मत लेने के समय में और मत-गणना हो चुकने के पश्चात् अध्यक्ष का निर्णय प्रकट होने तक, स्थगितीकरण का प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार "सभा को अमुक काल तक काम करना है"—ऐसा कोई विशेष निर्णय यदि प्रारम्भ में लिया जा चुका हो, तो सभा के स्थगितीकरण के प्रस्ताव को उपस्थित नहीं किया जा सकता। यदि अध्यक्ष ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि "अमुक दिन तक यह चर्चा अथवा सभा स्थगित हो तो उस समय अस्पष्ट रूप से सभा स्थगितीकरण का प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया जा सकता। कुछ अपवादों को छोड़कर, सभा स्थगित करने का प्रस्ताव किसी भी समय लाया जा सकता है। जिस भी समय वह आए अध्यक्ष को चाहिए कि वह उसे प्राथमिकता दे।

अनिश्चित काल तक के लिए सभा को स्थगित करने का उद्देश्य यह होता है कि उपस्थित प्रश्न पर चर्चा न हो और वह किसी तरह से उपेक्षित हो जाय। अतः इस प्रकार के प्रस्ताव के आने पर अमुक तारीख तक सभा को स्थगित रखा जाय, ऐसा संशोधन ठीक साबित नहीं होता। इसी प्रकार अनिश्चित काल तक के लिए सभा के स्थगितीकरण के प्रस्ताव पर चर्चा को स्थगित कर दिया जाय, यह संशोधन भी उन्हीं कारणों के लिए लागू न होगा। अनेक बार सभा में उपस्थित करने का प्रस्ताव एवं चर्चा स्थगित करने का प्रस्ताव विकल्प के द्वारा उपस्थित किया जाता जैसे "अब सभा अथवा चर्चा स्थगित की जाय।" तथा मत लेते समय उन्हें पृथक् करके उस पर मत भी लिया जाता है। जो यह चाहते हैं कि मूल प्रश्न की उपेक्षा न हो, उन्हें चाहिए कि वह पहले प्रस्ताव का विरोध करके दूसरे प्रस्ताव का, यदि उनका उद्देश्य केवल यही है कि चर्चा को आगे के लिए ढकेल दिया जाय, समर्थन करें। इसी बैठक में चर्चा को पूर्ण करने का उद्देश्य हो तो दोनो प्रस्तावों का विरोध करें। चर्चा को स्थगित करने का प्रस्ताव, उस दिन वह चर्चा आरम्भ न हो अथवा पूर्ण न हो, इसी उद्देश्य से लाया जाता है। उसमें प्रश्न को उपेक्षित करने का उद्देश्य नहीं रहता। चर्चा स्थगित करने के प्रस्ताव पर 'अमुक दिनों तक' इस प्रकार

का संशोधन उचित है। मूल प्रस्ताव में भी काल का निर्देश किया जा सकता है और बहुधा लोग करते भी हैं। कितनी ही संस्थाओं के नियमों में ऐसा है कि विकल्प पूर्वक दो प्रस्ताव अथवा संशोधन एक करके अथवा एक ही समय में उपस्थित नहीं किये जा सकते। वहाँ यह नियम रहता है कि प्रत्येक प्रस्ताव या संशोधन पृथक् रूप से उपस्थित किया जाय। और यह नियम अनेक दृष्टियों से ठीक भी है। विकल्प पूर्वक उपस्थित किये गए प्रस्ताव से अनेक बार सभासदों के मन में गड़बड़ी पैदा हो जाती है। पथक् उपस्थित करने से समय अधिक लगता है, परन्तु सुलभता अधिक होती है। क्या हो रहा है, इसका अधिक स्पष्टीकरण सभासदों के सामने हो जाता है।

पूर्व प्रश्न—प्रश्न को उपेक्षित करने की दूसरी रीति है पूर्व प्रश्नों का प्रस्ताव उपस्थित करना। पूर्व प्रश्नों के प्रस्ताव (To move previous questions) का उद्देश्य सभा के सामने के प्रश्न पर सभा निर्णय न ले, यह होता है। सभा को स्थगित करने से सारी सभा खण्डित हो जाती है और उसके साथ-ही-साथ सभा के सामने उपस्थित होने वाले प्रश्न भी अपने-आप ही खण्डित हो जाते हैं। उस स्थगितीकरण का उद्देश्य भी यही होता है। पूर्व प्रश्न का उद्देश्य भी वैसा ही है। परन्तु पूर्व-प्रश्न के प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने पर सभा के सामने का प्रश्न ही केवल उपेक्षित होता है। सभा बन्द नहीं होती। दूसरा विषय सभा के सामने लाया जा सकता है। दूसरा विषय यदि सभा के सामने का प्रश्न बनकर उपस्थित हो, तो पुनः उसके बारे में स्वभावतः पूर्व-प्रश्न का प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकता है। जब कोई विषय प्रस्ताव के रूप में नियमानुसार सभा के सामने आता है, सभा के सामने का प्रश्न होता है; तभी पूर्व-प्रश्न का प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकता है। इसलिए अध्यक्ष जब तक यह न कहे कि अमुक प्रश्न अब सभा के सामने चर्चा के लिए उपस्थित है, तब तक पूर्व-प्रश्न का प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया जा सकता। अध्यक्ष के आसन ग्रहण करते ही पूर्व-प्रश्न का प्रस्ताव नहीं उपस्थित किया जा सकता। कारण, उस समय सभा के सामने कोई प्रश्न नहीं रहता। सभा के सामने यथा रीति किसी प्रश्न के आ जाने के पश्चात् ही पूर्व-प्रश्न उपस्थित किया जा सकता है। पूर्व-प्रश्न का अभिप्राय है, इस प्रकार का प्रस्ताव, जिसमें कहा गया हो कि 'सभा के सामने के प्रश्न पर इस समय मत न लिये जायँ।' सभा के सामने के प्रश्न का फैसला सभा को करना चाहिए या नहीं यह इस प्रस्ताव के द्वारा, निश्चित करने के लिए सभा को विवश होना पड़ता है मुख्य

प्रश्न से पहले उस पर मत लिए जायँ या नहीं—यह प्रश्न इस प्रस्ताव द्वारा उपस्थित हो जाता है। अतः इस प्रस्ताव को पूर्व-प्रश्न का प्रस्ताव कहा जाता है।

पूर्व प्रश्न का उपस्थापन—अध्यक्ष, सभा के सामने के प्रश्न पर यथा-विधि चर्चा करने की जिस समय अनुमति दे, उसी समय अथवा उसके पश्चात् किसी भी समय पूर्व-प्रश्न का प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकता है। चर्चा समाप्त हो गई हो या प्रश्न पर मत लिए जा रहे हों तो उस अवस्था में यह प्रस्ताव नहीं लाया जा सकता। कारण सभा को प्रश्न के ऊपर निर्णय लेना है, ऐसा पहले ही निर्धारित किया हुआ होता है। अथवा निर्णय लेने का, मत लेने का काम चालू रहता है। उसी प्रकार संशोधन के ऊपर विवाद चालू रहते समय पूर्व-प्रश्न उपस्थित नहीं किया जा सकता। संशोधन स्वीकृत हो गया, अस्वीकृत हो गया अथवा वापस ले लिया गया तो उसका फैसला होते ही पूर्व-प्रश्न उपस्थित किया जा सकता है। संशोधन यदि स्वीकृत हो गया हो तो संशोधित प्रस्ताव पर वह पूर्व-प्रश्न होता है और वह यदि अस्वीकृत हो जाय तो संशोधित प्रस्ताव उपेक्षित हो जाता है। बिल के वाद-विवाद पर भी उन्हीं सीमाओं को ध्यान में रखकर पूर्व-प्रश्न उपस्थित किया जाता है। छोटी समितियों की सभा में पूर्व-प्रश्न उपस्थित नहीं किया जा सकता। उसी प्रकार सभा के सामने का जो कार्यक्रम निर्धारित किया जाता है उससे सम्बन्धित प्रस्ताव पर पूर्व-प्रश्न का प्रस्ताव नहीं लाया जा सकता। पूर्व-प्रश्न का प्रस्ताव तथा सभा-स्थगितीकरण का प्रस्ताव, दोनों यदि अध्यक्ष के पास पहुँचे हों तो अध्यक्ष को सभा-स्थगितीकरण के प्रस्ताव को प्राथमिकता देनी चाहिए। सभा-स्थगितीकरण के प्रस्ताव से पूर्व-प्रश्न ही उपेक्षित हो जाता है। सभा-स्थगितीकरण का प्रस्ताव लुप्त हो जाता है। पूर्व-प्रश्न का प्रस्ताव 'सभा के सामने के प्रश्न पर इस समय मत न लिये जायँ' इस रूप में होता है। कई बार 'सभा के सामने के प्रश्न पर इस समय मत लिया जाय' ऐसा भी होता है। तथापि सामान्यतया पहले ही रूप में लाया जाता है। कामन्स-सभा में भी यही प्रथा है। 'सभा के सामने प्रश्न पर अब मत लिया जाय' इस प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने से 'सभा के सामने का प्रश्न' उपेक्षित हो जाता है और उस सभा में अथवा उस दिन जैसा नियम हो, उसके अनुसार पुनः सभा के सामने नहीं लाया जा सकता। यह प्रस्ताव यदि अस्वीकृत हो गया हो तो सभा के सामने के प्रश्न पर अध्यक्ष को चाहिए कि तत्काल मत ले।

प्रस्ताव के अस्वीकृत हो जाने से सभा का निर्णय यह हो जाता है कि अब प्रश्न के ऊपर चर्चा नहीं होती, भाषण नहीं होता, संशोधन नहीं आता, तथा उस पर एकदम मत लेना ही चाहिए। 'सभा के सामने के प्रश्न पर अब मत लिया जाय' इस पूर्व-प्रश्न के प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने पर यही परिणाम होता है और उस अवस्था में भी प्रश्न के ऊपर मत लेना चाहिए। इस प्रस्ताव के अस्वीकृत हो जाने से सभा का यह निर्णय प्रकट हो जाता है कि प्रस्तुत प्रश्न के ऊपर मत न लिया जाय, अतः वह सभा के सामने रहता ही नहीं और वह उपेक्षित हो जाता है। पूर्व-प्रश्न को उपस्थित करने के सवाल को उपेक्षित करने की परिपाटी इस देश में विशेष प्रचलित नहीं। यहाँ सभा-स्थगितीकरण का ही विशेष उपयोग किया जाता। यहाँ की विधान-सभाओं में अथवा नियमबद्ध संस्थाओं के नियमों पर पूर्व-प्रश्न के लिए स्थान नहीं और वैसा प्रचलन भी नहीं। तथापि साधारण संस्थाओं की सभाओं में पूर्व-प्रश्न उपस्थित करने के मार्ग में कोई रुकावट नहीं होनी चाहिए, क्योंकि उनके विरुद्ध वहाँ कोई नियम नहीं होता।

उपेक्षा-सम्बन्धी संशोधन—सभा के सामने के प्रश्न को उपेक्षित करने की रीति यह है, प्रश्न को उपेक्षित करने वाला संशोधन पेश किया जाय और सभा के सामने के प्रश्न पर सभा का मत लेना असम्भव कर दिया जाय। इस प्रकार के संशोधन का उद्देश्य, आमूल अंतर प्रकट करने वाली भाषा को संशोधन में डालकर सभा के सामने के प्रश्न पर मत लिया जाना असम्भव करना होता है। इस प्रकार के संशोधन से मूल और मुख्य विषय एक ओर रह जाते हैं और दूसरे तथा विरुद्ध विषय पर सभा का मत-प्रदर्शन होता है। सर्व साधारण संशोधन इस मुख्य प्रश्न के अनुसार ही होते हैं। यह प्रश्न ऊपर से कैसा भी दृष्टिगोचर क्यों न हो तथापि वस्तुतः वैसा नहीं होता। सभा के सामने के प्रश्न के आरम्भिक शब्दों द्वारा संशोधन पेश किया जाता है। "इस सभा का मत है कि मंत्रि-मण्डल को हटाकर देश के ऊपर राजा साहब ने उपकार किया और उसके सम्बन्ध में यह सभा उनका आभार मानती है"। इस प्रस्ताव पर "इस सभा का मत है कि" इसके आगे के सारे शब्द हटाकर उनकी जगह निम्न शब्दों को डाला जाय "मंत्रि-मंडल ने ऋण-विमोचन, काश्तकारी-कानून इत्यादि कानून बना करके देश की योग्य सेवा की है।" इस प्रकार के शब्द उपस्थित करने से मूल प्रश्न पूर्णतया उपेक्षित हो जाता है और संशोधन-गत विषय के ऊपर मत-प्रदर्शन होता है। ऐसा संशोधन यदि स्वीकृत हो जाय तो पुनः मूल प्रस्ताव के न हटाये हुए शब्द और यह संशोधन इन दोनों से मिलकर तैयार हुए प्रस्ताव

पर मत लिया जाता है। इस रीति से सर्वथा नवीन विषय के ऊपर मत-विभाजन होता है और मूल विषय उपेक्षित हो जाता है।

"राष्ट्र-संघ के काँच-कारखानों के श्रमिकों की सिफारिशों पर इस सभा ने विचार किया है और काँच के कारखाने के श्रमिकों के काम के सम्बन्ध में की गई सिफारिशों को यह सभा-गृह मान्यता नहीं देता।" इस प्रस्ताव पर "विचार किया जा चुका है तथापि" इसके आगे के सारे शब्द हटा दिए जायँ और उनके स्थान पर निम्न शब्द डाले जायँ—"यह सभा उन्हें मान्यता देती है और उसके लिये आवश्यक कानून बनाकर सरकार उन्हें अमल में लाय, ऐसी प्रार्थना करती है।" इस प्रकार का संशोधन आया और वह स्वीकृत हो गया। फिर वह यथार्थ प्रस्ताव का रूप धारण कर लेता है। त मूल प्रश्न पर मान्यता प्रदान करने का विषय समाप्त हो गया और दूसरा ही विषय सभा के सामने आ गया। उसके ऊपर मत-विभाजन हुआ ऐसा माना जाता है। यदि इस प्रकार का संशोधन न लाने दिया गया तो मूल प्रस्ताव बहुमत से अस्वीकृत होगा। बहुमत वाले पक्ष को नया प्रस्ताव सभा के समक्ष उपस्थित करना होगा। इस प्रकार का संशोधन लाने देना अनुचित है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। यदि मूल प्रस्ताव के अनुकूल बहुमत नहीं हुआ तो उसे उपस्थित करने वाला अल्पमत पक्ष, वाद-विवाद के अन्दर अवश्य हार जायगा। तब एक भिन्न प्रकार का प्रस्ताव उपस्थित करके, समय का अपहरण करने की अपेक्षा इस प्रकार का संशोधन पास करके सभा का निर्णय लेना ठीक है। यदि ऐसी अवस्था हो तो बहुमत वाले प्रस्ताव को अस्वीकृत करके, एक दूसरे नये प्रस्ताव के द्वारा स्वीकृत करना चाहते हों तो, वही बात संशोधन के रूप में पेश कर देने से अल्पमत वालों पर किसी प्रकार का कोई अन्याय नहीं होगा। वाद-विवाद के अन्दर अल्प-मत वाले समानता पूर्वक दो-दो हाथ कर सकते हैं। नियमों का फायदा कुछ समय तक उठाया जा सकता है। नियमों का आधार लेकर कुछ काल तक बहु-मत वालों के मार्ग में रुकावट भी पैदा की जा सकती है। नियमों का आधार लेकर सभा का वास्तविक मत-प्रदर्शन अल्प-मत वाले अन्तिम क्षण तक रोक नहीं सकते। ऐसा होने देना उचित भी नहीं। नियमों का यथा सम्भव फायदा उठाने का पूरा अधिकार अल्प-मत वालों को है।

वाद-विवाद के लिए स्थगित प्रस्ताव—सभा के सामने का प्रश्न को सकारण उपेक्षित करने की दृष्टि से स्वीकृत किये जाने वाले मार्गों का विचार हमने ऊपर किया है। बहुत दफा कारण के अभाव में भी सभा के सामने के प्रश्न पर होने वाली चर्चा में रुकावटें उत्पन्न होती हैं। अन्य किसी निश्चित

वश्यक सार्वजनिक प्रश्न पर चर्चा करने के लिए सभा के स्थगित करने व उपस्थित किया जाता है। यह सभा का स्थगितीकरण इसलिए नहीं चालू विषय अथवा अन्य चर्चा बन्द हो जाय, प्रत्युत इसलिए होता क विशिष्ट प्रश्न के ऊपर चर्चा की जाय। विधान-सभा के अतिरिक्त न्य स्थानों पर नहीं है। विधान-सभा में भी जिस विषय की चर्चा करनी वह अत्यावश्यक तथा महत्त्वपूर्ण हो। बासी हो गया हो, बहुत देर हो ो वह अत्यावश्यक नहीं हो सकता। अस्पष्ट विषय से काम नहीं । उसे सार्वजनिक महत्त्व का और विधान-सभा के अधिकार के अन्दर ाहिए। यह स्थगितीकरण का प्रस्ताव नियमानुसार अधिवेशन आरम्भ पहले उपस्थित किया जाय। अधिकारी पक्ष यदि उसके प्रति विरोध करे तो विशिष्ट संख्या में इसे सभासदों का समर्थन मिलना चाहिए। ातें यदि अनकूल रहें तो उस प्रस्ताव पर उस दिन के अधिवेशन के दो घण्टों में चर्चा की जा सकती है। इसके स्वीकृत हो जाने से सभा कर दी जाती है। अस्वीकृत हो जाने से सभा के अवशिष्ट समय में हुए विषय पर चर्चा आरम्भ हो जाती है। तात्पर्य यह है कि इस के आते ही चालू चर्चा स्थगित हो जाती है, उसमें विघ्न उत्पन्न हो ै। इस प्रकार के प्रस्ताव के लाने का उद्देश्य विशिष्ट विषय की ओर का ध्यान आकर्षित करना तथा उस सम्बन्ध में सरकारी नीति की निन्दा होता है। उसका उद्देश्य यह नहीं होता कि सभा का चालू काम बन्द या जाय। परन्तु वैसा थोड़ा-सा प्रभाव अवश्य पड़ता है।

हुत-सी सभाओं के नियमों में सभा का समय निश्चित किया हुआ रहता ह समय समाप्त होते ही उस दिन की हद तक सभा का काम समाप्त हो है। मध्यवर्ती विधान-सभा का अधिवेशन सुबह ग्यारह से लेकर शाम के जे तक होता है। उसके आगे सामान्यता अधिवेशन नहीं होता। सभा अनन्तर भी यदि सभा का काम चालू रखना हो तो सभा की सर्वसाधारण ली जाती है। समय के समाप्त होते ही चर्चा स्थगित हो जाती है और के अनुसार दूसरे दिन अथवा अन्य किसी दिन वह चर्चा फिर आगे हो जाती है। जहाँ यह नियम हो कि अधिवेशन को कब समाप्त किया वहाँ उस समय पर सामान्यतया वह अधिवेशन समाप्त हो जाता है और वहीं रुक जाती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह विघ्न नियम नुसार होता है, परन्तु किसी विशेष उद्देश्य से प्रेरित नहीं होता।

नियम के अनुसार बार-बार सभा के स्थगितीकरण के प्रस्ताव को उपस्थित

करके उत्पन्न किया हुआ विघ्न किसी विशेष उद्देश्य से प्रेरित होता है, यह हम ऊपर कह ही आए हैं। इसी प्रकार चर्चा के स्थगितीकरण का प्रस्ताव बारम्बार उपस्थित करके चर्चा के मार्ग में विघ्न उपस्थित किया जा सकता है। चर्चा के स्थगितीकरण के प्रस्ताव के लिए सभा के स्थगितीकरण के नियम और मर्यादाएँ लागू हैं। कई विधान-सभाओं के नियमों में ऐसा होता है कि एक विषय के ऊपर चर्चा चालू रहते समय केवल एक ही बार चर्चा स्थगित करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा सकता है। मध्यवर्ती विधान-सभा में एक ही प्रश्न की चर्चा में, एक की अपेक्षा अधिक बार चर्चा स्थगित करने का प्रस्ताव लाया जा सकता है। परन्तु दोनों के मध्य में कुछ काल का अन्तर रहना जरूरी है। चर्चा के स्थगितीकरण का प्रस्ताव उस जगह अधिकार पूर्वक उपस्थित नहीं किया जा सकता। उसे उपस्थित करने के लिए अनुमति का देना और न देना यह पूर्णतया अध्यक्ष की मर्जी के ऊपर (डिस्क्रीशन) रहता है। चर्चा के स्थगितीकरण के प्रस्ताव का अभिप्राय यह होता है कि चर्चा को उसी समय समाप्त न किया जाय। एकान्तः चर्चा को होने ही न दी जाय अथवा प्रश्न का निर्णय न होने दिया जाय, ऐसा उसका उद्देश्य नहीं। तथापि अनेक बार सदुद्देश्य की अवहेलना हो जाती है और चर्चा के स्थगितीकरण का प्रस्ताव प्रश्न को उपेक्षित करने वाला, चर्चा के मार्ग में विघ्न उत्पन्न करने वाला सिद्ध होता है। कार्य-क्रम में चालू विषय के अन्तर्गत होने वाला प्रश्न विवादास्पद न हो तो, अथवा कार्य-क्रम के ऊपर कोई विषय ही न हो, तो उस अवस्था में चर्चा के स्थगितीकरण का प्रस्ताव वस्तुतः सभा स्थगितीकरण का प्रस्ताव बन जाता है। फलस्वरूप विषय उपेक्षित हो जाता है।

चर्चा स्थगित हुई कि सभा के सामने का कार्यक्रम समाप्त हो जाता है और सभा भी समाप्त हो जाती है। फिर नई सभा बुलानी पड़ती है, पुनः नोटिस इत्यादि देने आदि का प्रबन्ध करना पड़ता है। सभा-समाप्ति का परिणाम यह होता है कि स्थगित हुआ विषय पूर्णतया प्रसारित हो जाता है। अतएव चर्चा के स्थगितीकरण का यदि यह परिणाम होने वाला हो तो, अनेक संस्थाओं के नियम के अनुसार अध्यक्ष को यह अधिकार है कि वह उसे नामंजूर करे। कम-से-कम इस प्रकार वस्तुस्थिति में, अध्यक्ष को इसका क्या परिणाम होगा इस बात की कल्पना सबके सामने रखनी चाहिए। उपस्थित किया हुआ प्रस्ताव नियम का दुरुपयोग करने के लिए लाया गया है, यदि ऐसा विश्वास हो जाय तो उसे उपस्थित करने की अनुमति न दी जाय और ऐसा करना अनुचित नहीं।

किन्हीं अवसरों पर चर्चा के चालू रहते समय कानून के अनेक प्रश्न और

आक्षेप सभा-संचालन की दृष्टि से उत्पन्न होते हैं। बहुत दफा यह बात बगैर किसी विशेष कारण से प्रेरित हुए ही हो जाती है। तथापि अनेक अवसरों पर किसी प्रकार के क्षुद्र आक्षेप उठाकर सभा के कार्य में, चालू चर्चा, में सकारण विघ्न उत्पन्न किया जाता है। इसी प्रकार सभा के अन्दर सभासद् अनुशासन-हीन होकर व्यवहार करता है, अध्यक्ष की परवाह नहीं करता, गड़बड़ मच जाती है और इस कारण भी सभा के कार्य में अड़चन पड़ती है। विघ्न के दूर होते ही चर्चा को चालू करना अध्यक्ष का कर्तव्य है। चर्चा का अन्त मत-ग्रहण के रूप में और एक बार मत-गणना आरम्भ हो जाने पर फिर चर्चा-स्थगित करने अथवा सभा स्थगित करने अथवा पूर्व-प्रश्न प्रस्तुत करने आदि का अधिकार नहीं रहता।

वाद-विवाद की समाप्ति—वाद-विवाद की समाप्ति स्वयं या चर्चा बन्द करने से होती है। विचार-विनिमय में जब कोई भाग लेने वाला नहीं रह जाता, तब अध्यक्ष प्रस्तावक से उत्तर देने के लिए कहता है और उसके पश्चात् मत-विभाजन होता है। यह चर्चा अपने-आप समाप्त हो गई, ऐसा माना जाता है। परन्तु चर्चा में भाग लेने के लिए सभासद् तैयार हों, कुछ की इच्छा चर्चा को चालू रखने की हो और ऐसे समय जब चर्चा-समाप्ति का प्रस्ताव आय तथा वह स्वीकृत भी हो जाय, उस समय चर्चा बन्द हो जाती है और विवादास्पद प्रश्न पर मत लिये जाते हैं। इन परिस्थितियों में बन्द हुई चर्चा बुद्धि और विवेक द्वारा बन्द हुई मानी जाती है। वाद-विवाद बन्द करने का प्रस्ताव जब सभा स्वीकृत कर ले तो बन्द करना पड़ता है। सभा में भाग लेने का प्रत्येक सभासद् को अधिकार है, फिर भी भाषण देने के लिए तो व्यक्तिगत, विवाद के लिए सामुदायिक दृष्टि से और सभा के लिए सुविधा के खयाल से कुछ-न-कुछ समय की पाबन्दी जरूरी है।

व्यक्तिगत भाषण को सीमाबद्ध करना पड़ता है। एक विषय पर एक व्यक्ति केवल एक ही बार बोल सके, ऐसी व्यवस्था करनी पड़ती है। इतना करने पर भी काम नहीं चलता। स्थानीय संस्थाओं में स्वयं लगभग पचास से ऊपर सभासद् रहते हैं। विधान-सभाओं में सैकड़ों की संख्या में सदस्य होते हैं। इस देश की प्रान्तीय विधान-सभाओं में भी, एक या दो को छोड़कर, प्रायः हर एक में सौ से ऊपर सदस्य हैं। केन्द्रीय विधान-सभा में ४९७ हैं। ब्रिटिश पार्लियामेंट की कामन्स सभा में ६१५ हैं। अन्य संस्थाओं की साधारण सभाओं में भी, बहुत बड़ी संख्या में सदस्य उपस्थित रहते हैं। तात्पर्य यह है कि सब उपस्थित सभासद् एक-एक विषय पर एक-एक बार भी बोलने का निश्चय कर लें

तो भी न जाने कितनी देर तक सभा चालू रहे। सभा की कार्रवाई एक लम्बे समय तक न होती रहे, और विवादास्पद समस्या पर युक्तियुक्त तथा साङ्गोपाङ्ग विचार-विनिमय हो सके—ये बातें उचित समय पर चर्चा बन्द करने से हो सकती हैं।

युक्तियुक्त एवं सांगोपांग चर्चा का अर्थ है, विषय का, सभा के सामने के प्रश्न का, सभी दृष्टियों से और ठीक अनुपात में विवेचन किया जाना। एक ही वक्ता बार-बार वही बात बोलता चला जाय अथवा अन्य वक्ता उसी बात को दोहराते चलें जायँ, यह ठीक नहीं। सभा-भवन के अन्दर कौन-कौन व्यक्ति सभा के सामने प्रस्तुत प्रश्न के सम्बन्ध में, किस-किस विचार-प्रणाली को लेकर बैठा है, इसकी कल्पना अध्यक्ष को रहती है। अतः प्रत्येक विचार-प्रणाली के अथवा सभा में विद्यमान पक्षों में से, एक-एक वक्ता को यदि बोलने का अवसर दे दिया गया, तो प्रश्न के सारे पहलुओं पर सभा के सामने विचार किया गया, ऐसा हो जाता है। बार-बार के पिष्ट-पेषण लम्बे-चौड़े भाषण करके तथा लोगों को ऊबाकर चर्चा पूर्ण हो गई ऐसा समझें तो यह गलत है। सुनने वालों की सहनशीलता की भी सीमा है। जिज्ञासा पूर्ण होगई हो तो चर्चा को चालू रखना ठीक नहीं।

सभा में विद्यमान प्रत्येक अल्पसंख्यक सभासद् को अथवा प्रत्येक पक्ष को अपना दृष्टिकोण उपस्थित करने को उचित अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। किसी को मौका न दिया गया, ऐसी शिकायत करने की नौबत न आय, अध्यक्ष इसका ध्यान रखे। प्रत्येक सभासद् को बोलने का अवसर मिले ऐसा आग्रह करना भी अनुचित है। अध्यक्ष इस बात की सावधानी रखकर चर्चा समाप्त कर दे कि अल्प मत वालों के प्रति किसी प्रकार का कोई अन्याय न हो। उसी प्रकार चर्चा-समाप्ति के नियमों का दुरुपयोग करके चर्चा न होने देने का यदि कोई प्रयत्न करें तो, अध्यक्ष उस प्रयत्न को सफल न होने दे। सभा में प्रस्तुत प्रश्न के साथ ही चर्चा-समाप्ति का प्रस्ताव लाना नियम का दुरुपयोग है। जब तक सभासद् चर्चा में भाग लेने के लिए तैयार हों, भाषण के लिए खड़े होते जाते हों और पर्याप्त, युक्त एवं सांगोपांग चर्चा न हुई हो तब तक अध्यक्ष को चाहिए कि वह चर्चा-समाप्ति के प्रस्ताव को स्वीकार न करे और उसे उपस्थित करने के लिए अनुमति न दे। प्रश्न के प्रस्तुत होने के साथ ही यह प्रस्ताव पेश किया जा सकता है, अतः जब मन में आय तभी उसे अध्यक्ष के पास भेजा जाय और भेजने पर तत्काल उसे अध्यक्ष स्वीकार कर ले, यह बात नहीं। अध्यक्ष तभी यह प्रस्ताव स्वीकार करे जब देखे कि सभा के सामने प्रस्तुत हुए

प्रश्न पर पर्याप्त और साङ्गोपाङ्ग विचार-विनिमय हो चुका है। यह प्रस्ताव कब स्वीकार किया जाय इसे निर्धारित करने का अध्यक्ष को पूर्ण अधिकार है। जब तक उसे स्वीकार न कर ले, तब तक यह प्रस्ताव सभा के सामने उपस्थित नहीं किया जा सकता, यह स्पष्ट है।

कुछ संस्थाओं में चर्चा-समाप्ति के प्रस्ताव पर निर्धारित अल्पमत संख्या के सभासदों ने पक्ष में मत दिया हो तभी वह स्वीकृत होता है, ऐसा निर्धारित नियम है। कामन्स-सभा में, पक्ष में मत देने वालों की संख्या न्यून-से-न्यून १०० होनी चाहिए, अन्यथा वह बहुमत से स्वीकृत होने पर भी नियम से अनुपयोगी सिद्ध होता है। केवल उपस्थित सभासदों में से बहुसंख्यक व्यक्तियों को वह अभीष्ट हो, इसी आधार पर विचार-विनिमय बन्द कर दिया जाय, ऐसा नियम होना उचित है। तथापि यदि वैसा नियम कोई भी न हो तो भी चर्चा-समाप्ति के प्रश्न को कब स्वीकृत किया जाय, यह अध्यक्ष के अधिकार में है। उसने अपने अधिकार का योग्य रीति से पालन किया तो इससे अन्याय नहीं होता। साधारणतया विषय का अध्ययन रखने वाले विशेषज्ञ, प्रमुख सभासद्, तथा पार्टी के नेता आदिकों के भाषण हुए बगैर चर्चा की समाप्ति को स्वीकार न किया जाय।

चर्चा-समाप्ति का प्रस्ताव भाषण के चालू रहते समय विघ्न उपस्थित करके नहीं लाया जा सकता। वक्ता के भाषण के समाप्त होते ही, जिसको चर्चा-समाप्ति का प्रस्ताव पेश करना हो उसे खड़ा हो जाना चाहिए और "चर्चा-समाप्ति का प्रस्ताव मुझे उपस्थित करना है"—ऐसा अध्यक्ष से कहना चाहिए। अध्यक्ष ने यदि इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया हो तो वह उसे उपस्थित करने की अनुमति दे देता है। अनुमति देने के पश्चात् प्रस्तावक को "प्रश्न के ऊपर मत-ग्रहण किया जाय यह प्रस्ताव मैं उपस्थित करता हूँ" ऐसा कहकर उसे पेश करना चाहिए। उसके ऊपर भाषण नहीं किया जा सकता तथा चर्चा नहीं की जा सकती। अध्यक्ष इस चर्चा की समाप्ति के प्रस्ताव पर तत्काल मत-गणना करे। इस प्रस्ताव पर संशोधन पेश नहीं हो सकता। चर्चा-समाप्ति के प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने पर चर्चा बन्द करके सभा में प्रस्तुत प्रश्न पर मत लिया जाता है। चर्चा-समाप्ति के प्रस्ताव पर यदि समान मत आय तो अध्यक्ष को प्रस्ताव के विरोध में, अपना विशेष मत देकर सभा को फिर से चर्चा करने का अवसर प्रदान करना चाहिए और यह नियम ठीक है। जब आधे सदस्य यह कह रहे हों कि चर्चा जारी रखी जाय, उसी समय अपने अकेले के विशेष मत से उसे बन्द करके चर्चा-स्वातन्त्र्य के ऊपर आक्रमण नहीं करना चाहिए।

चर्चा-समाप्ति का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने के पश्चात् प्रस्तुत प्रश्न पर मत-गणना हो। चर्चा-समाप्ति के प्रस्ताव के अतिरिक्त मत नहीं लिया जा सकता। निस्सन्देह अध्यक्ष को इस बात का अधिकार है और यदि कोई इस प्रकार की माँग करे तथा वह अध्यक्ष को उचित प्रतीत हो, तो अध्यक्ष आनुषंगिक प्रश्न के ऊपर एकदम मत लेता है। उदाहरण के तौर पर 'नगर सुधार-समिति नियुक्त की जाय और उसमें अमुक सज्जन रहें। अमुक समय के अन्दर उसे निम्न लिखित बातों के ऊपर रिपोर्ट पेश करनी चाहिए।' इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में, समिति में कौन सज्जन रहें इस सम्बन्ध में तथा कौन-कौन से विषय रहें, इस सम्बन्ध में अनेक संशोधन सभा के सामने आए। उसके ऊपर बहुत देर तक चर्चा होती रही और तत्पश्चात् सभा ने चर्चा-समाप्ति का प्रस्ताव स्वीकृत किया। चर्चा की सुविधा के लिए अध्यक्ष ने प्रथमतः भले ही मुख्य प्रस्ताव एवं सारे संशोधनों को उपस्थित करने दिया, तो भी पहले समिति नियुक्त की जानी चाहिए, इतने ही भाग पर मत लिया जायगा। यह स्पष्ट हो तो उतने ही भाग पर पहले मत लिये जाते हैं। उस भाग के स्वीकृत हो जाने के बाद अवशिष्ट संशोधनों के ऊपर पुनः चर्चा होने देना अथवा न होने देना—यह अध्यक्ष के अधिकार में रहता है। यह चर्चा-समाप्ति का प्रस्ताव 'समिति नियुक्त की जाय' इतने ही प्रश्न के लिए भले ही प्रतीत हो तथापि वह वस्तुतः उसके और तदनुषंगिक सभी प्रश्नों के लिए होता है। केवल समिति नियुक्त की जाय यह प्रश्न यदि सभा मान्य कर ले तो उतने से काम नहीं चलता, विषय-पूर्ण नहीं होता। अतः समिति में कौन-कौन रहें, कौन से विषय हों, इस सम्बन्ध में भी सभा के सामने आए हुए प्रश्न पर मत लिये जाने चाहिएँ। ऐसा करने से मुख्य प्रश्न के ऊपर लिया जाने वाला निर्णय पूर्ण होता है। इन आनुषंगिक प्रश्नों के ऊपर तत्काल मत-गणना हो, इस प्रकार की माँग करने का अधिकार चर्चा-समाप्ति का प्रस्ताव स्वीकृत होने के अनन्तर उपस्थित होता है। एकदम मत लिया जाय अथवा उसके ऊपर कुछ चर्चा होने दी जाय, यह निश्चित करने का अधिकार, जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, अध्यक्ष को है। उचित अवसर पर उसके द्वारा समय का दुरुपयोग न हो और किये हुए निर्णय को पूर्णता प्राप्त हो, इस दृष्टि से एकदम मत लेना उचित है। चर्चा की समाप्ति का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया और मुख्य प्रश्न के ऊपर मत लिया जा चुका, एवं सभा का समय भी समाप्त हो रहा हो तो आनुषंगिक प्रश्न के ऊपर उपरिनिर्दिष्ट परिस्थिति में यदि चर्चा को चालू रखा जाय तो सभा का मुख्य प्रश्न पर लिया निर्णय अर्थ-हीन सिद्ध हो जाता है। बिल की कोई धारा अथवा उसके ऊपर

आया हुआ कोई संशोधन चर्चा-समाप्ति के अनन्तर स्वीकृत होता हो तो कुछ शाब्दिक तथा अन्य प्रकार के संशोधन आवश्यक हो जाते हैं और इस कारण वे सभा के सामने उपस्थित किये जाते हैं। मुख्य धारा अथवा संशोधन के स्वीकृत हो जाने के बाद इन आनुषंगिक संशोधनों पर पुनः चर्चा होने देना व्यर्थ होता है। उनके ऊपर तत्काल मत लेना ठीक है। हाथी बेचने के अनन्तर अंकुश के बारे में घिस-घिस करना बेकार ही समझना चाहिए।

सभा में एक पक्ष, सभा के सामने प्रस्तुत प्रश्न का फैसला करने के लिए खटपट करता रहता है और बहुत दफा विरोधी-पक्ष, सभा की समाप्ति तक उस प्रश्न के ऊपर होने वाली चर्चा को लम्बा खींचने का प्रयत्न करता रहता है। चर्चा को स्थगित करने के प्रस्ताव पर वाद-विवाद दो घण्टे तक चलता है। समय के समाप्त होते ही चर्चा समाप्त हो जाती है और प्रश्न अनिर्णीत रह जाता है। इस समय तथा इस प्रकार के अन्य अवसरों पर, जिस पक्ष को ऐसा प्रतीत होता है कि निर्णय उसके विरुद्ध जायगा, वह पक्ष अनेक वक्ताओं को खड़ा करके चर्चा को लम्बा खींचने का प्रयत्न करता है। एवं प्रश्न के ऊपर भाषण देकर उसे समाप्त करने का यत्न करता है (To talk out the Motion) समय समाप्त होने तक वक्ता समाप्त नहीं होते। समय के समाप्त होते ही सभा समाप्त हो जाती है, चर्चा भी समाप्त हो जाती है और प्रश्न भी गिर जाता है। समय समाप्त होने से पूर्व चर्चा-समाप्ति का प्रस्ताव पेश किया जाय तो तब तक प्रश्न पर विस्तृत चर्चा नहीं हुई होती और चर्चा की समाप्ति को स्वीकार करना अध्यक्ष के लिए कठिन प्रतीत होता है। तथापि सभा समाप्त होने का समय आते ही चर्चा-समाप्ति का प्रस्ताव आ जाय तो अध्यक्ष को उसे स्वीकार करके उस पर मत लेना चाहिए। उस पर अधिक चर्चा होनी आवश्यक हो तो, वह कब होगी और कहाँ होगी और क्या निर्णय उस पर लिया जाना चाहिए, यह सब निर्धारित करने का काम सभा के ऊपर डाला जाय। चर्चा-समाप्ति स्वीकृत हो जाने पर सभा ने अपने-आप ही प्रश्न का निर्णय आगे ढकेल दिया है, अथवा प्रश्न को ही विफल कर दिया है, यह माना जायगा। अध्यक्ष के ऊपर दोष नहीं आयगा और उसने किसी को नियम का दुरुपयोग करने का अवसर दिया है, यह बात भी नहीं होगी।

बहुत दफा सभा के सामने प्रस्तुत प्रश्न पर अनेक संशोधन आते हैं। ऐसे समय चर्चा की समाप्ति का सीधा प्रस्ताव न लाकर प्रस्ताव के अन्तर्गत अथवा किसी संशोधन के किन्हीं हिस्सों पर तत्काल मत लिये जाने का प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है। इसके कारण उतने भाग के स्वीकृत हो जाने पर अनेक संशो-

धन गिर जाते हैं अर्थात् सभा में किये गए निर्णय के कारण उन पर विचार ही नहीं किया जा सकता। "नगर सुधार-समिति दस व्यक्तियों की हो और उसमें अमुक सज्जन रहें" यह प्रस्ताव आया उसके बाद वह पाँच की रहे, पन्द्रह की रहे या बीस की रहे इत्यादि अनेक संशोधन आते हैं, प्रत्येक में कौन-कौन रहे, इसकी तालिका भी आती है। इसी प्रकार मूल प्रस्ताव में दस कौन-कौन व्यक्ति रहे, इस सम्बन्ध में भी अनेक संशोधन पेश किये जाते हैं। इस परिस्थिति में 'नगर-सुधार-समिति दस व्यक्तियों की रहे इस प्रस्ताव पर तत्काल मत लिये जायँ'—इस प्रकार के प्रश्न पेश किये जाते हैं और उनका रूप चर्चा-समाप्ति के समान ही रहता है, उनके स्वीकृत होते ही दस की अपेक्षा कम अथवा अधिक संख्या रहे, ऐसा कहने वाला संशोधन गिर जाता है। चर्चा एकदम सीमित हो जाती है। बिलों की धारा पर अनेक संशोधन आए हुए हों तो 'प्रस्तुत धारा जिस रूप में है उसी रूप में उस पर मत लिये जायँ' इस प्रकार का प्रस्ताव पेश करके चर्चा समाप्त की जा सकती है। इस प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने पर उस धारा के ऊपर मत लिया जाता है, वह स्वीकृत हो जाने पर बिल का भाग हो जाता है और उसके ऊपर के सारे संशोधन गिर जाते हैं। समिति की नियुक्ति की जाय और उसमें अमुक संख्या में सभासद् रहें व अमुक-अमुक रहें और समिति अमुक-अमुक विषय के ऊपर रिपोर्ट पेश करे यह प्रस्ताव, संख्या के बारे में, सभासदों के बारे में, विषयों के बारे में, अनेक संशोधनों की परिस्थिति में तथा समिति की नियुक्ति की जाय, इतने ही भाग पर तत्काल मत लिये जायें' इस प्रकार का प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकता है। उसके पास हो जाने पर उतने भाग पर मत लिया जा सकता है और वह भाग यदि सभा ने नापसन्द किया हो, तो सारे संशोधन समाप्त हो जाते हैं।

चर्चा-समाप्ति का प्रस्ताव प्रत्यक्ष रूप से न उपस्थित करके भी, यह उद्देश्य विशेष प्रस्ताव के सम्बन्ध में, धारा के सम्बन्ध में, सभा के सामने प्रश्न के सम्बन्ध में, उचित प्रतीत होने वाले संशोधनों को चुनकर पेश करने का अधिकार देकर—सिद्ध किया जा सकता है। प्रश्न के ऊपर अनेक संशोधन आते हैं और नियम के अनुसार ये लागू भी होते हैं। विवादास्पद विषय सभा के सामने हो तो संशोधनों की भरमार हो जाती है। विवादास्पद विषय यदि बिल हो तो उसकी प्रस्तावना से लेकर परिशिष्ट पर्यन्त प्रत्येक धारा और उपधारा भी संशोधनों से नहीं बच पाती। सामान्य अधिकार के अनुसार अध्यक्ष नियमानुसार हुए संशोधनों को अस्वीकार नहीं कर सकता। उनको उपस्थित करने देना उसके लिए आवश्यक हो जाता है। और इस प्रकार के सारे संशोधन

उपस्थित करके उन पर वाद-विवाद-मत-गणना इत्यादि बातों के होने से, चर्चा लम्बी हो जाती है और समय व्यर्थ होता है। इस प्रसंग में अध्यक्ष को महत्त्व के विषयानुकूल तथा निर्णयात्मक संशोधनों को चुनकर ही उपस्थित करने की अनुमति का विशेष अधिकार देना सर्वथा उचित है। कामन्स-सभा में अध्यक्ष को इस प्रकार का अधिकार देने का नियम है। जैसी परिस्थिति में चर्चा-समाप्ति का प्रस्ताव लाया जा सकता है वैसी परिस्थिति में 'सभासद् को सभा के सामने के प्रश्न के ऊपर अथवा तद्गत विशिष्ट भागों के ऊपर अथवा शब्द के ऊपर आए हुए संशोधनों में से योग्य संशोधनों का चुनाव करके, अध्यक्ष उन्हीं को उपस्थित करने की अनुमति दे।' यह प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकता है और उसके स्वीकृत होते ही अध्यक्ष अपने विशेष अधिकार द्वारा संशोधनों का चुनाव करता है। इस प्रस्तावके ऊपर कम-से-कम १०० सभासदों की ओर से अनुकूल मत आने चाहिएँ और वह स्वीकृत होना चाहिए तभी यह अधिकार प्राप्त होता है, ऐसा कामन्स-सभा का नियम है। इस प्रकार की सीमा लगाकर या न लगाकर कुछ चुने हुए संशोधन उपस्थित करने की अनुमति देने का अधिकार अध्यक्ष को रहना चाहिए। इस प्रकार का यदि नियम हो तो बहुत अच्छा है, नहीं हो तो योग्य अवसर पर सभा को चाहिए कि वही प्रस्ताव प्रस्तुत करके, जिस विधि का हम ऊपर उल्लेख कर आए हैं उसविधि के अनुसार उसे अधिकार प्रदान करे।

इस अधिकार में और कौन सा संशोधन पहले उपस्थित करने दिया जाय और किसके ऊपर पहले मत ग्रहण किया जाय, इस अधिकार में अन्तर है। पहले में चर्चा-समाप्ति की योजना है। दूसरे में केवल चर्चा एवं मत-गणनाका क्रम निर्धारित करने की योजना है। पहला अधिकार विशेष परिस्थिति में देना पड़ता है और दूसरा अधिकार अध्यक्ष के सर्व सामान्य अधिकारों के अन्दर ही समाविष्ट होता है, उसे देने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। इंगलैंड में इधर कुछ समय से पहला अधिकार भी इस प्रकार का प्रस्ताव उपस्थित करके देने की आवश्यकता नहीं रह गई है। (ई० सन् १६२६) अध्यक्ष को यदि अवसर अनुकूल प्रतीत होगा तो उसके अनुसार वह घोषित करके संशोधनों का चुनाव करता है और चुने हुए संशोधन जिन व्यक्तियों के होते हैं, उन्हें उनको उपस्थित करने के लिए आमन्त्रित करता है। अधिकार पहले ही से उसे प्राप्त हो अथवा दिया गया हो। अध्यक्ष को इस दृष्टि से संशोधनों का चुनाव करना चाहिए और संशोधनों के उपस्थित करने के लिए आमन्त्रित करना चाहिए, जिनके द्वारा चर्चा मर्यादित हो और किसी प्रकार की पुनरुक्ति न हो सके।

चुनाव क्यों किया गया है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार न चुने गए संशोधन लागू नहीं है। ऐसा भी निर्णय देने की कोई आवश्यकता नहीं। न चुने हुए संशोधन एक ओर फेंक दिए जाते हैं। तथापि चुने हुए संशोधन के ऊपर की गई चर्चा से और निर्णय से उनके ऊपर भी उचित विचार-विमर्श किया जाता है, ऐसी वस्तु-स्थिति है। संशोधनों को चुनने के अधिकार के अन्दर, चुने गए संशोधनों पर आने वाले संशोधनों को चुनने का अधिकार समाविष्ट है। संशोधनों के ऊपर भी अनेक संशोधन आया करते हैं "गण्डस्योपरि अविस्फोटः" यह रोग वाद-विवाद में भी होता है। संशोधन अथवा उसके ऊपर के संशोधनों को चुनते समय संशोधक से उसके संशोधन के बारे में स्पष्टीकरण माँगने का, उसके महत्त्व को अवगत कर लेने का अधिकार अध्यक्ष को है। उसके आज्ञा करने पर ही संशोधक इस प्रकार का स्पष्टीकरण कर सकता है। योग्य चुनाव करने की दृष्टि से यह योजना उचित ही है। चुनाव करने के अनन्तर चुने हुए संशोधनों को ही उपस्थित किया जा सकता है। उनके ऊपर ही चर्चा होती है एवं उनके ऊपर ही मतग्रहण होता है। न चुने गए सारे संशोधन गिर जाते हैं, बेकार हो जाते हैं। इस पद्धति की चर्चा-समाप्ति को विनोद से 'काँगरू-पद्धति' कहते हैं। यह पशु छलाँगें मारता हुआ चलता है। इसी प्रकार संशोधनों का चुनाव सरल मार्ग से न होकर मंजिल-पर-मंजिल होता है। अतः यह विनोदी नाम इसके लिए यथार्थ ही है।

विशिष्ट विषय की चर्चा के लिए निर्धारित समय देकर चर्चा को मर्यादित करने का जो प्रकार है उसका उल्लेख पहले आ चुका है। चर्चा के स्थगितीकरण के प्रस्ताव पर वाद-विवाद दो घंटे ही चलता है, उसके पश्चात् वह बन्द हो जाता है। बजट के ऊपर होने वाला वाद-विवाद, माँगों के ऊपर की जाने वाली चर्चा निश्चित दिनों के अन्दर ही समाप्त हो जानी चाहिए। यदि समाप्त न हुई तो आखिर के दिन मत-गणना की जाती है। चर्चा-स्थगितीकरण अथवा सभास्थगितीकरण अन्य किसी प्रकार का विघ्न उत्पन्न करने वाला प्रस्ताव नियम से बाहर रहता है। निर्धारित काल के अन्दर समाप्त होने वाली चर्चा की योजना में भी चुनींदे संशोधन उपस्थित करने का अधिकार अध्यक्ष को रहे, यह उचित होता है और वैसा अधिकार कामन्स-सभा में है। बजट की माँगों के ऊपर सैकड़ों की तादाद में कटौतियाँ सुझाई जाती हैं। सभा के अन्तर्गत दलों में समझदारी के साथ यदि काम किया गया तो किन्हीं महत्त्वपूर्ण कटौतियों के ऊपर ही चर्चा की जाती है। अन्यथा जिस प्रकार वह दिये गए हों, उसी क्रम से उनके ऊपर चर्चा करने की अनुमति देना अध्यक्ष के लिए

अपरिहार्य हो जाता है। महत्त्व का विषय एक ओर रह जाय, इस बात की भी सम्भावना रहती है। इस परिस्थिति में अध्यक्ष को चुनाव करने का अधिकार रहे तो वह कुछ बुरी बात नहीं है। पर उसका अधिक-से-अधिक उत्तम रीति से उपयोग होना ठीक है। चर्चा सीमित रहे, इसके लिए चर्चा-काल का निर्धारित करना जैसा इष्ट है वैसा ही उस काल का ठीक उपयोग किया जाय—ऐसी योजना का रहना अथवा किया जाना उतना ही इष्ट है।

स्थानिक स्वायत्त संस्थाओं के बजट पर होने वाली चर्चा के लिए नियमों में भले ही काल-मर्यादा न बाँधी गई हो, तो भी सभा को चाहिए कि वह सभा के प्रारम्भ में ही उस काल-मर्यादा को निश्चित कर दे। सामान्य चर्चा, विषय वार चर्चा, इस प्रकार का विभाग करके काम यदि किया जाय; तो उसमें सुलभता होती है। करोड़ों तथा लाखों रुपये का बजट पाँच मिनट के अन्दर ही स्वीकृत कर लिया जाय इसमें कार्यक्षमता नहीं, बल्कि सार्वजनिक हित के ऊपर अन्याय है। इसी प्रकार तीन-तीन महीने तक बजट को लटकाए रखने में भी कोई सार्वजनिक हित सिद्ध नहीं होता। अतएव काल-मर्यादा को निश्चित करके उस अथवा उस-जैसे महत्त्व के प्रश्न का निर्णय कर लेना सर्वथैव योग्य है। अनेक संस्थाओं की सभाओं में मौलिक संविधानात्मक अथवा समान महत्त्व के प्रश्न उपस्थित होते हैं। उस समय किसी प्रकार की योजना बनाकर यदि चर्चा के काल को मर्यादित कर लिया जाय तो चर्चा विस्तृत न होकर प्रमाणबद्ध होती और उकताने वाली नहीं होती। समय को निश्चित करना अथवा उसके विभाग करना, इस योजना में चर्चा-समाप्ति का ही भाग रहता है, यह सत्य है; परन्तु इसमें किसी प्रकार का कुछ अन्याय होता है, ऐसी बात नहीं।

निष्कारण चर्चा में समय नष्ट न हो इसलिए बहुत दफा विधान-सभा में अनेक धाराओं पर अथवा सम्पूर्ण परिशिष्ट के ऊपर अध्यक्ष एकदम मत लेता है। जिन पर संशोधन नहीं हैं, परन्तु जो क्रमशः आने वाली हैं, ऐसी अनेक धाराओं के ऊपर एकदम मत लेने का अधिकार भी कभी-कभी अध्यक्ष को रहता है। प्रत्येक धारा को पढ़ने और उसके ऊपर मत लेने में समय नष्ट करने की अपेक्षा संशोधन के अभाव में उन पर एकदम मत लेकर, उनका फैसला कर देना श्रेयस्कर होता है। यही बात संशोधन-विहीन परिशिष्ट के सम्बन्ध में भी उचित साबित होती है। इस पद्धति को ठीक प्रसंग पर अन्य संस्थाओं के सभा-कार्यों में भी यदि स्वीकृत किया जाय तो कोई आपत्ति नहीं। संशोधन के अभाव में व्यर्थ ही में धारा को क्रमशः उपस्थित करना और निरुपयोगी एवं

अर्थहीन चर्चा को अवसर देना इष्ट नहीं होता। सर्व सामान्य भाषण में धारागत तत्त्वों पर विचार-विमर्श किया जाता है। जिसको विरोध करना होता है उसने भी तात्त्विक दृष्टि से अपना विरोध प्रदर्शित किया होता है। अतएव एकदम इकठ्ठे ही उनके ऊपर मत लेने से काम में विघ्न नहीं पैदा होता। इस पद्धति से अप्रत्यक्ष चर्चा-समाप्ति होती है। जिस धारा के ऊपर अथवा भाग के ऊपर संशोधन आए हुए हों वहाँ इस योजना से चर्चा की समाप्ति नहीं होती। अतएव इस योजना में अथवा पद्धति में किसी प्रकार का अन्याय किया जाता है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

संशोधन—सभा के सामने प्रश्न किस प्रकार आता है, उसे किस प्रकार उपेक्षित किया जा सकता है, ऊपर होने वाली चर्चा के अन्दर विघ्न किस प्रकार उत्पन्न होते हैं, होने वाली चर्चा कब खण्डित होती है, तथा कब समाप्त होती है इत्यादि का विचार हमने अब तक किया। सभा के सामने प्रश्न उपस्थित होने के बाद उस पर चर्चा होती है। उपस्थित किया हुआ प्रश्न सभी को पसन्द या नापसन्द होता है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। उसमें थोड़ा-सा फेर-फार करने से पसन्द करने वालों की संख्या बढ़ जाती है और नापसन्द करने वालों की कम हो जाती है। संशोधन का उद्देश्य प्रश्न के अन्दर परिवर्तन करके जो लोग परिवर्तन न होने पर तटस्थ रहते है। अथवा जिन्होंने विरोध किया, ऐसे लोगों को परिवर्तन करके संशोधित प्रश्न के पक्ष में ले आना होता है। सभा के सामने प्रश्न के उपस्थित होने पर उसे मान्यता देने वाले, उसका विरोध करने वाले तथा तटस्थ रहने वाले इस प्रकार के तीन वर्ग रहते हैं। संशोधनगत प्रश्नों में दुरुस्ती सुझाकर तटस्थ एवं विरोधी वर्ग के लोगों का, प्रश्न के पक्ष में अधिकाधिक अनुकूल मत बनवा लेना होता है। इस प्रकार के परिवर्तन सुझाने वाला संशोधन न हो तो तटस्थ लोग तटस्थ रह जायँगे और विरोधी विरोध करेंगे या अपना खुद का कोई वैकल्पिक प्रस्ताव सभा के सामने उपस्थित करेंगे। इस प्रकार के वैकल्पिक प्रस्ताव का, जिसका स्वरूप मूल प्रस्ताव से सर्वांशतः अथवा अंशतः विरोधी है, मूल प्रश्नगत औपचारिक शब्दों को तद्वत् रखकर, शब्दों को निकालकर, उनके स्थान पर इस स्ताव में आने वाले शब्द डाले जायँ—इस प्रकार का संशोधन सभा के सामने उपस्थित किया जा सकता है। सभा के सामने वाद-विवाद के लिए मूल प्रश्न और यह वैकल्पिक संशोधन, इस प्रकार दो बातें रहती हैं। फिर उनमें से एक का चुनाव करना पड़ता है। दोनों में समन्वय नहीं हो सकता। 'राष्ट्रसंघ की सिफारिशों पर विचार करके सभा निज मत प्रकट करती है कि काँच के कारखाने के श्रमिकों के सम्बन्ध में

की गई सिफारिशें अमान्य हैं।' इस प्रस्ताव पर "मत प्रदर्शित करती है कि" यहाँ के शब्दों को रखकर अगले शब्द हटा दिए जायँ और उनके स्थान पर आगे यह शब्द डाल दिए जायँ कि "काँच के कारखाने के श्रमिकों के सम्बन्ध में की गई सिफारिशें मान्य हैं, और उनको अमल में लाने के लिए सरकार को आवश्यक कानून तत्काल बनाना चाहिए" इस प्रकार का संशोधन किया जाय तो दो विकल्प, दो योजनाएँ सभा के सामने विचार के लिए उपस्थित होती हैं। उनमें से एक का चुनाव करना होता है। उनमें समन्वय नहीं हो सकता। सादे संशोधन का उद्देश्य, इस प्रकार वैकल्पिक संशोधन टालकर मुख्य प्रस्ताव के पक्ष में विरोधी और तटस्थ दोनों को ले आना है। वैकल्पिक संशोधन यदि मान्य कर लिया जाय तो मूल प्रस्ताव स्वतः समाप्त हो जाता है। उसे अमान्य कर दिया जाय तो मूल प्रश्न पर संशोधन उपस्थित करने वालों का विरोध रहने पर भी वह स्वीकृत हो जाता है। अन्य संशोधनों को यदि समन्वय करने का प्रयत्न कहा जाय तो कुछ अनुचित न होगा।

संशोधन, सभा में प्रस्तुत प्रश्न पर आते हैं। सभा के सामने आने वाले प्रश्न के बारे में जैसे बहुत-सी संस्थाओं में नियम बने रहते हैं, उसी प्रकार संशोधन के सम्बन्ध में भी रहते हैं। किन्हीं संस्थाओं में संशोधन की अग्रिम सूचना देनी होती है और कितने समय पहले यह सूचना दी जाय इसके सम्बन्ध में भी नियम बने रहते हैं। संशोधन के ऊपर संशोधन पेश करने के लिए अग्रिम सूचना देनी हो, वहाँ वह लिखित और हस्ताक्षर सहित देनी पड़ती है। जिसने सूचना दी है उसी को उसे उपस्थित भी करना पड़ता है। जहाँ सूचना के सम्बन्ध में नियम नहीं वहाँ एक ने संशोधन पेश किया और उसका कार्यक्रम में उल्लेख हो, तो उसे अन्य व्यक्ति भी उपस्थित कर सकता है। विधान-सभा में बिलों तथा प्रस्ताव आदि के सम्बन्ध में अग्रिम सूचना की व्यवस्था होने के कारण चर्चा को भी व्यवस्थित रूप प्राप्त होता है। अन्य संस्थाओं में भी बजट, अन्य महत्त्व के अथवा संविधानात्मक प्रश्न जिस समय चर्चा के लिए उपस्थित होंगे, उस समय संशोधन अग्रिम सूचना देकर यदि उपस्थित किया जाय तो उसमें कुछ बुराई नहीं। तो भी विषय को उपस्थित करने के बाद, उस पर विचार करने का समय आगे बढ़ाकर संशोधन लिखित रूप में देने का समय, एक प्रस्ताव द्वारा निश्चित किया जा सकता है। नियत समय में आए हुए संशोधन यदि पहले ही छापकर चर्चा के समय सभासदों के हाथों में आ जायँ तो विचार-विनिमय में सुविधा होगी। ऐन मौके पर आने वाले अनेक संशोधनों प ठीक ढंग से विचार-विनिमय नहीं हो पाता—यह कई बार अनु-

भव में आ चुका है। सभा के सामने का प्रश्न महत्त्व का हो अथवा अन्य रूप में हो, संशोधन अध्यक्ष को लिखित रूप में ही लेने चाहिएँ और उनके ऊपर सभासदों के हस्ताक्षर भी हों। एक दिन की बैठक में भी संशोधनों को उपस्थित करने के लिए अध्यक्ष सभा की सम्मति से समय निर्धारित करें। उस अवधि के अन्दर जो संशोधन आयँगे उन्हें उपस्थित करने की अनुमति दी जाय। इस रीति से नियम की पाबन्दी लगने पर वाद-विवाद में सुविधा होती है। पाँच-दस मिनट का समय सामान्य प्रश्न के ऊपर संशोधन पेश करने के लिए देना पर्याप्त होता है।

सभा के सामने प्रस्तुत प्रश्न यथा-रीति चर्चा के लिए, अध्यक्ष द्वारा उपस्थित किये जा चुकने के पश्चात् संशोधन पेश करने का अधिकार प्राप्त होता है। प्रस्ताव उपस्थित किया गया, नियम के अनुसार यदि अनुमोदन आवश्यक हो और वह मिल गया, अध्यक्ष ने उस प्रस्ताव को पढ़कर सुनाया अथवा सभा के सामने यह घोषित किया कि अब इसके ऊपर चर्चा की जा सकती है तो उस समय संशोधन उपस्थित किये जा सकते हैं, उससे पहले नहीं। कारण, उससे पहले सभा के सामने का प्रश्न नहीं होता और इसीलिए उसके ऊपर संशोधन पेश नहीं किया जा सकता। ज्यों ही चर्चा के लिए प्रश्न उपस्थित किया जाय, त्यों ही संशोधकों को उठकर खड़ा हो जाना चाहिए और अध्यक्ष के बुलाने पर अपना संशोधन उपस्थित करना चाहिए। कार्य-क्रम में संशोधन के उल्लेख-मात्र से ही तत्काल अथवा अन्य वक्ताओं से पहले, भाषण करने का अवसर संशोधक को नहीं मिलता। अनेक व्यक्तियों को भाषण के लिए उठकर खड़ा होने का अधिकार है। नियम यह है कि जिसे अध्यक्ष आमंत्रित करे भाषण वही दे। किसी वक्ता का भाषण होता हो तो उस समय उसे रोककर संशोधन पेश नहीं किया जा सकता। सामान्यतया अध्यक्ष को चाहिए कि वह संशोधन औपचारिक रीति से उपस्थित करने दे और तदनन्तर साधारण चर्चा के लिए अवसर प्रदान करे। उचित क्रम से संशोधकों को आमंत्रित करे। जहाँ एक-एक करके संशोधनों को लेकर उनका फैसला करना आवश्यक होता है, वहाँ भी अध्यक्ष जब तक आमंत्रित न करे तब तक संशोधन उपस्थित नहीं किया जा सकता। कार्य-क्रम में संशोधन जिस क्रम से छपा हुआ है, उसी क्रम के अनुसार संशोधकों के खड़े होने पर अध्यक्ष उन्हें आमंत्रित करता है। क्रम आने पर ही संशोधक यदि उठकर खड़ा न हुआ हो तो उसका अधिकार छिन जाता है और फिर वह अपना संशोधन पेश नहीं कर सकता। बिल के ऊपर होने वाली चर्चा में अनेक संशोधन आते हैं और वे जिस क्रम से आते

हैं, उसी क्रम से अध्यक्ष उन्हें लेता है। उस क्रम में यदि कोई परिवर्तन करना हो तो उसके लिए सभा की सम्मति लेनी चाहिए।

संशोधनों को अनेक संस्थाओं में और विशेषतः विधान-सभाओं में अनुमोदन की आवश्यकता नहीं होती। जहाँ इस सम्बन्ध में नियम न हो वहाँ अनुमोदन का होना अभीष्ट है और वैसी ही प्रथा भी है। सर्वथा औपचारिक स्वरूप के अन्दर शाब्दिक संशोधन है तो अनुमोदन की आवश्यकता नहीं। अनुमोदन के अभाव में संशोधन गिर जाने की अपेक्षा उस पर यदि चर्चा हो और वह अस्वीकृत हो जाय तो निर्णयात्मक बात होती है। अतः महत्त्व के एवं उचित प्रसंग में अनुमोदन के बगैर नियम भंग नहीं होता है तो संशोधन को पेश करने की नीति उत्तम साबित होती है। संशोधन की शब्द विधियाँ होती हैं:—

(१) मूल प्रस्ताव तथा शब्दों को हटा देना।

(२) शब्दों को हटाकर उनकी जगह दूसरे शब्द डालना।

(३) अधिक शब्द डालना अथवा वृद्धि करना।

मूल प्रस्ताव के कुछ शब्दों को हटा दिया जाय, इस प्रकार का और इतना ही यदि संशोधन हो, तो उस समय अध्यक्ष को मत के समय एक प्रश्न पढ़ना चाहिए और "अमुक शब्द हटा दिया जाय इस प्रकार का संशोधन आया है," ऐसा कह कर "इतने ही के लिए सुझाए गए शब्द बने रहें" इस प्रश्न के ऊपर मत लेने चाहिएँ। सभा ने यदि यह निर्णय दिया है कि वे शब्द बने रहें तो मूल प्रश्न जैसा था वैसा सभा को पसन्द है—यह प्रश्न बन जाता है। उसके बाद अध्यक्ष को चाहिए कि वह इस मूल प्रश्न पर सभा का मत ले। 'हटाने के लिए सुझाए गए शब्द बने रहें' यह यदि सभा ने अस्वीकृत कर दिया तो अध्यक्ष को मूल प्रश्न के उन शब्दों को हटाकर, जो भाग बच गया है उस पर मत लेने चाहिएँ। "व्यक्त किया गया सुझाव अपूर्ण, अधूरा एवं अस्वीकार्य है तथापि उस सभा की सम्मति है कि देश हित की दृष्टि से उस पर अमल किया जाय, यह सभा के सामने का प्रश्न इसे 'व्यक्त' शब्द से लेकर 'तथापि' शब्द तक का सारा भाग हटा दिया जाय'—यह संशोधन आया हुआ हो तो अध्यक्ष को चाहिए कि वह 'हटाने के लिए सुझाए हुए शब्द बने रहें' इस पर मत ले। 'शब्द बने रहें' ऐसा यदि सभा का मत हो हो तो मूल प्रश्न जैसा है उस पर मत लिया जाय। 'शब्द न रहें' ऐसा यदि मत हो जायगा तो उन शब्दों को हटाकर उस सभा का मत 'इत्यादि' भाग पर ही लिया जाय। केवल संशोधन के लिए अस्पष्ट, अनुकूल

और प्रतिकूल कौन है, ऐसा प्रश्न नहीं पूछना चाहिए। अनेक सभाओं में केवल 'यह शब्द हटा दिया जाय'—यह संशोधन है, इस प्रकार अध्यक्ष कहता है और उसके ऊपर मत लेता है लेकिन यह रीति भी उचित नहीं। परन्तु इतने के लिए 'सुझाए गए शब्द बने रहें'—ऐसा प्रश्न सभा के सामने उपस्थित करने से सभा के लिए मत लेना स्पष्ट हो जाता है। कामन्स-सभा में और बहुत-सी विधान-सभाओं में यही रीति है।

संशोधन के शब्दों को हटाकर उनकी जगह दूसरे नवीन शब्द डाले जायँ अथवा जोड़े जायँ, तो अध्यक्ष हटाने के लिए 'सुझाये गए शब्द बने रहें' इस प्रश्न पर मत ले। सभा ने यदि उसे मान्य कर लिया तो मूल प्रश्न जैसा है उस पर मत लिया जाय। सभा ने यदि हटाने के लिए 'सुझाए गए शब्द बने रहें' इस प्रश्न को यदि अस्वीकार कर दिया तो 'सुझाए गए शब्द हटा दिए जायँ अथवा जोड़े जायँ', इस प्रश्न पर मत लिया जाय। वह स्वीकृत हो गया तो फिर सुझाए हुए शब्द उसमें डालकर अथवा जोड़कर मुख्य प्रश्न पर मत लिया जाय। ऊपर के प्रस्ताव में 'व्यक्त शब्द से लेकर तथापि शब्द तक सब शब्दों को हटा दिया जाय और उसकी जगह देश की विद्यमान स्थिति में प्रस्तुत किये गए सुधार प्रगतिकारक हैं अतः ये शब्द डाल दिए जायँ एवं उनको अमल में लाया जाय' इसके सामने निम्न शब्दों को जोड़ दिया जाय—"उनके सफल बनाने के लिए यथा-शक्ति सहयोग की भावना से काम लिया जाय। उसके अस्वीकृत हो जाने पर सुझाए गए शब्द डाले जायँ अथवा जोड़े जायँ" इस प्रश्न पर मत लिया जाय और उसके स्वीकृत हो जाने पर संशोधित प्रश्न के ऊपर मत लिया जाय। यह पद्धति ठीक है। अध्यक्ष ने ऐसा संशोधन पढ़कर जिस रूप में वह है यदि उसी रूप में मत लिये तो सभा के सामने सारी परिस्थिति स्पष्ट नहीं होगी। पहली पद्धति में कुछ देर अवश्य लग गई तो भी उससे लाभ ही हुआ है। मत-दान में सुविधा होती है। यह संशोधन केवल—"शब्द डाले जायँ, इतना ही जोड़ा जाय" ऐसा है वहाँ अध्यक्ष को चाहिए कि वह 'सुझाए शब्द जोड़े जायँ' इस प्रश्न पर मत ले। इस प्रश्न के स्वीकृत हो जाने पर संशोधित प्रश्न के ऊपर मत ले। अस्वीकृत हो जाने पर मूल प्रश्न जिस रूप में है, उस रूप में ही उस पर मत ले। ऊपर के प्रस्ताव पर 'अमल में लाया जाय' इस शब्द के सामने यह शब्द जोड़ा जाय 'यह संशोधन स्वीकार हो तो सुझाए हुए शब्द जोड़े जायँ' इस प्रश्न के ऊपर मत ले।

कई बार सभासद्, संशोधन तथा मूल प्रस्ताव या प्रश्न दोनों के विरोध में होते हैं। वह उन दोनों के विरुद्ध मत देते हैं। तथापि दाव-पेंच की दृष्टि से

संशोधन के पक्ष में मत देकर संशोधित प्रस्ताव के विरोध में मत देना और उसको अस्वीकृत करना अधिक श्रेयस्कर सिद्ध होता है। ऊपर निर्दिष्ट प्रश्न जिन को पसन्द नहीं उन्हें चाहिए, वे संशोधन को इस दृष्टि से देखें कि वह अधिक लोगों को नापसन्द हो जाय। वैसा ही प्रस्ताव बना रहे तो अनेक सदस्य तटस्थ रहेंगे। कितने ही, पहले भाग के ऊपर प्रसन्न होकर प्रस्ताव के पक्ष में अपनी सम्मति देंगे। अतएव 'प्रगतिकारक है' इत्यादि शब्द डालने वाला संशोधन यदि स्वीकृत हो गया हो तो वे अप्रसन्न होंगे, यह स्पष्ट ही है। जिन्हें प्रस्ताव एवं सारे संशोधन का विरोध करना है, उन्हें इस प्रकार के सारे संशोधन का समर्थन करके उसे स्वीकार करना चाहिए ताकि संशोधित प्रस्ताव अधिक उपयोगी हो जाय। संशोधन का समर्थन इसलिए न हो कि वह खुद को पसन्द है, अपितु उसके स्वीकृत हो जाने से संशोधित प्रस्ताव का पूर्ण रीति से विरोध किया जा सकेगा, इस खयाल से करना चाहिए। संशोधन स्वीकृत हो गया और संशोधित प्रश्न के ऊपर मत लिया जाने लगा तो जो संशोधन के विरोधी थे वे तो संशोधन का विरोध करेंगे ही परन्तु उसका जिन लोगों ने ऊपर निर्दिष्ट दृष्टि से समर्थन किया है, वे भी विरोध करेंगे। इसके अतिरिक्त समस्त प्रस्ताव संशोधित हो जाने के कारण अप्रसन्न व्यक्ति भी विरोध करेंगे एवं इस रीति से विरोधियों का बल बढ़ता जाता है। दाव-पेंच की दृष्टि से संशोधन पर किया गया समर्थन कोई वास्तविक समर्थन नहीं है और यदि वह इस प्रकार किये भी गए हों तो उसमें अनुचित भी कुछ नहीं।

अनेक संशोधन आते हैं और मत ग्रहण करते समय एवं चर्चा के समय यदि योग्य नियमन न रहे तो गड़बड़ी पैदा हो जाती है। कुछ इस प्रकार का निर्णय हो जाता है कि जिसकी किसी को उम्मीद भी नहीं थी। अतएव चर्चा का नियमन व्यवस्थित रीति से किया जाना ठीक है। शब्दों को हटाया जाय, जोड़ा जाय या डाला जाय—इस प्रकार यदि संशोधन हो तो हटाए जायँ या जोड़े जायँ, इसके ऊपर चर्चा को मर्यादित करना चाहिए। शब्दों को हटाकर उनके स्थान पर दूसरे शब्द डाले जायँ, इस प्रकार का संशोधन आए तो चर्चा का क्षेत्र अधिक विस्तृत हो जाता है, यह स्पष्ट है। शब्दों को हटाने वाले अथवा जोड़ने वाले संशोधन पर पहले विचार किया जाना चाहिए और पहले उन पर मत लिये जायँ। तत्पश्चात् शब्दों को हटाकर उनके स्थान पर दूसरे शब्द डालने वाले संशोधन पर विचार हो। उचित क्रम से चर्चा अथवा मत-गणना न हुई, तो निर्णय कुछ नहीं हो पाता और न तात्पर्य ही पूरा होता है। ऊपर के प्रश्न में 'अमल में लाया जाय' इसे हटाकर 'अनुचित है' यह शब्द डाला

जाय, इस प्रकार एक और संशोधन आया और सारे संशोधन पर एक ही समय में चर्चा की गई। फिर यथा-क्रम मत-गणना नहीं हुई तो पहला संशोधन स्वीकृत तथा दूसरा और तीसरा अस्वीकृत होकर ऊपर के चौथे संशोधन में 'अमल में लाया जाय'—यह वाक्य न रहे अगर ऐसा सभा का मत हो तो वह आपत्तिजनक होगी।

सभा के सामने आने वाला संशोधन सभा के सामने विद्यमान प्रश्न के अनुरूप होना चाहिए और संशोधन उसी प्रश्न की सीमा में हो। इसी प्रकार संशोधन-गत विषय नियम के अनुसार संशोधन द्वारा उपस्थित किया जाने योग्य होना चाहिए। सभा की कार्रवाई के कुछ नियम होते हैं। जानकारी हासिल करनी हो तो प्रश्न पूछकर उसे हासिल करना होता है। सभा के अथवा चर्चा के स्थगित करने का प्रस्ताव सभा के सामने प्रस्तुत करना पड़ता है। संशोधन द्वारा यह बात नहीं की जा सकती। अधिकारारूढ़ पक्ष के ऊपर अथवा व्यक्ति पर यदि असन्तोष प्रकट करना है; तो इस प्रकार का प्रश्न लाया जाना उचित है। किसी भी विषय की चर्चा में संशोधन उपस्थित करके यह बात नहीं की जा सकती और करना उचित भी नहीं। संशोधन नहीं लाया जा सकता, कार्य-समिति का कार्य नापसन्द है अतः यह संशोधन कि 'सभा स्थगित कर दी जाय'—इस प्रस्ताव का लाना नियम-विरुद्ध है। तात्पर्य यह है कि सभा के सामने के प्रश्न पर नियमानुसार संशोधन-गत विषय उपसूचना के रूप में दिया जा सके, ऐसा होना चाहिए।

सभा के सामने के प्रश्न को लेकर ही संशोधन होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि सभा के सामने के प्रश्न और संशोधन में कुछ-न-कुछ समानता हो। प्रश्न के अन्तर्गत विषय के विपरीत कोई अन्य विषय, संशोधन द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। 'कमेटी सार्वजनिक उपयोग के वास्ते एक मध्यवर्ती क्रीड़ांगण तैयार कराए और उसके लिए अमुक जगह खुद के खर्च से अथवा सरकार के खर्च से खरीद ले'। इस प्रस्ताव पर "आधा क्रीड़ांगण शहर के पूर्व भाग में रहे ऐसा स्थान लिया जाय" ये शब्द 'अमुक जगह' के स्थान पर डाले जायँ, यह संशोधन ठीक है। प्रस्तावगत विषय का भाव व्यायाम की सार्वजनिक सुविधा है। उसको लेकर जो संशोधन आयगा वह ठीक होगा। 'मध्यवर्ती क्रीड़ांगण' शब्द हटाकर उसकी जगह 'पाठशाला, देवालय, अथवा सभा-भवन' आदि शब्द डाले जायँ। यह संशोधन अनुपयुक्त होगा। विषय को लेकर किन्तु प्रस्ताव में सुझाई गई योजना से सर्वथा भिन्न रूप की योजना, संशोधन के द्वारा प्रतिपादित की जा सकती है। वार्षिक अवशिष्ट धनराशि में से सार्वजनिक

उपयोग के लिए क्रीड़ांगण तैयार किए जायँ' यह प्रस्ताव आया हो तो इसका भाव अवशिष्ट राशि में से सार्वजनिक उपयोग के लिए कुछ खर्च करना चाहिए। वह उसी प्रकार पड़ी न रहे। अतः इस प्रस्ताव के ऊपर यदि किसी संशोधन में यह कहा गया हो कि 'क्रीड़ांगण' शब्द को निकालकर उसके स्थान पर 'शाला' 'सभा' तथा अन्य कोई सार्वजनिक सुविधा-दर्शक शब्द डाला जाय तो यह संशोधन अनुपयुक्त नहीं होता। तात्पर्य यह कि सभा के सामने जो प्रश्न हो उसके भीतरी आशय के अनुसार ही संशोधन होना चाहिए।

संशोधन को प्रश्न की ही मर्यादा में रखना चाहिए अर्थात् सभा में प्रस्तुत प्रश्न के अन्तर्गत विषय की जो मर्यादाएँ हों, उनसे बाहर का विषय, संशोधन द्वारा नहीं लाया जा सकता। संशोधन, विषय को लेकर ही हो, पर उपस्थित प्रश्न के क्षेत्र में वह न आता हो तो वह भी अयुक्त ही होगा। 'अवशिष्ट राशि में से सार्वजनिक उपयोग के लिए क्रीड़ांगण बनाए जायँ' इस प्रस्ताव पर 'राशियों' इस शब्द के स्थान पर 'आवश्यकता पड़ने पर एक प्रतिशत गृह-कर बढ़ाकर' यह संशोधन उपस्थित किया जाय तो वह ठीक न होगा। अवशिष्ट राशि किस प्रकार खर्च करनी चाहिए इस प्रश्न की इतनी ही मर्यादा है। अतः कर लगाकर प्रस्तुत योजना की पूर्ति की जाय, यह संशोधन अनुपयुक्त है। 'सार्वजनिक उपयोग के लिए क्रीड़ांगण अत्यन्त आवश्यक है और अवशिष्ट राशि खर्च करके उसे बनाया जाय'—इस प्रस्ताव के लिए उपरिनिर्दिष्ट संशोधन ठीक साबित होगा। विषय की मर्यादा, यहाँ क्रीड़ांगणों की आवश्यकता है और यह संशोधन उसकी मर्यादा में आता है तथा विषय को लेकर तो वह है ही। खर्च किस मद में से किया जाय यह बताने वाला कोई भी संशोधन वहाँ ठीक रहेगा। इसके विपरीत 'क्रीड़ांगण' यदि विषय की मर्यादा हो तो उस समय 'क्रीड़ांगण' के स्थान पर 'पाठशाला' शब्द डाला जाय या उसके आगे और कोई वाक्य जोड़ा जाय। ऐसा संशोधन अयुक्त होगा; क्योंकि वह मूल प्रश्न की मर्यादा में नहीं बैठता। 'सार्वजनिक सुख-सुविधा के लिए क्रीड़ांगण, तालाब, उद्यान इत्यादि निर्माण का काम कमेटी अपने हाथ ले।' इस प्रस्ताव में सार्वजनिक सुख-सुविधा विषय के अन्दर है, अतः इसमें आने वाला प्रत्येक संशोधन उचित सिद्ध होगा। तात्पर्य यह है कि सभा के सामने के प्रश्न की दृष्टि से संशोधन को अयुक्त नहीं होना चाहिए एवं उसे उसकी मर्यादा में रहना चाहिए।

संशोधन की रचना—संशोधन अथवा संशोधन पर लाया गया संशोधन, इस प्रकार का हो कि सभा-गृह यदि उसे मंजूर कर ले तो संशोधित प्रश्न अथवा संशोधित संशोधन का अर्थ आसानी से ध्यान में आ जाय। यदि संशोधित

प्रश्न अथवा संशोधन अर्थ-हीन हो जाय अथवा असम्बद्ध हो जाय तो सभा की सारी हुई कार्रवाई विफल हो जायगी। कई बार मन में कुछ होता है और संशोधनों की शब्द-रचना के बारे में उचित ध्यान न देने के कारण कुछ अन्य ही परिणाम हो जाता है। अतः संशोधक को अपने संशोधन के मंजूर हो जाने पर प्रश्न का स्वरूप क्या हो जायगा, इसे पहले स्वयं देख लेना चाहिए और वह अपेक्षित है या नहीं, अथवा उस प्रकार का अर्थ उसमें से निकलता है या नहीं, इसका पूरा निश्चय कर लेने के पश्चात् ही संशोधन के शब्दों को नियत करना ठीक है और उसे उपस्थित भी तभी करना चाहिए। यदि ठीक रूप में संशोधन न हो और वह अनुपयुक्त साबित हो अथवा उचित अर्थ-बोध कराने वाला न हो, तो वह उपयुक्त साबित न होगा और अध्यक्ष उसे मंजूर नहीं करेगा।

संशोधन को अभावात्मक अथवा नकारात्मक नहीं होना चाहिए। उस पर मत देने से सभा का निर्णय अभावात्मक अथवा नकारात्मक हो जाता हो तो वह भी ठीक नहीं। उसी प्रकार जो परिणाम मूल प्रश्न का विरोध करके और उसके विरुद्ध मत देने से होगा, उतना ही परिणामजनक संशोधन भी अनुपयुक्त है। "इस सभा का मत यह है कि समग्र परिस्थिति पर विचार करते हुए सुधारों को स्वीकार कर लिया जाय।" इस प्रस्ताव पर 'स्वीकार कर लिया जाय' के स्थान पर 'स्वीकार न किया जाय' रखा जाय। इस प्रकार का संशोधन पेश करना अयुक्त है। संशोधन पेश करने से जो परिणाम निकलेगा वही और उतना ही परिणाम प्रस्ताव के विरुद्ध मत देने से भी निकलेगा। सभा ने यदि मूल प्रस्ताव अस्वीकृत किया अथवा इस संशोधन को स्वीकार करके संशोधित प्रस्ताव को स्वीकृत कर लिया, तो दोनों अवस्थाओं में परिणाम एक ही रहेगा। इस स्थिति में उपरोक्त प्रकार का संशोधन अनावश्यक है। सभा के सामने प्रश्न पर मत प्रदर्शित करने के लिए उसकी आवश्यकता नहीं, अतएव वह अनुचित है। सीधा नकारात्मक एवं मत की दृष्टि से केवल नकारात्मक परिणाम पैदा करने वाला संशोधन अनुपयुक्त है।

'वैतनिक कार्यवाहक हो और उसका मासिक वेतन ५० रुपये हो' इस प्रस्ताव पर 'हो' के स्थान पर 'न हो' कर दिया जाय तो यह संशोधन अयुक्त है। (वैतनिक) शब्द को हटा दिया जाय और 'कार्यवाहक हो' इसके आगे के सारे शब्दों को हटाकर (वेतन की प्रथा अनिष्टकारक है, अतः वह नहीं रहनी चाहिए)—यह संशोधन भी वस्तुतः नकारात्मक है। मूल प्रश्न के लिए वस्तुतः नकारात्मक होने के कारण यह अयुक्त है। संशोधन से होने वाला

काम मूल प्रश्न का विरोध करने से भी हो जायगा।

संशोधन को उन निर्णयों से रिक्त नहीं होना चाहिए जो सभा कर चुकी है। जिस प्रकार एक बार सभा द्वारा लिये गए निर्णयों को उसी सभा में किसी निर्धारित काल तक अन्य प्रस्ताव द्वारा परिवर्तित नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार संशोधन से सभा द्वारा लिये गए निर्णय को उसी सभा में अथवा निर्धारित काल तक परिवर्तित नहीं किया जा सकता। सभा का निर्णय, चाहे प्रस्ताव से हो या किसी संशोधन को अस्वीकार करके किया गया हो, प्रस्ताव या संशोधन से परिवर्तित नहीं किया जा सकता। एक विषय पर एक बार एक संशोधन के अस्वीकृत हो जाने के पश्चात् उसी विषय पर, उसी आशय का दूसरा संशोधन नहीं लाया जा सकता। ऐसा संशोधन अवश्य लाया जा सकता है, जो किये गए निर्णय को अधिक व्यापक बनाता हो अथवा उसमें अधिक बातें जोड़ता हो। इस प्रकार के संशोधन से पहले का निर्णय बदलता नहीं, प्रत्युत उसे मंजूर करके ही यह संशोधन अपना काम करता है। जिस विषय पर सभा के सामने चर्चा हुई और सभा उस पर मत-दान द्वारा निर्णय लेती है, उतना ही विषय निर्णीत हुआ माना जाता है। प्रस्तुत विषय के लिए आनुषंगिक, आवश्यक या उसे लेकर चलने वाले जो विषय सभा के सामने उपस्थित किये जा सकते थे, वे यदि उपस्थित न किये गए हों तो ऐसी बात नहीं कि उन्हें फिर सभा के सामने उपस्थित ही नहीं किया जा सकता। अप्रत्यक्ष निर्णय का तत्त्व (Constructive res Judicata) सभा-शास्त्र में लागू नहीं होता। जितना भाग सभा के सामने आता है उस पर ही निर्णय किया जाता है और उतना भाग ही उस सभा में अथवा एक निर्धारित काल तक अबाधित बना रहना चाहिए। अनेक संशोधन पेश होते हैं; एक के स्वीकृत हो जाने पर उसी आशय का अथवा उसके पूर्ण विरोधी आशय का संशोधन व्यर्थ हो जाता है। उसी अर्थ का हो तो निरर्थक और अनावश्यक होने के कारण व्यर्थ हो जाता है। विरोधी हो वह इसलिए व्यर्थ हो जाता है कि सभा उसके बारे में निर्णय कर चुकी होती है।

इसी प्रकार कोई संशोधन अस्वीकृत हो गया हो तो वैसा ही संशोधन निर्णय के कारण महत्त्वहीन हो जाता है। पर अस्वीकृत संशोधन के विरोधी अर्थ वाला संशोधन ठीक सिद्ध होता है। प्रस्ताव:—"संस्था का एक और कार्य वाहक होना चाहिए"। संशोधन:—(१) 'और वह वैतनिक हो' (२) 'और वह पूरा ध्यान दे सके इसलिए उसे वेतन दिया जाना चाहिए' (३) 'और वह निःशुल्क (अवैतनिक) काम करे' (४) 'संस्था की सेवा करने की दृष्टि

रख कर उसे पारिश्रमिक नहीं लेना चाहिए।' इन संशोधनों में से पहला हो गया तो दूसरा अनावश्यक हो जाता है। तीसरा और चौथा इस निर्णय के मान लिए जाने के कारण उसके विरोधी और विरुद्ध साबित होते हैं अतः निरर्थक हो जाते हैं। मान लीजिये, तीसरे अथवा चौथे संशोधन पर मत लिया गया और वह अस्वीकृत हो गया तो उनमें से जो बच जायगा वह निरर्थक हो जायगा। इसके विरुद्ध पहला और दूसरा उपस्थित किया जा सकता है, पर उनमें से यदि एक अस्वीकृत हो जाय तो दूसरा उपस्थित नहीं किया जा सकेगा। संशोधन पेश करके सभा की सम्मति से वापिस ले लिया गया हो तो उसी आशय का दूसरा संशोधन पुनः विचारार्थ प्रस्तुत किया जा सकता है। संशोधन अथवा प्रस्ताव वापिस ले लिए जाने का अर्थ यह नहीं होता कि सभा उस पर अपना निर्णय दे चुकी है। निर्णय तभी कहलाता है, जब कोई प्रश्न अथवा विषय यथा नियम सभा के सामने आया हो, उस पर चर्चा की गई हो और तब सभा ने अपना मत दिया हो। विषय को नियमानुसार सभा के सामने आना चाहिए, उस पर चर्चा हो और उस पर सभा द्वारा मत प्रदान किया जाय एवं इस प्रकार सभा का मत स्पष्ट हो। ऐसा होने पर ही समझना चाहिए कि सभा निर्णय कर चुकी है और तब उसके विरुद्ध किसी प्रकार का प्रस्ताव अथवा संशोधन उपस्थित नहीं किया जा सकता।

उपहास करने वाले, अनुत्तरदायित्वपूर्ण, केवल पागलपन से प्रस्तुत किए गये संशोधन को अस्वीकृत करने का अधिकार अध्यक्ष को है। संशोधन का उद्देश्य यह होता है कि सभा की कार्रवाई अधिकाधिक सर्व सम्मत, व्यवस्थित एवं प्रतिष्ठायुक्त हो। सभा-कार्य प्रस्ताव द्वारा भी उपहास अथवा अवहेलना का पात्र बनने लग जाय तो वैसा होने देना किसी भी अवस्था में वाञ्छनीय नहीं हो सकता। 'संस्था के बढ़ते हुए कार्य को ध्यान में रखते हुए एक और कार्यवाहक नियुक्त किया जाय तथा वह वैतनिक होना हो।' इस प्रस्ताव पर 'और उसे २००) रुपये वेतन, १००) रुपये ताँगा खर्च, तथा ५०) रुपये भत्ता दिया जाय और आवश्यक प्रतीत हो तो ५०) रुपये घर का भाड़ा दिया जाय'—यह संशोधन किसी निर्धन संस्था की सभा में पेश किया जाय, तो उसके पीछे छिपी हुई भावना को ध्यान में रखते हुए, अध्यक्ष उसे स्वीकार न करे '१४ साल से छोटी लड़की और १६ साल से छोटा लड़का बच्चा है' बच्चे का लक्षण करना आवश्यक हो, क्योंकि बच्चे का विवाह करना अपराध सिद्ध हो जायगा, - ऐसी परिस्थिति में उपरिनिर्दिष्ट लक्षण पर '१४ के स्थान पर ३४ लिखा जाय' अथवा '१६ के स्थान पर ६ लिखा जाय'

यह संशोधन उपस्थित किया जाय अथवा इसी प्रकार की भावना से अन्य कुछ संशोधन पेश किये जायँ तो अध्यक्ष उन पर ध्यान न दे। चर्चा को स्थगित किया जाय' इस प्रस्ताव पर "चर्चा में सभासदों ने जो दिव्य-ज्ञान प्रकट किया है उसे तथा बार-बार उपस्थित किये गए स्थगितीकरण के प्रस्तावों को ध्यान में रखते हुए, सरकार का इतनी योग्य और आदर्श नगरपालिका को बनाए रखना वांछनीय नहीं है। अतः उसे रद करने की दृष्टि से आवश्यक समय देने के लिए।' यह संशोधन उत्कट-मनोभावना व्यक्त करने वाला एवं सशक्त भी हो तथापि इसे सभा के सामने उपस्थित न होने देना चाहिए। सभ्य भाषा में होने ही से वह उचित साबित नहीं होता। भाषा, भाव एवं प्रयोजकता को ध्यान में रखकर संशोधनों को अस्वीकृत करने का अधिकार अध्यक्ष को सर्वत्र है और रहना भी चाहिए।

अब तक हमने जिन मर्यादाओं का उल्लेख किया है उनका पालन करते हुए एक ही प्रश्न अथवा विषय पर अनेक संशोधन पेश किये जा सकते हैं। संशोधनों को किस प्रकार उपस्थित किया जाय तथा उन पर मत-गणना किस क्रम से की जाय, इस बात का ठीक रीति से निर्धारण किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। कई बार सभा के सामने का प्रश्न लंबा-चौड़ा एवं अनेक परिच्छेदों से युक्त प्रस्ताव भी हो सकता है, बिल के अनेक परिच्छेदों से युक्त परिशिष्ट हो सकता है। ऐसे समय पर प्रश्न के अन्तर्गत कई भागों पर अनेक संशोधन आ सकते हैं। ऐसे समय संशोधन के स्वीकृत हो जाने पर, जिस क्रम से वह मूल प्रश्न में दुरुस्ती करेगा, उसी क्रम से संशोधनों को पेश किया जाना चाहिए "घोषित किये गए सुधार अपूर्ण, अधूरे एवं असंतोषजनक हैं, उनसे देश की प्रगति नहीं होगी, उलटे, प्रतिगामी लोगों के हाथों में सत्ता चली जायगी और खेतिहर, मजदूर, मध्यवर्ग एवं गरीब लोगों का अधिक शोषण होता चला जायगा। उनके दुःखों एवं दारिद्र्य में और अधिकता हो जायगी। देश के और बहुजन समाज के स्वातंत्र्य और हित के लिए यह सभा प्रस्तुत सुधारों की निंदा करती है और देश को आदेश देती है कि वह इन सुधारों का बहिष्कार करे"—इस प्रस्ताव में अनेक बातें हैं। प्रत्येक बात पर संशोधन लाया जा सकता है। तथापि आए हुए संशोधनों में उल्लिखित बातें मूल प्रस्ताव में जिस क्रम से आती हैं, उसी क्रम से उन बातों के लिए अनुकूल बैठने वाले संशोधन उपस्थित किये जाने चाहिएँ। पहली बात पर आया हुआ संशोधन पहले उपस्थित किया जाय। सुधारों से प्रगति नहीं होगी, यह पहली बात है, इसके ऊपर जो संशोधन आए उसे पहला माना जाय। सुधारों से प्रतिगामी

लोगों के हाथ में सत्ता चली जायगी और गरीबों के दुःख में वृद्धि होगी, यह दूसरी बात है; इस पर आने वाले संशोधन बाद में उपस्थित किये जायँ। स्वातंत्र्य की दृष्टि से उनकी निंदा, यह तीसरी बात है और बहिष्कार का आदेश चौथी बात। उन पर जो संशोधन आयँ उन्हें उसी क्रम से उपस्थित करना चाहिए।

अगला भाग संशोधन द्वारा संशोधित कर दिया। उस भाग का संशोधन विचार-विनिमय के लिए सभा के सामने उपस्थित हुआ तो उससे पहले के भाग पर संशोधन उपस्थित करना अनुचित है। यदि केवल संशोधन उपस्थित हुआ हो, उसे सभा की स्वीकृति से वापिस लिया जा सकता है और पहले या पिछले भाग पर संशोधन प्रस्तुत किये जा सकते हैं। किंतु इसकी भी सीमा है। जिस भाग पर संशोधन पेश किया गया है, उस पर सभा किसी प्रकार का मत प्रदर्शित न करे।

ऊपर के उदाहरण में, मान लीजिए पहली बात पर, 'अपूर्ण' और 'अधूरे' की जगह 'सम्पूर्णतया' शब्द रखा जाय, यह संशोधन प्रथमतः उपस्थित किया गया और वह स्वकृत भी हो गया। उसके बाद दूसरी बात पर कोई संशोधन नहीं आया, तीसरी बात पर संशोधन आया तो उस स्थिति में दूसरी बात पर फिर कोई संशोधन नहीं उपस्थित किया जा सकेगा। यदि उसे उपस्थित करना ही हो तो पहले सभा के सामने के संशोधन को वापिस लेना होगा। वह यदि वापिस ले लिया गया तो उस समय दूसरी बात के ऊपर संशोधन पेश किया जा सकता है। किन्तु पहली बात पर संशोधन नहीं लाया जा सकता। कारण, उसके ऊपर लाए गए संशोधन को स्वीकृत करके सभा ने अपना मत प्रकट कर दिया है। तात्पर्य यह कि जितने भाग पर सभा अपना मत एक बार प्रकट कर चुकी उस पर फिर किसी प्रकार का संशोधन नहीं लाया जा सकता। संशोधन को पहले पेश करके फिर वापिस लेने की अपेक्षा अच्छा यह होता है कि जहाँ संशोधन की अगाऊ सूचना देनी होती है वहाँ, चर्चा के आरम्भ होने से पूर्व ही उनका क्रम निर्धारित कर दिया जाय। जहाँ सभा में ही संशोधन देने की बात हो वहाँ, सभा की स्वीकृति से, अध्यक्ष संशोधनों के सुझाने के लिए समय दे। सारे संशोधनों के आ जाने पर उनका उपरिनिर्दिष्ट दृष्टि से क्रम निर्धारित करे। अथवा यों करना चाहिए कि जिन लोगों को संशोधन सुझाने हैं, वे जागरूक रहें और कोई अगले भाग पर संशोधन पेश करने लगे तो वे सभापति से कहें कि अभी उससे पहले के भाग पर संशोधन पेश करना बाकी है। अध्यक्ष उस भाग पर संशोधन पेश करने की अनुमति दे। पर यदि अगले भाग पर संशोधन

पेश हुआ और चर्चा के लिए आया तो उसे वापिस लिये बगैर उससे पहले के भाग वाला संशोधन नहीं लाया जा सकता। तात्पर्य यह है कि इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं रहेगा तो चर्चा की मर्यादा नहीं रह सकेगी। सभासदों में सावधानी और चर्चा में व्यवस्था लाने के लिए यह नियम उचित है। सभा में प्रस्तुत प्रश्न के भागों पर एक के बाद एक क्रम से चर्चा हुई और उन पर निर्णय होता चला गया तो वाद रूपी रथ की प्रगति होती चली आती है। अतः पुनः पहले वाले भाग पर संशोधन लाने देना उचित नहीं होता। वाद की गति निर्णय की ओर रहनी चाहिए। उसके चरण आगे-पीछे पड़ते रहें यह ठीक नहीं। उठे हुए हर एक कदम को आगे ही पड़ना चाहिए।

एक बार सभा यह मत दे दे कि प्रश्न के अन्तर्गत कोई भाग, वह जिस रूप में है उसी रूप में बना रहे तो फिर उस पर संशोधन प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। सभा यह निर्णय कर चुकी होती है कि वह भाग अपने मूल रूप में ही बना रहे, उसके शब्दों को हटाया न जाय अथवा उनके स्थान पर अन्य शब्द न रखे जायँ। तथापि यह किया जा सकता है कि शब्दों को उसी प्रकार रखकर योग्य समय पर अन्य कुछ शब्द बढ़ाए जायँ, इस प्रकार का संशोधन पेश किया जा सकता है। उपर्युक्त समय का क्या अर्थ लिया जाय, यह विवादास्पद विषय के रूप और सभा के नियमों पर अवलंबित रहेगा। विधान-सभाओं में बिल को अनेक अवस्थाओं में से होकर गुजरना पड़ता है। एक अवस्था में जो निर्णय किया गया उस समय जो संशोधन पेश किया जा सकता था, वह बिल की दूसरी अवस्था में नहीं किया जा सकता। उसी प्रकार प्रत्येक वाचन के अथवा अवस्था के समय विरोध करने में मार्ग भी निर्धारित रहते हैं। उनके अनुसार ही संशोधन लाने पड़ते हैं। पहले वाचन के अंत तक बिल पर विचार किया जायगा इस समय "लोकमत का अनुमान करने के लिए उसे लोगों के पास भेजा जाय"—यह संशोधन उपयुक्त है। पर तीसरे वाचन के समय यह संशोधन अनुपयोगी साबित होगा। इसका कारण यह है कि सभा, क्रम से विचार करके सम्पूर्ण बिल पर निर्णय ले चुकी होती है। उस निर्णय के बाद 'फिरत का प्रस्ताव' (Motion for Circulation) ठीक साबित न होगा। संशोधन द्वारा स्वीकृत हुआ भाग भले ही जैसे का तैसा बना रहे, तो भी बिल की इस अवस्था में यह संशोधन ठीक नहीं। इतना ही बिल की धाराओं की व्याप्ति बढ़ाने वाला कोई भी संशोधन इस अवस्था में युक्त नहीं सिद्ध होगा। तलाक का बिल पहले जाति-भर के लिए पेश किया गया, धारा-क्रम से वाचन करते समय इस दृष्टि से उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। तीसरे वाचन के

समय जाति तथा भाग (प्रदेश) को उसमें समाविष्ट करने के लिए संशोधन नहीं लाया जा सकता। वस्तुतः इस संशोधन से पूर्व निर्णय में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आता यह सही है तथापि निर्णय की व्याप्ति बढ़ाने वाला संशोधन धारा-क्रम से किये जाने वाले वाचन के समय उचित सिद्ध हुआ होता, तीसरे वाचन के समय नहीं। उपयुक्त प्रसंग में एवं यथार्थ रूप में संशोधन लाकर किये गए निर्णय में वृद्धि की जा सकती है। अन्यथा सभा द्वारा निर्णीत किए गए भाग में परिवर्तन भी नहीं हो सकता और संशोधन द्वारा वृद्धि भी नहीं की जा सकती।

संशोधन द्वारा निर्दिष्ट शब्द डालने अथवा जोड़ने के सम्बन्ध में जब सभा निर्णय कर चुके तब उन शब्दों को संशोधित करने के लिए दूसरा संशोधन प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। 'संस्था के लिए एक और कर्मचारी हो'—इस प्रस्ताव से 'वह वैतनिक होना चाहिए' यह संशोधन आया और स्वीकृत हो गया तो समझें कि सभा अपना निर्णय कर चुकी। यदि इस निर्णय के बाद फिर कोई दूसरा संशोधन आया तो वह स्वीकृत नहीं हो सकेगा। प्रत्येक संस्था द्वारा जब किसी बैठक या सभा का आयोजन होता है तथा उसमें प्रस्ताव उपस्थित किये जायँ तब उपरोक्त प्रणाली पर ही संशोधनादि आ सकते हैं।

सभा के सामने के विषयों अथवा प्रश्नों पर विचार न किया जाय इस खयाल से किया जाने वाला चर्चा का स्थगितीकरण, सभा का स्थगितीकरण, पूर्व प्रश्न-विषयक प्रस्ताव तथा इसी प्रकार लोकमत का पता चलाने के लिए बिल को प्रचारित करना आदि सारे प्रस्ताव समय का दुरुपयोग करने वाले (Dilatory) होते हैं। अतः उनके उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए उनके ऊपर होने वाली बहस में, जिस प्रकार मुख्य विषय के ऊपर चर्चा नहीं की जा सकती, उसी दृष्टि से इस प्रकार के प्रस्तावों पर संशोधन भी पेश नहीं किया जा सकता। समय व्यर्थ करने का उद्देश्य है, यह पता चलने पर सभा के लिए यही उचित है कि वह सीधा 'हाँ' और 'ना' द्वारा ही अपना मत प्रदर्शित करे। सभा-स्थगितीकरण अथवा चर्चा स्थगितीकरण अमुककाल पर्यन्त हो, ऐसा निर्देश यदि प्रस्ताव में किया हो तो काल के सम्बन्ध में ही केवल संशोधन उचित नहीं सिद्ध होगा। 'सभा को अनिश्चित काल के लिए स्थगित किया जाय' यह प्रस्ताव समय व्यर्थ करने वाला है। अतः इस पर संशोधन नहीं पेश किया जा सकता। उस प्रस्ताव को अपने मूल रूप ही में स्वीकृत अथवा अस्वीकृत होना चाहिए। 'सभा को दो दिन के लिए स्थगित किया जाय' इस प्रकार निश्चित समय के लिए प्रस्ताव उपस्थित किया गया हो तो उस पर 'एक घण्टे के लिए स्थगित

किया जाय' इस प्रकार संशोधन उपस्थित किया जा सकता है। इसी प्रकार सभा का निर्धारित समय यदि समाप्त हो गया हो तो 'अमुक दिन फिर सभा बुलाई जाय' इस प्रस्ताव पर कोई भी संशोधन पेश किया,जा सकता है। जिस प्रस्ताव से प्रतीत होता हो कि यह केवल समय का अपव्यय करने की दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है उस पर मत-विभाजन आसानी से हो सकता है। उस पर संशो-पेश करना भी अनावश्यक है। जहाँ यह कारण स्पष्ट न हो अथवा अध्यक्ष को वैसा विश्वास न हो तो वहाँ निश्चित समय के लिए संशोधन उपस्थित करना अनुपयोगी नहीं है।

अनेक बार सभा में 'प्रस्तुत प्रश्न' एक लम्बा-चौड़ा प्रस्ताव होता है। ऐसे समय एक एक भाग को लेकर उसके ऊपर आए हुए संशोधनों का विचार करना और निर्णय लेना आवश्यक हो जाता है। इतना ही क्यों, एक-एक पंक्ति को लेकर उस पर आने वाले संशोधनों पर विचार करना तथा उन पर निर्णय लेना अधिक सुविधाजनक एवं आवश्यक है। बिल की धारा हो, या प्रस्ताव का अंग हो, उसमें विषय के क्रम के अनुसार संशोधनों पर विचार किया जाय। एक पंक्ति समाप्ति हो जाने पर अगली पंक्ति में आए हुए संशोधनों पर विचार करना शुरू करना चाहिए। उस समय फिर पिछली पंक्तियों के संशोधनों पर विचार नहीं किया जा सकता। इसका कारण यही है कि विचार-विनिमय की गति आगे बढ़नी चाहिए। अतएव पहले के भागों पर आने वाले संशोधन पहले तथा पीछे के भागों पर आने वाले संशोधन पीछे से पेश करने चाहिएँ। यदि एक ही समय कई संशोधन आ जायँ तो अध्यक्ष उन्हें क्रमानुसार पेश करने की आज्ञा दे। कहीं ऐसा न हो कि कोई संशोधन पेश न होने पाय। इसके लिए उचित है कि पहला संशोधन जैसा है उसी रूप में पेश न करने दिया जाय। उसका कुछ भाग औपचारिक रीति से पेश करने दिया जाय। ताकि अगले संशोधनों के रास्ते में रुकावट न पैदा हो। उन पर सभा विचार कर सके। निःसन्देह यह क्रम उसी जगह स्वीकार किया जा सकता है, जहाँ यह नियम हो कि एक समय में एक संशोधन ही स्वीकार किया जाय। बिल पर होने वाली चर्चा पर यह प्रतिबन्ध है कि यथा-नियम उपस्थित किये गए पहले संशोधन का परिणाम निकल जाने के पश्चात् ही दूसरा संशोधन विचारार्थ लिया जाय। इस अवस्था में अध्यक्ष को चाहिए कि वह उपरोक्त व्यवस्था करके, आगे आने वाला कोई भी संशोधन विचार-प्रक्रिया में से होकर निरर्थक न हो जाय। इस विचार से प्रत्येक प्रस्ताव के कुछ भागों को उस दृष्टि से पृथक् करके पेश करने के लिए कहे। मान लीजिए, एक समय में केवल एक ही संशोधन पर विचार

करना है और सभा के सामने प्रस्तुत प्रश्न यह है—"संस्था के लिए एक अधिक कर्मचारी हो और वह वैतनिक हो, उसका वेतन ६० रुपए हो तथा दस रुपए मकान का किराया भी मिले।" पहला संशोधन 'और वह वैतनिक हो यह तथा आगे के सारे शब्द निकाल दिए जायँ। दूसरा संशोधन साठ रुपए के स्थान पर '५० रुपए' रखे जायँ'—ऐसा है। पहला संशोधन जैसा का तैसा पेश करने दिया जाय तो उसके स्वीकृत हो जाने पर वेतन मे अथवा मकान के किराए मे न्यूनाधिक्य करने का संशोधन उपस्थित ही नहीं हो सकेगा।

नोटिस द्वारा पहले आने के कारण संशोधन को, अपने मूल रूप में पेश करने दिया जाय—ऐसा नहीं कहा जा सकता। सभा की स्वीकृति उचित रीति से स्पष्ट करवा लेने का अधिकार अध्यक्ष को है, अतः अध्यक्ष ने यदि पहले संशोधन का पहला भाग ही पेश करने दिया तो वह अनुचित नहीं। 'और वह वैतनिक हो'—ये शब्द निकाल दिए जायँ, इतना हिस्सा औपचारिक रीति से पेश करने के लिए कहना उचित है। प्रस्तुत शब्द निकाल दिए जायँ यह संशोधन स्वीकृत हो गया तो प्रश्न ही नहीं रह जाता। सभा का मत स्पष्ट हो गया। परन्तु शब्दो के निकालने का संशोधन अस्वीकृत हो गया तो वेतन और मकान किराये की मात्रा के सम्बन्ध मे संशोधन पेश किया जा सकता है। यदि पहला संशोधन अपने मूल रूप मे स्वीकृत हो गया तो यह स्पष्ट नहीं हो सकेगा कि वैतनिक रखने की अवस्था मे उसका वेतन कम रहे या अधिक। नियमानुसार जहाँ यह प्रतिबंध हो कि जिस क्रम से संशोधन आते हैं, उसी क्रम से उन्हें लिया जाय, वहाँ अध्यक्ष को यह कहने का अधिकार है कि संशोधन जैसे के तैसे पेश न किये जायँ प्रत्युत ऊपर निर्देशानुसार क्रमशः पेश किये जायँ। जहाँ यह प्रतिबंध न हो वहाँ कौनसा संशोधन पहले लिया जाय और वह भी किस प्रकार लिया जाय, यह बतलाने का अध्यक्ष को निःसंशय अधिकार है। सभा में प्रस्तुत प्रश्न पर सर्वाङ्गीण चर्चा होने के बाद सभा का निर्णय हो, इस दृष्टि से उन संशोधनों का क्रम एवं स्वरूप निर्धारित करना पड़ता है। जिस संशोधन के निर्णय से वाद-विवाद सीमित होता हो, ऐसे सामान्य संशोधन को प्रथम लेना उचित है। तथापि उस संशोधन को पहले न लेना चाहिए जिससे नाम मात्र की चर्चा हो और अनेक दृष्टिकोणों को लेकर होने वाली चर्चा टल जाय। जहाँ आए हुए सब संशोधनों पर विचार एकदम किया जा सकता हो वहाँ किसी बात की अड़चन नहीं। पहले प्रत्येक संशोधन को औपचारिक रीति से उपस्थित करना चाहिए। सब संशोधनों के उपस्थित किये जा चुकने के पश्चात मूल प्रश्न पर, तथा उन पर आए हुए सब संशोधनों पर चर्चा हो।

तथापि उन पर मत लेते समय सभा के निर्णय का उल्लंघन न हो और सभा का सही-सही मत स्पष्ट हो सके, इसी रीति से संशोधनों का क्रम निर्धारित करना उचित है। इस क्रम को निर्धारित करते समय किसी संशोधन पर क्रमशः प्रत्येक भाग पर मत लेने का उसे अधिकार है। मान लीजिये, उपर्युक्त प्रस्ताव के ऊपर आने वाले सब संशोधनों पर एवं प्रस्तावों एक साथ विचार किया गया; एक ही समय वैतनिक हो या न हो, वेतन कितना हो, मकान का किराया कितना हो आदि के बारे में चर्चा हुई हो तो मत-ग्रहण के समय 'और वैतनिक हो' इतने शब्द निकाल दिए जायँ'—संशोधन के इतने ही भाग पर मत लिया जा सकता है। कहने का अभिप्राय यह है कि अध्यक्ष को जहाँ सम्भव हो वहाँ संशोधनों का और मत-ग्रहण का क्रम निर्धारित करके सभा का सही-सही मत जानने का अधिकार है।

संशोधन पर संशोधन—सभा में प्रस्तुत प्रश्न पर जिस प्रकार संशोधन पेश किया जा सकता है, उसी प्रकार सभा के सामने नियमानुसार किसी भी आए हुए संशोधन पर दूसरा संशोधन पेश किया जा सकता है। संशोधन पर संशोधन पेश करना हो तो उसके लिए नोटिस की आवश्यकता नहीं। तथापि किन्हीं विधान-सभाओं के नियमों के अनुसार उसे पेश करते समय अध्यक्ष की अनुमति आवश्यक है। ऐसा संशोधन अधिकार पूर्वक पेश नहीं किया जा सकता। संशोधन पर संशोधन पेश होने पर सभा के सामने तीन प्रश्न उपस्थित होते हैं। मूल प्रश्न, उस पर आया हुआ संशोधन और संशोधन पर आया हुआ संशोधन। इस अवस्था में मूल प्रश्न थोड़ी देर के लिए एक ओर पड़ जाता है। संशोधन उस समय भर के लिए एक आकस्मिक प्रश्न (Subst antive Proposition) हो जाता है और उस दृष्टि से विचार-विनिमय के बाद मत ग्रहण होता है। अर्थात् पहले संशोधन पर आये हुए संशोधन पर मत-ग्रहण, उसके स्वीकृत हो जाने पर संशोधित संशोधन पर, फिर उसके स्वीकृत हो जाने पर संशोधित मूल प्रश्न पर, इस प्रकार का क्रम रहता है; और इस प्रकार क्रम के रखने से गड़बड़ी नहीं मचती। मत देते समय यह पता चलना चाहिए कि किस पर मत देना है। इसी तरह क्रम भी ऐसा हो जाय जिससे सभा के मत का अतिक्रमण न हो सके। नहीं तो कभी-कभी सभा के वास्तविक बहुमत के विरुद्ध निर्णय हो जाता है। सभा के सामने का प्रश्न, उस पर आये हुए संशोधन आदि से प्रश्न में गड़बड़ी उत्पन्न न हो, इसके लिए योग्य रीति से उनका वर्गीकरण करके मत ग्रहण करना चाहिए।

जब संशोधन का रूप किन्हीं शब्दों के संयुक्त करने अथवा निकालने का

ही हो, और इस संशोधन पर ही दूसरा संशोधन आय तथा उसका वन्ध मुख्य प्रश्न के साथ हो, तो उस पर मत लेने में बाधा न होगी। संशोधन पर आए हुए संशोधन पर पहले मत लिये जायँ, पीछे उसके परिणाम को ध्यान में रखकर, मुख्य संशोधन पर, और फिर उसके परिणाम को ध्यान में रख-कर मुख्य प्रश्न पर मत लिए जायँ। 'संस्था के लिए एक अधिक कर्मचारी हो, वह वैतनिक हो, उसे वेतन ६०) रुपये और १०) रुपए मकान किराया मिले' यह हुआ मुख्य प्रश्न 'कर्मचारी हो' इस शब्द के आगे सारे शब्द निकाल दिए जायँ।" यह है संशोधन "और उसे केवल उचित प्रवास-व्यय दिया जाय" वह है संशोधन पर संशोधन। ऐसी परिस्थिति में इस संशोधन पर जो संशोधन आया उस पर पहले मत लिया जाय। उसके स्वीकृत हो जाने पर पहले संशोधन का संशोधित रूप यों होगा,—'कर्मचारी हो' इस शब्द के आगे के सारे शब्द निकाल दिये जायँ और उनके स्थान पर 'और उसे केवल उचित प्रवास-व्यय दिया जाय ये शब्द डाले जायँ'—इस संशोधित संशोधन पर मत लिये जायँ। इसके स्वीकृत हो जाने पर संशोधित प्रस्ताव का रूप यों होगाः—"संस्था के लिए एक अधिक कर्मचारी हो और उसे केवल उचित प्रवास-खर्च दिया जाय।" अन्त में इस संशोधित प्रस्ताव अथवा मुख्य प्रश्न पर मत लिये जायँ। परन्तु जब पहला संशोधन, मुख्य प्रश्न के अन्तर्गत किन्हीं शब्दों के निकालने के सम्बन्ध में हो, और इस संशोधन पर आया हुआ संशोधन मूल संशोधन में से किन्हीं शब्दों को निकालने के सम्बन्ध में हो, तो गड़बड़ी पैदा हो जाती है। इस संशोधन पर आने वाले संशोधन का अर्थ यह होता है कि मूल प्रश्न तथा मूल संशोधन में से निकालने के लिए कहे गए शब्दों में से किन्हीं शब्दों को उसी प्रकार रखा जाय।

मान लीजिये, उपर्युक्त प्रस्ताव पर प्रथम संशोधन यों है:—"कार्यवाहक हो इस शब्द के आगे और वह वैतनिक हो तथा उसे ६०) रुपये वेतन दिया जाय तथा १०) रुपये मकान का किराया दिया जाय" ये सब शब्द निकाल दिये जायँ"—इस संशोधन पर आया हुआ संशोधन इस प्रकार है:—"संशोधन के 'और उसे ६०) रुपये वेतन दिया जाय' ये शब्द निकाल दिए जायँ" संशोधन पर आने वाले इस संशोधन का उद्देश्य यह है कि मूल प्रश्न में 'और उसे ६०) रुपये वेतन दिया जाय' ये शब्द रहें और जिन शब्दों को संशोधन निकालना चाहता था, वे बने रहें। गड़बड़ी से बचने के लिए पहले 'संशोधन पर आए हुए संशोधन में जिन शब्दों को निकालने के लिए कहा गया है वे बने रहें''—इस प्रश्न पर मत लिया जाय। वे बने रहें फिर मत

आने पर 'संशोधन के जिन सब शब्दों को निकालने के लिए कहा गया है वे बने रहें'—इस दूसरे प्रश्न पर मत लेना चाहिए। वे बने रहें ऐसा मत आने पर मूल प्रश्न जैसा-का-तैसा बचा रहता है, अतः उस पर मत लेना उचित है। 'वे शब्द न रहें' ऐसा मत आय तो उन सब शब्दों को निकालकर संशोधित प्रस्ताव पर मत लिया जाय। मान लीजिए 'संशोधन पर आए हुए संशोधन में जिन शब्दों को निकालने के लिए कहा गया है, वे उस प्रकार रहें'—मूल प्रश्न पर सभा का मत यह हुआ कि वे न रहें तो मूल संशोधन में से उन शब्दों को निकाल दिया जाता है और संशोधित प्रस्ताव पर मत लिया जाता है। उस अवस्था में संशोधन का रूप यों रहेगाः—"और वह वैतनिक हो तथा उसे १०) रुपये मकान का किराया दिया जाय—ये शब्द निकाल दिए जायँ" तत्पश्चात् 'इस संशोधित संशोधन में से जिन शब्दों को निकालने के लिए कहा गया है वे बने रहें' इस प्रश्न पर मत लिया जाय। बेशक न रहें ऐसा निर्णय होने पर संशोधित संशोधन में से शब्दों को निकालकर मुख्य प्रश्न पर मत लिया जाय। उसका रूप इस अवस्था में यों रहेगाः—"संस्था के लिए एक अधिक कर्मचारी हो और उसे ६०) रुपये वेतन दिया जाय"—इस प्रश्न पर अंतिम मत ले लिए जायँ।

जब मूल संशोधन के अन्तर्गत प्रश्न के अन्तभूंत किन्हीं शब्दों को निकालकर, उनके स्थान पर जो अन्य शब्द जोड़ने के लिए कहे गए हों, उनके बारे में संशोधन पेश किया जा सकता है। तथापि जब संशोधन द्वारा निर्दिष्ट शब्द निकाले जायँ, ऐसा निर्णय सभा करेगी और संशोधन द्वारा निर्दिष्ट शब्द जोड़े जायँ, ऐसा प्रश्न उपस्थित किया जायगा, तभी उसमें परिवर्तन करने वाला संशोधन पेश किया जा सकता है। 'शब्दों को निकालकर उनके स्थान पर किन्हीं शब्दों को जोड़ा जाय' ऐसा संशोधन हो, और जोड़े जाने वाले शब्दों के बारे में उस पर संशोधन आए तो 'शब्दों को निकाला जाय' एतद्विषयक भाग को पृथक् करके प्रथमतः उस पर मत लेना चाहिए। उसके पश्चात् उस भाग पर विचार किया जाय जिसमें उन शब्दों को निकालकर उनके स्थान पर अन्य शब्द डालने के लिए कहा गया हो। उस भाग पर आने वाले संशोधन पर विचार करके उसका निर्णय किया जाय। 'इस बिल पर अब विचार किया जाय ?' यह प्रश्न है। 'अब' यह वाक्य निकाल दिया जाय तथा 'छै महीने बाद' ये शब्द डाले जायँ' यह संशोधन है। इस संशोधन पर " संशोधनगत 'छ महीने बाद' शब्दों के स्थान पर 'एक महीने बाद ' यह वाक्य रखा जाय " यह संशोधन है। इस परिस्थिति

में 'संशोधन में से निकालने के लिए कहे गए शब्द बने रहें' इस पहले प्रश्न पर मत लिया जाय। विरोधी मत आने पर 'छः महीने बाद' ये शब्द डाले जायँ—इस प्रश्न पर मत लिया जाय और उसके अस्वीकृत हो जाने पर 'यह बिल छः महीने बाद विचारार्थ प्रस्तुत किया जाय' इस संशोधित प्रश्न पर मत लिया जाय। 'छः महीने बाद' यह वाक्य संशोधन में रहे-यह प्रश्न अमान्य हो जाय और वाक्य न रखा जाय, यही मत हो तो संशोधन में 'एक महीने बाद' ये शब्द डाले जायँ-इस प्रश्न पर मत लिया जाय। यदि वह अस्वीकृत हो जाय तो संशोधित संशोधन पर मत लिया जाय अर्थात् "संशोधन में सुझाए गए शब्द 'एक महीने बाद' जोड़ा जाय—इस प्रश्न पर मत लिया जाय। उसके स्वीकृत हो जाने पर निम्न प्रकार से संशोधित मुख्य प्रश्न पर मत लिया जाय :—"यह बिल एक मास बाद विचारार्थ प्रस्तुत किया जाय।"

संशोधन पर संशोधन आने से अनेक बार गड़बड़ी हो जाती है। उससे बचने के लिए अध्यक्ष को कुछ बातें ध्यान में रखनी चाहिएँ। पहला संशोधन जहाँ आवश्यक प्रतीत हो वहाँ विभक्त करके उस पर विचार किया जाय तथा मत लेने चाहिएँ। संशोधन पर संशोधन आने से पहला संशोधन तत्काल-आपातिक-प्रश्न अथवा प्रस्ताव (Substantive Proposition) बन जाता है। यह ध्यान में रखकर तत्सम्बन्धी सारे नियम उस पर लागू करे। संशोधन पर जिस प्रकार संशोधन पेश किया जाता है, उसी प्रकार उक्त संशोधन पर भी संशोधन पेश किया जा सकता है और इसी प्रकार से इस शृङ्खला को लम्बा खींचा जा सकता है। उस परिस्थिति में पहले वाला संशोधन अगले संशोधन की दृष्टि में तत्काल आपातिक-संशोधन अथवा आपातिक प्रश्न बन जाता है। तथापि इच्छानुसार ढील देने से सभा की कार्रवाई में जटिलता पैदा होती है।

अनेक विधान-सभाओं के नियमानुसार संशोधन पर संशोधन तो पेश किया जा सकता है, किन्तु उससे आगे नहीं बढ़ा जा सकता। संशोधन पर संशोधन, अध्यक्ष की अनुमति द्वारा ही उपस्थित किये जाने का प्रतिबन्ध रहे तो अनुपयुक्त होगा। जहाँ इस सम्बन्ध में कोई नियम नहीं वहाँ संशोधन पर एक अवान्तर संशोधन उपस्थित करने की सुविधा दी जाय। जहाँ नोटिस का सवाल नहीं, वहाँ संशोधन पर संशोधन और उस संशोधन पर अवान्तर संशोधन उपस्थित करने के झगड़े में पड़ने की अपेक्षा, नवीन एवं स्वतन्त्र संशोधन पेश करना उचित है। अध्यक्ष को चाहिए कि वह जहाँ ठीक जँचे वहाँ इस प्रकार

की अनुमति दे। आए हुए संशोधन या संशोधन पर संशोधन लिखित हो। औपचारिक पुस्तक अथवा संशोधन को छोड़कर अन्य सब संशोधन लिखित रूप में होने चाहिएँ। संशोधन अथवा उस पर आने वाले संशोधन के स्वीकृत होने पर प्रश्न का रूप क्या हो जायगा, यह लिखकर देखना ठीक रहता है। इस प्रकार सभा के सामने निश्चित रूप में क्या है, इसका पता चलता है और उस दृष्टि से अध्यक्ष के लिए सभा की स्वीकृति को ध्यान में रखकर उचित मार्ग-दर्शन करना सम्भव है। अनेक संशोधन आते हैं तथा उन पर अनेक अवान्तर संशोधन आते हैं। उन सबका अर्थ समझकर उनका नियन्त्रण करना आवश्यक है। किसी किसी संशोधन पर ऐसा भी संशोधन आता है जिसकी माँग यह होती है कि संशोधनगत सारे शब्दों को निकाल दिया जाय। वस्तुतः यह नियमानुकूल नहीं है तथा उसे पेश किया जाता है और उस पर वाद-विवाद भी होता है। अनेक बार संशोधनों पर केवल हड़बड़ाहट के कारण ही चर्चा होती है। उनका निश्चित रूप क्या है, यह तभी विदित होता है, जब कि उनके स्वीकृत हो जाने पर मूल संशोधन का रूप क्या होगा, यह लिख लिया जाता है। लिखने से ही मत का योग्यक्रम निर्धारित किया जा सकता है। गड़बड़ी से बचने के लिए विकल्पयुक्त संशोधन नियम-विरुद्ध करार देना अनुचित नहीं। जैसे—"और उसका वेतन साठ रुपये या पचास रुपये हो"—यह संशोधन गलत है। संशोधन पेश करने वाला चाहे तो तीन संशोधन पेश कर सकता है। नियमानुसार यदि यह सम्भव न हो तो वह अन्य लोगों की ओर से पेश करवा सकता है। परन्तु तीन या दो विकल्पों को मिलाकर एक संशोधन पेश न किया जाय। इस प्रकार का संशोधन विधान-सभा में भी अग्राह्य माना गया है।

किस अवस्था में तथा किस स्वरूप में संशोधन उचित साबित होता है, इसके सम्बन्ध में भी विधान-सभाओं में नियम और रिवाज प्रचलित हैं। प्रत्येक अवस्था में किस प्रकार के संशोधन आ सकते हैं यह निश्चित किया हुआ रहता है। उसी प्रकार उन्हें पेश भी करना पड़ता है। इसी प्रकार किस अवस्था में किस प्रकार की चर्चा होती है यह भी निश्चित है। 'बिल पर विचार किया जाय'—जब ऐसा प्रश्न हो तब बिल के साधारण तत्त्व पर चर्चा उपयुक्त होती है। जब धाराओं पर चर्चा हो तब केवल उनके विषयों पर ही विचार करना उपयुक्त है। 'बिल पर विचार किया जाय'—इस प्रश्न के समय व लोकमत जानने के लिए प्रचारित किया जाय' (Motion for Circulation) अथवा 'प्रवर समिति के पास विचारार्थ भेजा जाय'—(Reference to Select Committee) इत्यादि संशोधन उपयुक्त सिद्ध होते हैं। उसी

में 'संशोधन में से निकालने के लिए कहे गए शब्द बने रहें' इस पहले प्रश्न पर मत लिया जाय। विरोधी मत आने पर 'छः महीने बाद' ये शब्द डाले जायँ—इस प्रश्न पर मत लिया जाय और उसके अस्वीकृत हो जाने पर 'यह बिल छः महीने बाद विचारार्थ प्रस्तुत किया जाय' इस संशोधित प्रश्न पर मत लिया जाय। 'छः महीने बाद' यह वाक्य संशोधन में रहे—यह प्रश्न अमान्य हो जाय और वाक्य न रखा जाय, यही मत हो तो संशोधन में 'एक महीने बाद' ये शब्द डाले जायँ—इस प्रश्न पर मत लिया जाय। यदि वह अस्वीकृत हो जाय तो संशोधित संशोधन पर मत लिया जाय अर्थात् "संशोधन में सुझाए गए शब्द 'एक महीने बाद' जोड़ा जाय—इस प्रश्न पर मत लिया जाय। उसके स्वीकृत हो जाने पर निम्न प्रकार से संशोधित मुख्य प्रश्न पर मत लिया जाय:—"यह बिल एक मास बाद विचारार्थ प्रस्तुत किया जाय।"

संशोधन पर संशोधन आने से अनेक बार गड़बड़ी हो जाती है। उससे बचने के लिए अध्यक्ष को कुछ बातें ध्यान में रखनी चाहिएँ। पहला संशोधन जहाँ आवश्यक प्रतीत हो वहाँ विभक्त करके उस पर विचार किया जाय तथा मत लेने चाहिएँ। संशोधन पर संशोधन आने से पहला संशोधन तत्काल-आपातिक-प्रश्न अथवा प्रस्ताव (Substantive Proposition) बन जाता है। यह ध्यान में रखकर तत्सम्बन्धी सारे नियम उस पर लागू करे। संशोधन पर जिस प्रकार संशोधन पेश किया जाता है, उसी प्रकार उक्त संशोधन पर भी संशोधन पेश किया जा सकता है और इसी प्रकार से इस शृङ्खला को लम्बा खींचा जा सकता है। उस परिस्थिति में पहले वाला संशोधन अगले संशोधन की दृष्टि में तत्काल आपातिक-संशोधन अथवा आपातिक प्रश्न बन जाता है। तथापि इच्छानुसार ढील देने से सभा की कार्रवाई में जटिलता पैदा होती है।

अनेक विधान-सभाओं के नियमानुसार संशोधन पर संशोधन तो पेश किया जा सकता है, किन्तु उससे आगे नहीं बढ़ा जा सकता। संशोधन पर संशोधन, अध्यक्ष की अनुमति द्वारा ही उपस्थित किये जाने का प्रतिबन्ध रहे तो अनुकूल होगा। जहाँ इस सम्बन्ध में कोई नियम नहीं वहाँ संशोधन पर एक अवान्तर संशोधन उपस्थित करने की सुविधा दी जाय। जहाँ नोटिस का सवाल नहीं, वहाँ संशोधन पर संशोधन और उस संशोधन पर अवान्तर संशोधन उपस्थित करने के झगड़े में पड़ने की अपेक्षा, नवीन एवं स्वतन्त्र संशोधन पेश करना उचित है। अध्यक्ष को चाहिए कि वह जहाँ ढील देने वहाँ इस प्रकार

रहस्य को भली-भाँति जानकर काम किया जाना चाहिए। जिन लोगों ने बजट तैयार किया है, उसे पास कराने तथा अमल में लाने का उत्तरदायित्व भी उन्हीं पर रहता है। उनकी योजना-कार्य-क्रम, व्यय करने का समय एवं उसका क्रम, आय की योजना एवं उसके आने का क्रम इत्यादि सब बातें ध्यान में रखकर निश्चित की जाती हैं। उसमें मनमाना परिवर्तन करके व्यर्थ में ही उलझन पैदा नहीं करनी चाहिए। जिन्हें बजट अमल में लाना है, क्रियान्वित करना है उन्हें निश्चित रूप से कुछ कहने का अधिकार पहले होना चाहिए। बजट पेश कर चुकने के बाद निर्धारित समय तक उस पर साधारण चर्चा हो, तत्पश्चात् खर्च के मदों का क्रमानुसार अथवा खातेवार विचार हो। इस समय बजट के अन्तर्गत जो माँगें हों उन पर क्रमानुसार एक-एक पर विचार किया जाय और आने वाले सशोधनों पर भी विचार किया जाना चाहिए। उस खाते पर अविश्वास प्रदर्शित करना हो, उसकी सारी नीति पसन्द न हो तो खाते की माँग पर कटौती का प्रस्ताव प्रस्तुत करना उचित है। 'अमुक माँग की रकम एक रुपया हो' (Be redused to Re 1/-)। इस प्रकार का संशोधन पेश करना चाहिए। माँग यदि अधिक हो, उसमें मितव्यय करवाने का उद्देश्य हो तो जितनी रकम मितव्यय करके बनाए रखनी हो वह रकम संशोधन मे सूचित करानी चाहिए। 'अमुक माँग इतने रुपयों की हो' (Be redused to)। किस उद्देश्य से वह सशोधन पेश किया जा रहा है, वह कारण भी यदि संशोधन के सामने लिख दिया जाय तो ठीक रहता है। जैसे, 'अमुक माँग में एक रुपया कम किया जाय' (मजदूरों के वेतन-विषयक योजना-सम्बन्धी शिकायत)। बजट में जो माँग हो, उसकी अपेक्षा अधिक रकम के लिए संशोधन विधान-सभा में नहीं लाया जा सकता। इसका कारण यह है कि ज्यादा खर्च की माँग करने पर आय भी अधिक दिखानी पड़ती है, अथवा अन्यत्र मितव्ययता करनी पड़ती है अर्थात् बजट की सारी योजना बिगड़ जाती है। अतः माँगें निश्चित करने का या माँगें न बढ़ाई जायँ, यह कहने का अधिकार सरकार को है। और नियमानुसार माँग को बढ़ाया भी नहीं जा सकता। उसी प्रकार विधान-सभा के नियमों के अनुसार सरकार की आय प्रतिशत करने की जो योजना बजट में रहती है, उसमें कर-वृद्धि करने का अथवा नवीन कर सुझाने का संशोधन पेश नहीं किया जा सकता। उस जगह सरकार को आय-प्राप्ति के मद तथा करों के दर स्थिर करने का अधिकार है और उसमें वृद्धि न की जाय, ऐसा कहने का हक है; यही नियम भी है। यदि ऐसा न हो तो आय-विषयक निर्धारित योजना विशृङ्खल हो जाती है। कारोबार पूरा करने की जिम्मे-

प्रकार 'प्रवर-समिति द्वारा संशोधित बिल पर विचार किया जाय'—इस प्रश्न के प्रस्तुत होने पर पुनः उसे 'प्रवर-समिति के पास भेजा जाय' अथवा 'पुनः प्रचारित (Re-circulated) किया जाय'—ऐसे संशोधन पेश किये जा सकते हैं। तीसरी पढ़त के समय भी मूलगामी, अथवा विषय से सम्बन्ध रखने वाले आशय अथवा नीति बदलने वाले संशोधन अनुचित हैं। क्योंकि वे सब धाराओं के क्रम से होने वाली चर्चा के समय लाए जाने चाहिएँ। इसी प्रकार तीसरी पढ़त के समय विस्तारयुक्त चर्चा भी अनुपयोगी सिद्ध होती है। धाराओं की क्रम से चर्चा हो चुकती है और बिल के बारे में एक निर्णय भी ले लिया जाता है। उसमें प्रकीर्ण अर्थात् लिये गए निर्णय को कानूनी स्वरूप देने की दृष्टि से केवल आनुषंगिक अथवा शाब्दिक संशोधन ही सुझाए जा सकते हैं। इस परिस्थिति में जो बिल निर्मित होता है उसकी साधारण समालोचना उपयुक्त सिद्ध होती है। तीसरी पढ़त वाले प्रस्ताव पर प्रवर-समिति का संशोधन अप्रस्तुत सिद्ध होता है।

संस्था के नियमों के अनुसार कुछ विषय उसके अधिकार से बाहर के होते हैं। उन पर न तो प्रस्ताव उपस्थित किये जा सकते हैं, न आए हुए प्रस्तावों पर तत्सम्बन्धी संशोधन उपस्थित किया जा सकता है। संयुक्त-राज्य-पद्धति में एक मध्यवर्ती विधान-सभा रहती है तथा प्रत्येक घटक राज्य में अथवा भाग में स्वतंत्र विधान-सभा रहती है। दोनों का कार्य-क्षेत्र संविधान द्वारा निर्धारित किया हुआ रहता है। अतः कुछ विषय प्रत्येक की दृष्टि से अधिकार के बाहर रहते हैं। अधिकार-क्षेत्र से बाहर की बातें बिल अथवा प्रस्ताव द्वारा विचारार्थ नहीं ली जा सकतीं। कोई संशोधन भी पेश करके उसे विचारार्थ सभा के सामने नहीं रखा जा सकता। संयुक्त (Federal) विषयों का विचार मध्यवर्ती विधान-सभा में ही किया जाना चाहिए। स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं की श्रेणी में आने वाले विषयों का विचार, उन्हीं संस्थाओं में करना चाहिए। केवल लोकमत प्रदर्शन करने के लिए किसी भी सार्वजनिक विषय पर विचार करना और बात है तथा उस बात को अपने अधिकार-क्षेत्र का विषय समझकर उस पर विचार करना और बात है। अधिकार क्षेत्र वाले विषय संशोधन द्वारा उपस्थित किया जाना भी ठीक है। अधिकार-क्षेत्र से बाहर का विषय तो न तो प्रस्ताव अथवा संशोधन द्वारा उपस्थित नहीं किया जा सकता।

[illegible] समय संशोधनों के बारे में अध्यक्ष को [illegible]। [illegible] सभाओं के नियम एवं संकेत निर्धा- [illegible] सभाओं के नियमों एवं संकेतों के

रहस्य को भली-भाँति जानकर काम किया जाना चाहिए। जिन लोगों ने बजट तैयार किया है, उसे पास कराने तथा अमल में लाने का उत्तरदायित्व भी उन्हीं पर रहता है। उनकी योजना-कार्य-क्रम, व्यय करने का समय एवं उसका क्रम, आय की योजना एवं उसके आने का क्रम इत्यादि सब बातें ध्यान में रखकर निश्चित की जाती हैं। उसमें मनमाना परिवर्तन करके व्यर्थ में ही उलझन पैदा नहीं करनी चाहिए। जिन्हें बजट अमल में लाना है, क्रियान्वित करना है उन्हें निश्चित रूप से कुछ कहने का अधिकार पहले होना चाहिए। बजट पेश कर चुकने के बाद निर्धारित समय तक उस पर साधारण चर्चा हो, तत्पश्चात् खर्च के मदों का क्रमानुसार अथवा खातेवार विचार हो। इस समय बजट के अन्तर्गत जो माँगें हों उन पर क्रमानुसार एक-एक पर विचार किया जाय और आने वाले सशोधनों पर भी विचार किया जाना चाहिए। उस खाते पर अविश्वास प्रदर्शित करना हो, उसकी सारी नीति पसन्द न हो तो खाते की माँग पर कटौती का प्रस्ताव प्रस्तुत करना उचित है। 'अमुक माँग की रकम एक रुपया हो' (Be redused to Re 1/-)। इस प्रकार का संशोधन पेश करना चाहिए। माँग यदि अधिक हो, उसमें मितव्यय करवाने का उद्देश्य हो तो जितनी रकम मितव्यय करके बनाए रखनी हो वह रकम संशोधन मे सूचित करानी चाहिए। 'अमुक माँग इतने रुपयों की हो' (Be redused to)। किस उद्देश्य से वह सशोधन पेश किया जा रहा है, वह कारण भी यदि संशोधन के सामने लिख दिया जाय तो ठीक रहता है। जैसे, 'अमुक माँग में एक रुपया कम किया जाय' (मजदूरों के वेतन-विपयक योजना-सम्बन्धी शिकायत)। बजट में जो माँग हो, उसकी अपेक्षा अधिक रकम के लिए संशोधन विधान-सभा में नहीं लाया जा सकता। इसका कारण यह है कि ज्यादा खर्च की माँग करने पर आय भी अधिक दिखानी पड़ती है, अथवा अन्यत्र मितव्ययता करनी पड़ती है अर्थात् बजट की सारी योजना बिगड़ जाती है। अतः माँगें निश्चित करने का या माँगें न बढ़ाई जायँ, यह कहने का अधिकार सरकार को है। और नियमानुसार माँग को बढ़ाया भी नहीं जा सकता। उसी प्रकार विधान-सभा के नियमों के अनुसार सरकार की आय प्रतिशत करने की जो योजना बजट में रहती है, उसमें कर-वृद्धि करने का अथवा नवीन कर सुझाने का संशोधन पेश नहीं किया जा सकता। उस जगह सरकार को आय-प्राप्ति के मद तथा करों के दर स्थिर करने का अधिकार है और उसमें वृद्धि न की जाय, ऐसा कहने का हक है; यही नियम भी है। यदि ऐसा न हो तो आय-विपयक निर्धारित योजना विशृङ्खल हो जाती है। कारोबार पूरा करने की जिम्मे-

दारी बाकी रहती है। अतः माँग बढ़ाई न जाय और आय में नवीन विषयों की वृद्धि अथवा कर-वृद्धि न की जाय, यह नियम उस स्थान पर सर्वथा उचित प्रतीत होता है। अन्य संस्थाओं के बजट के बारे में यह संकेत (प्रचलन) इसी रूप में बना रहे ऐसा कोई नहीं कहेगा। तथापि इस संकेत के भीतर के तथ्य को तारतम्य से स्वीकार कर लिया जाय तो चर्चा को उचित शिक्षा प्राप्त होगी और संस्था के कार्य की ही प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

स्थानिक स्वायत्त संस्थाओं के मौजूदा नियमों में किसी प्रकार का परिवर्तन न करते हुए भी यह किया जा सकता है। वहाँ बजट के विषयों को उचित रीति से लाने, एकत्र करने व पृथक् करने का अधिकार अध्यक्ष को है। इसके अतिरिक्त सभा चाहे तो विशिष्ट पद्धति से चर्चा करने और संशोधन उपस्थित करने के बारे में प्रस्ताव स्वीकृत करके चर्चा को अभीष्ट दिशा प्राप्त करा सकती है। उपर्युक्त रीति से प्रथम माँगों पर संशोधन माँगकर उनके परिणाम तथा निर्णयों को ध्यान में रखा जाय, फिर आय के विषयों के बारे में आवश्यक प्रतीत होने वाले संशोधनों पर विचार हो तथा उनका निर्णय किया जाय। इससे चर्चा में सुलभता रहती है और निर्णय भी शीघ्र होते हैं। अमुक माँग में अमुक रकम बढ़ाई जाय और अमुक में से कम की जाय आदि संशोधन उपयुक्त नहीं हैं। उनसे गड़बड़ी मचती है और उन पर अनेक संशोधन आया करते हैं। माँगों पर अर्थात् व्यय पर पहले विचार किया जाना चाहिए। उनके सम्बन्ध में सभा का निर्णय हो जाने से सभा पर उतनी रकम प्रस्तुत करने का उत्तरदायित्व आ जाता है। उनके बारे में कल्पना भी स्पष्ट हो जाती है। इससे आमदनी के बारे में होने वाली चर्चा अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण होती है। इस अवस्था में अधिक समझदारी और सुलह-समझौते से परिणामों पर पहुँचा जाता है। इस पद्धति से यदि सभा का कार्य किया जाय तो बजट नियमानुसार ठीक समय पर स्वीकृत हो सकता है, चर्चा भी ठीक तरह से होती है और संशोधन भी ठीक से पेश किये जाते हैं।

सभा के सामने प्रश्न के आने पर तत्सम्बन्धी चर्चा को अनेक रूप दिये जा सकते हैं। सभा स्थगित करके, चर्चा को स्थगित करके तथा वैकल्पिक संशोधन [illegible] उपस्थित करके, प्रश्न पर होने वाले वाद-विवाद को [illegible] किया जा सकता है। इसी प्रकार सभा के सामने जो प्रश्न प्रस्तुत है उसके [illegible], [illegible] संशोधनों को लाकर, उस प्रश्न का [illegible] भी प्रकट किया जाता है। संशोधन [illegible]। कुछ संस्थाओं का [illegible] भी नियम होता

है कि एक सभासद् सिर्फ एक ही संशोधन पेश करे और एक ही का अनुमोदन करे। जहाँ आए हुए संशोधनों पर एक ही समय में विचार किया जा सकता है, वहाँ उपर्युक्त नियम ठीक रहता है। पर जहाँ क्रमानुसार संशोधनों पर विचार किया जाता है वहाँ यह नियम ठीक नहीं रहता। नमक-कर पर सरकारी योजना में 'प्रति मन एक रुपया है;' इस पर 'प्रति मन रु० १) रहे,' या 'प्रति मन बारह आने रहे,' अथवा 'प्रति मन आठ आने रहे' इत्यादि सारे संशोधन एक ही व्यक्ति उपस्थित कर सकता है। पहले संशोधन के अमान्य हो जाने पर वह दूसरा उपस्थित कर सकता है। इस प्रकार वह करता चला जायगा और यह अनुचित नहीं है।' यहाँ एक ही विषय पर एक ही सभासद् अनेक पर्याय—विकल्प अर्थात् पृथक्-पृथक् संशोधनों के द्वारा अपना मत प्रकट कर सकता है। इस प्रकार अधिक-से-अधिक सभासदों की सम्मतियाँ प्राप्त करने का प्रयत्न किया जा सकता है। निश्चित मत का रहना ठीक है, किन्तु उसके साथ ही यह भी ध्यान में रखना उचित है कि सभा का कार्य मतों का समन्वय करना है। अतः हर एक को विकल्प अर्थात् संशोधन प्रकट करने का अधिकार रहना चाहिए। पर यदि इस विवाद में अवांछनीय प्रकरण उत्पन्न होता हो तो विकल्पयुक्त संशोधन को अनुपयुक्त करार देना अनुचित न होगा। प्रसंगानुसार एक सदस्य को एक से अधिक संशोधन उपस्थित करना बुरा नहीं है; पर अपवाद नियम तथा परम्परा का स्थान न ले लें, यह ध्यान में रहे। सभा के सामने प्रश्न आने के काल से उस पर मत लेने के पूर्व तक संशोधन पेश किये जा सकते हैं। प्रश्न पर मत लेना आरम्भ होने पर संशोधन उपस्थित करने का अधिकार समाप्त हो जाता है।

भाषण समाप्त हो गए हों अथवा चर्चा को बन्द करना सभा ने स्वीकृत किया हो तो उसके पश्चात् प्रश्न पर मत लिया जाय। चर्चा समाप्त होने के पश्चात् प्रस्तावक उत्तर देता है। अध्यक्ष को उचित प्रतीत हो तो वह विचार प्रकट करता है। जहाँ वह केवल नियन्त्रक के रूप में ही काम करता है वहाँ उसका विवादास्पद विषय पर न बोलना ही उचित है। अध्यक्ष भाषण समाप्त होते ही प्रश्न पर मत ले। गड़बड़ी से बचने के लिए जिस प्रश्न पर मत लिया जाने वाला हो उसे वह पढ़कर सुनाये। प्रश्न पर मत लेते समय उसे क्रम निर्धारित कर देना उचित है। जिस एक प्रश्न के उपर अथवा एक ही भाग पर अनेक संशोधन पेश किये गए हों, तो जो संशोधन संलग्न कराने के लिए पेश किया गया हो अथवा चर्चा के झुकाव को दृष्टि में रखते हुए जिस पर बहुमत मिलने की अधिक सम्भावना प्रतीत हो, उस पर पहले मत लिये जायें। उसके स्वीकृत हो

जाने पर अन्य अनेक संशोधनों पर मत लेने की आवश्यकता नहीं रह जाती। सभा का समय बचता है। यदि एक संशोधन में शब्दों को निकालने के लिए कहा गया हो और दूसरे में शब्दों को निकालकर उनके स्थान पर नये शब्द डालने के लिए कहा गया हो, तो इनमें से दूसरे पर पहले मत लेने चाहिएँ। कर्ज की अदायगी कब की जाय और कर में बढ़ती कितनी की जाय, या इसी प्रकार के प्रश्नों पर अनेक संशोधन हों, तो अधिक समय लगाने वाले और कम दर रखने वाले संशोधन पर पहले मत लिये जायँ। कारण, इसका स्वीकृत होना अधिक सम्भव है। 'कर्ज़ की अदायगी दस वर्षों में की जाय' इस प्रस्ताव पर 'बीस वर्षों में की जाय' 'पन्द्रह वर्षों में की जाय' 'बारह वर्षों में की जाय' इत्यादि संशोधन आए हों तो 'बीस वर्षों में की जाय' इस संशोधन-पर मत लेने चाहिएं। उसके स्वीकृत हो जाने पर बाकी सारे संशोधन रद हो जाते हैं। उसके अस्वीकृत पर '१५ वर्षों में की जाय' वाले संशोधन पर और इसके भी अस्वीकृत हो जाने के बाद '१२ वर्षों में की जाय' वाले संशोधन पर मत लिये जायं। कर-वृद्धि के प्रश्न पर दर कम करने के विषय में अनेक संशोधन आए हों तो जिसकी दर सबसे कम हो उस पर पहले मत लिये जायँ। उसके अस्वीकृत होने पर शेष सारे संशोधन रह जाते हैं। लेकिन उससे ज्यादा दर वाले संशोधन पर मत लिये जायं। विवाद स्थगित, सभा स्थगित करने आदि बारे में जहाँ अनेक संशोधन हों और भिन्न-भिन्न कालों का निर्देश हो, वहाँ अधिक काल-दर्शक संशोधन पर पहले मत लिये जायें। उसके स्वीकृत हो जाने पर बाकी सब रद्द हो जाते हैं। उसके अस्वीकृत हो जाने पर काल-दर्शक संशोधन पर मत लिया जाय और उसके भी अस्वीकृत हो जाने पर उससे कम काल-दर्शक संशोधन पर मत लेना चाहिए।

स्वीकृत संशोधन का मूल प्रश्न पर प्रभाव पड़ता है, अतः संशोधन द्वारा संशोधित प्रस्ताव पर मत लेने चाहिएं। उस पर मत लेने से पहले स्वीकृत संशोधन के अनुसार प्रस्ताव में परिवर्तन करके, उसको उस रूप में पढ़कर सुनाना [illegible] में मत देने में आसानी होती है। किस पर मत देना है [illegible] है। [illegible] संशोधन के स्वीकृत हो जाने से सभा का [illegible] नहीं [illegible] चाहिए। संशोधन से सारा प्रस्ताव ही [illegible] संशोधन [illegible] पर पुनः उस संशोधन को मूल प्रस्ताव ([illegible]) मानकर, उस पर मत लेना चाहिए। उस [illegible] उचित है। मत [illegible]

संशोधन आए और एक पर विचार करना स्वीकार कर लिया गया तो भी उसे पुनः मूल प्रस्ताव के रूप में मत ग्रहण के लिए उपस्थित करना चाहिए। उसके अस्वीकृत हो जाने पर अन्तिम रूप से यह निर्णय मान लेना चाहिए कि सभा को विवाद स्थगित करना स्वीकृत नहीं है। विचारणीय संशोधन को असली प्रस्ताव में समाविष्ट किया जाय, मूल प्रस्ताव मानकर पुनः उस पर मत-विभाजन हो और पूरी तरह विचार हो ले, तब सभा अपना मत स्थिर करने का अवसर प्राप्त करती है। बहुत बार दाँव-पेंच की दृष्टि से संशोधन मान्य कर लिया जाता है और वह जब असली प्रस्ताव में समाविष्ट होकर आता है, तब वह अमान्य हो जाता है अथवा मूल-प्रस्ताव बनकर आने के बाद उसे अमान्य कर दिया जाता है। उस परिस्थिति में सारी चर्चा व्यर्थ हो जाती है। फिर भी चूँकि वह विचार करने के पश्चात् लिया गया सभा का निर्णय होता है अतः उसे सही रूप में मानना ही चाहिए।

प्रश्न पर मत लेते समय अध्यक्ष को इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि सभा का यथार्थ मत ही प्रकट हो। उसी दृष्टि से उसे मत ग्रहण का क्रम निर्धारित करना उचित है। केवल इसलिए कि अनेक बार मत लेने पड़ेंगे चुनाव करके ऐसा क्रम न रखे जिससे सभासदों के मन में सन्देह पैदा हो जाय। प्रश्न के अन्तर्गत प्रतिपाद्य वस्तु के अथवा भागों के क्रम को ध्यान में रखकर ही उस पर आने वाले संशोधनों पर मत लेना चाहिए। इसमें कभी तो काल-क्रम से उन पर मत लिया जाय तो कभी एक के विरुद्ध दूसरे पर मत-ग्रहण हो। पर किस बात पर मत लिया जा रहा है, और उसका मूल प्रश्न पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह सभा के सामने अध्यक्ष को साफ कर देना चाहिए। यह ठीक है कि सभासदों को सदा चौकन्ना रहना चाहिए तथापि अध्यक्ष का कर्तव्य है कि उचित मार्ग-दर्शन करे। सभा के नियमों का और सभा के संचालन का ज्ञान सभासदों को भी होना चाहिए। किन संशोधनों का समर्थन तथा किसका निषेध करना चाहिए यह उस सम्मति के आधार पर निर्धारित करे जो उसकी मूल प्रश्न के सम्बन्ध में है। सभा की कार्रवाई और सभा-तंत्र का ज्ञान वाद-विवाद में सफलता का एक बड़ा साधन है। यदि बहु संख्यकों को सभा के तंत्र का यथार्थ ज्ञान न रहे तो अल्प मत वाले सभा को जीत लेते हैं; उनकी राय के अनुसार ही निर्णय हो जाता है। अनेक बार योग्य दाँव-पेंचों का आसरा लेकर अल्प मत वाले अधिक मात्रा में होने वाले अनर्थ को टाल सकते हैं; बहु मत के सामर्थ्य को सीमित कर सकते हैं। सभा के नियमों के कारण अल्प-संख्यक बहु-संख्यकों से बराबरी का मोर्चा ले सकते हैं; समय को लंबा खींच सकते हैं, विघ्न और

उलझनें पैदा कर सकते हैं और इस सामर्थ्य के बल पर सुलह समझौते का निर्णय करवा सकते हैं। प्रजातंत्र का अर्थ यह है कि जो भी निर्णय हो वह विचार-विनिमय, आदान-प्रदान एवं समन्वय द्वारा हो। यदि निर्णय केवल इसी लिए हो कि उसे बहुमत प्राप्त है तो वह तानाशाही हो जायगी। एक के स्थान पर अनेकों की संगठित तथा दलबन्दी युक्त तानाशाही होगी और इसी कारण वह अधिक भयंकर हो जायगी। अल्प मत वालों को भी सभा का अर्थ विचार-विनिमय ही लेना चाहिए और इसी दृष्टि से व्यवहार करना ठीक है। वे अधिक आग्रहशील हों वे यह भी जिद न करें कि खायँगे तो घी से ही, नहीं तो उपवास करेंगे। सभा में जहाँ निर्णय प्राप्त करके काम करना है वहाँ सुलह-समझौते को प्रधानता तो मिलती ही है। सभा की सफलता भी उसी पर अवलंबित रहती है।

उपर्युक्त दृष्टि से सभासदों को मत देना चाहिए। यदि ऐसा न हो तो ऐसे परिणाम होते हैं जिनसे भारी अन्याय और अनर्थ हो सकता है। मौका देख-कर, विरोध को भुला देना पड़ता है तथा अन्य पक्ष वालों से मत-दान के कार्य में सहयोग करना पड़ता है। यथार्थ मत-प्रदर्शन के लिए यदि सहयोग न किया जाय तथा उचित क्रम से प्रश्न को सभा के सामने उपस्थित करके उस पर मत न लिया जाय तो कैसी अनपेक्षित परिस्थिति निर्माण हो जाती है, इसका एक सुन्दर उदाहरण रोमन सीनेट में एक बार घटित हुआ था। एक रोमन-अधिकारी डॉक्टर आत्म-हत्या करके मरा या उसे उसके उस नौकर ने, जो गुलाम नहीं था, मार डाला। नौकर ने मारा तो वह डॉक्टर के कहने पर या खून करने के इरादे से मारा? ऐसे प्रश्न सीनेट के सामने आए। क ने प्रस्ताव पेश किया कि जो स्वतंत्र हो गए हैं (अर्थात् गुलामी से जिन्हें मुक्त कर दिया गया है) उन्हें किसी प्रकार की सजा न दी जाय। दूसरे ने प्रस्ताव रखा कि उन्हें देश-निकाला दिया जाय। तीसरे ने प्रस्ताव रखा कि उन्हें मौत की सजा दी जाय। इन तीन मतों के तीन स्वतंत्र समूह बन गए। अब सवाल यह पैदा हुआ कि ये तीनों अलग-अलग मत दें या इनमें से दो समूहों को तीसरे के विरुद्ध एक समूह बनाने का अधिकार दिया जाय। तय हुआ कि अलग-अलग ही मत दें। ऐसा करते समय जब यह मालूम पड़ा कि सजा को रद करवाने वाला समूह विजयी हो जायगा और खूनी व्यक्ति छूट जायगा, तब मौत की सजा दिलाने वाला समूह देश-निकाला दिलवाने वाले समूह में जाकर बैठ गया। उसने अपने अस्तित्व को तिलांजलि देकर खूनी व्यक्ति के बेदाग छूट जाने की आपत्ति टाल दी। आग्रहवश यदि तीसरा समूह स्वतन्त्र ही रहता और अपना अलग मत देता

तो खूनी व्यक्ति यों ही छूट जाता। इसके साथ-ही-साथ सभा के सामने प्रश्न को उपस्थित करने की रीति भी अनुपयोगी थी। एक समय में एक से अधिक प्रश्न मत-ग्रहणार्थ सभा के सामने नहीं रहने चाहिएँ। एक समय में मत-ग्रहण के लिए एक ही प्रश्न होना चाहिए और उस पर सभा का मत लिया जाय। प्रत्येक प्रश्न का, उसके मान्य अथवा अमान्य होने पर निर्णय किया जाय तभी बहुमत स्पष्ट होता है। बहुमत प्राप्त करने के लिए तथा बहुमत के स्पष्ट होने के लिए अनेक विरोधी समूहों का एक साथ आना आवश्यक है। संशोधन ही एक मार्ग है जो अनेक समूहों में समन्वय कराकर उन्हें एकत्र करता है; और संशोधन का उद्देश्य भी यही है कि वह विरोधी तथा तटस्थ लोगों के मूल प्रश्नों में परिवर्तन करके उनको उनकी ओर ले जाय। सभा का निर्णय बहुमत का निर्णय होना चाहिए और यह तभी सम्भव है जब एक समय में केवल एक ही प्रश्न पर मत लिये जायँ।

मत-ग्रहण:—जिस प्रश्न पर मत लेने हों अध्यक्ष उसे पढ़कर सुनाय, और लोगों से हाथ ऊपर करने के लिए कहे। फिर विरोध करने वालों से भी हाथ उठवाने चाहिएँ। इस प्रकार अनुमान हो जाता है। बहुमत यदि पक्ष में हो तो प्रस्ताव पास और विरोध में हो तो अस्वीकृत होने की घोषणा अध्यक्ष कर दे। विधान-सभा में अध्यक्ष प्रश्न के पक्ष में रहने वालों से 'हाँ' (Ayes) कहने के लिए कहता है तथा विरुद्ध रहने वालों से 'नहीं' (Noes) कहने के लिए। और आवाजों का अनुमान करके 'हाँ के पक्ष में निर्णय' (Ayes have it) अथवा 'नहीं के पक्ष में निर्णय' (Noes have it) यों घोषित करता है। जिस समय अध्यक्ष 'हाँ' के पक्ष में निर्णय की घोषणा करे, उस समय जिन्हें वह स्वीकृत नहीं होता उन्हें 'नहीं' कहकर चिल्लाना चाहिए। कोई न चिल्लाए तो पुनः 'हाँ के पक्ष में निर्णय' कहकर वह अन्तिम निर्णय है, ऐसा घोषित करता है। चिल्लाने पर पुनः 'हाँ के पक्ष में निर्णय'—ऐसा कहता है। फिर यदि 'नहीं के पक्ष में निर्णय' कहकर उसे नामंजूर करने वाले चिल्लायँ तो वह 'विभाजन' की घोषणा (Division) करता है। उसी क्रम से पहले यदि वह 'नहीं के पक्ष में निर्णय' ऐसा घोषित करे, तो उसे नामंजूर करने वालों को 'हाँ के पक्ष में निर्णय' कहकर चिल्लाना चाहिए। न चिल्लायँ तो पुनः अध्यक्ष 'नहीं के पक्ष में निर्णय' कहेगा और निर्णय पक्का कर देगा। चिल्लाने पर फिर 'नहीं के पक्ष में निर्णय' ऐसा कहेगा और फिर उसे नामंजूर करने वालों को (मत-विभाजन) कहकर माँग करनी चाहिए। यह माँग तभी करनी चाहिए जब निर्णय घोषित हो। किन्हीं जगहों पर यह माँग एक सभासद् भी

कर सकता है। किन्हीं जगहों पर माँग करने वालों की एक खास संख्या आव- श्यक होती है। नियम के अभाव में विभाजन की माँग स्वीकृत करनी चाहिए, जब कम-से-कम तीन सभासदों ने इसकी माँग की हो। 'विभाजन' का अर्थ यह होता है कि अध्यक्ष ने जो निर्णय दिया है वह मंजूर नहीं है तथा उसके विरुद्ध आम सभा से राय माँगी गई है। 'विभाजन' का अर्थ यह है कि प्रत्येक सभासद् का मत अधिक सावधानी से लिया जाय फिर उसका निर्णय: घोषित किया जाय। अध्यक्ष, लोगों की आवाज़ तथा हाथों की गणना के आधार पर जो निर्णय देता है, कभी-कभी उसके गलत साबित होने की सम्भावना रहती है, विभाजन से यह सम्भावना दूर हो जाती है।

किन्हीं संस्थाओं के नियमों के अनुसार अध्यक्ष गुप्त मतदान-पद्धति (Ballot) द्वारा सभासदों का मत जान सकता है। इसके अतिरिक्त गुप्त मत-दान के लिए सभा में प्रस्ताव भी रखा जा सकता है, वह यदि स्वीकृत हो जाय तो फिर मत-ग्रहण उसी प्रकार होना चाहिए। गुप्त मत-दान-पद्धति में प्रत्येक सभासद् को मत-पत्रिका दी जाती है। उस मत-पत्रिका में दो कालम होते है, एक 'पक्ष में' और दूसरा 'विरोध में'। यदि सभासद् प्रश्न के पक्ष में हो तो 'पक्ष में के कालम के बीच, विरोध में हो तो 'विरोध में' के कालम के बीच × इस प्रकार का चिह्न कर देता है तथा मत-पत्रिका को सीलबन्द पेटी में डाल देता है। उसके बाद अध्यक्ष अथवा अन्य अधिकृत व्यक्ति उन्हें गिनता है। तथा उसके अनुसार अध्यक्ष निर्णय घोषित करता है। इस रीति से मत-गणना करने पर निर्णय को नामंजूर करने का अथवा मत-गणना को त्रुटि- पूर्ण कहने की गुन्जाइश नहीं रहती। वहाँ मत-विभाजन का प्रश्न ही नहीं पैदा होता। प्रत्येक सभासद् का मत अत्यन्त सावधानी से गिना जाता है। इस पद्धति में आग्रह, धौंस, डर या जबरदस्ती के वशीभूत होकर मत न देकर अपनी इच्छा के अनुसार मत दिया जा सकता है और वह किस ओर दिया, यह भी विदित नहीं होता। प्रकट रूप से हाथ उठाकर मत देने से, किसने किस ओर मत दिया, यह मालूम पड़ जाता है। सार्वजनिक प्रश्न पर प्रकट रूप से ही मत देना ठीक है। सभासदों की कर्तव्य-बुद्धि, नीति एवं धैर्य का लोगों के सामने प्रकट होना आवश्यक है। जिन संस्थाओं का सभासदत्व चुनाव द्वारा प्राप्त होता है, जो प्रातिनिधिक स्वरूप की संस्थाएँ हैं, वहाँ होने वाले निर्णय सार्वजनिक महत्त्व के होते हैं और उन्हें इस रूप में लाने में किस सभासद् तथा किस प्रतिनिधि का कैसा व्यवहार रहा, इस बात का पता चलना आवश्यक है। अतः उन स्थानों का मत दान प्रकट रूप में होना उपयुक्त है और इसी दृष्टि से

विधान-सभाओं में मत-गणना की सूचियाँ (Voting lists) प्रकाशित की जाती हैं। अध्यक्ष के चुनाव के समय अथवा अधिकारी के चुनाव के समय सामान्यतया गुप्त मत-दान-पद्धति का आश्रय लिया जाता है। किसी भी सार्वजनिक प्रश्न पर होने वाला मत-दान प्रकट रूप में होना उचित है। किस सभासद् ने उपस्थित प्रश्न पर किस ओर मत दिया, यह अन्य सभासदों को तथा जनता को विदित होना आवश्यक है।

जहाँ मत-दान प्रकट रूप से किया जाता है, और जहाँ माँग करने पर अध्यक्ष मत लेने अथवा मत-विभाजन की आज्ञा देता है, वहाँ उसके होने पर ही सभा का निर्णय मान्य होता है। जहाँ सभासदों की संख्या सीमित है वहाँ अध्यक्ष प्रत्येक सभासद् से उसका मत पूछता है, और उसे लिख लेता है; इस प्रकार निर्णय घोषित करता है। स्थानिक स्वायत्त संस्थाओं में इसी पद्धति का आश्रय लिया जाता है। अध्यक्ष पूछता जाता है और अधिकृत व्यक्ति सभासद् के नाम के आगे कागज़ पर उसका मत लिखता जाता है। इस रीति से कौन पक्ष में है, कौन विरुद्ध है और कौन तटस्थ है इसका व्यौरेवार ज्ञान हो जाता है। जहाँ सभासदों की संख्या अधिक है, वहाँ प्रत्येक सभासद् से पूछकर मत लिखना असम्भव है। इस परिस्थिति में सभा-भवन में पक्ष और विपक्ष के सभासदों को पृथक्-पृथक् बैठने के लिए कहा जाता है। तटस्थ सभासदों की संख्या कम हो तो वे अपने स्थान पर ही बैठे रहते हैं और मत-गणना के समय कह देते हैं कि हम तटस्थ हैं। यदि संख्या अधिक हो तो उनके लिए एक और जगह बनानी पड़ती है। उसके पश्चात् प्रत्येक भाग के सभासदों को लिया जाता है। गणक लोग अपने आँकड़े अध्यक्ष को दे देते हैं। अध्यक्ष को उन आँकड़ों के बारे में विश्वास हो जाय तो वह उनके अनुसार निर्णय घोषित करता है तथा अंतिम निर्णय माना जाता है। गणक या तो सभासदों में से लिए जाते हैं या संस्था के अधिकारी वर्गों में से नियुक्त कर लिए जाते हैं। सभासदों में से नियुक्ति की गई हो तो प्रत्येक पक्ष में से एक-एक को लेकर उनकी दो जोड़ियाँ बनाई जाती हैं तथा प्रत्येक जोड़ी को एक-एक भाग गणना के लिए दे दिया जाता है। मत गिनने वालों को (Kellers) कहा जाता है। विधान-सभाओं में मत-दान के कक्ष (Voting Loffies) रहते हैं। अध्यक्ष जब विभाजन की आज्ञा देता है, तब सभा-भवन से बाहर रहने वाले सदस्यों की सूचना के लिए घंटी बजाई जाती है। सामान्यतया दो मिनटों तक यह घंटी बजती रहती है। इसके समाप्त होते ही अध्यक्ष उस प्रश्न को फिर से पढ़कर सुना देता है जिस पर मत लिया जाता है। फिर मत लेता है, और अपना अनुमान बताता है।

जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं यदि सभासद् 'नामंजूर' कहकर चिल्लायें तो सभासदों को मत-दान के कक्षों में जाने के लिए कहा जाता है। इन कक्षों को नाम दिया जाता है 'पक्ष-कक्ष' (Ayes Loffy) तथा 'विरोध-कक्ष' (Noes Loffy)। सभासद् मत-दान के कक्ष में जाते हैं और वहाँ मत-गणकों के समक्ष वहाँ के नियमानुसार हस्ताक्षर करके, या नाम और नम्बर बताकर, सूची में नाम दर्ज कराकर मत-दान करते हैं। इस प्रकार मत-दान होने के पश्चात् गणक मतों को जोड़कर अपनी-अपनी फहरिस्त अध्यक्ष को दे देते हैं। अध्यक्ष उसकी विश्वसनीयता के विषय में पूर्ण समाधान हो जाने पर, उसके अनुसार निर्णय घोषित करता है। घंटी बजना खत्म हो जाने पर अध्यक्ष जब फिर से मतों का आनुमानिक निर्णय देता है, उस समय चिल्लाकर सभासदों ने नामंजूरी प्रदर्शित नहीं की तो उसी निर्णय को एक बार फिर घोषित किया जाता है, तथा वह मान्य हो जाता है। उसके पश्चात् फिर विभाजन की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

एक या दो विषय सभा के सामने हों तो उस समय 'मत' या 'विभाजन' की माँग करना आपत्ति जनक नहीं रहता। पर उस अवस्था में, जब कि अनेक विषय, सैंकड़ों धाराओं वाले बिल और उन पर हजारों संशोधन पेश हों, प्रत्येक प्रश्न पर विभाजन होने लग जाय और हर दफा मत की माँग होने लगे तो मुसीबत हो जायगी। जहाँ आनुमानिक अथवा प्राथमिक निर्णय के समय एक ओर प्रचंड बहुमत हो और दूसरी ओर मुट्ठी भर लोग केवल दिक करने के लिए या देर लगाने के लिए विभाजन की माँग कर रहे हों, तो अध्यक्ष इस सबको सीमित कर सकता है। उसे चाहिए कि वह तत्काल विरोध में रहने वाले सभासदों को अपने स्थान पर खड़े रहने के लिए कहे और उनको वह स्वयं गिन ले तथा आखीर का निर्णय घोषित करे। विधान-सभाओं में सब कहीं यही पद्धति स्वीकार की जाती है। जहाँ किसी विशेष पद्धति से मत-ग्रहण का नियम हो वहाँ उसी नियम से मत-ग्रहण करना चाहिए।

अध्यक्ष ने प्रथमिक अथवा अनुमानिक निर्णय दिया हो और किसी ने उसे नामंजूर न किया हो, उस अवस्था में सचाई को जानने के लिए यदि अध्यक्ष को लगे कि उस पर फिर मत लिया जाय, तो वह वैसा कर सकता है। सभासदों को ऐसा लगता है कि गिनने में गलती रह गई है उसको सुधारने के लिए वे मत-ग्रहण की माँग तो नहीं करते पर पुनर्गणना (Recounting) की मांग करते हैं। अध्यक्ष को उनकी माँग पूरी करनी चाहिए और स्वयं मतों की गणना करके निर्णय घोषित करे। ऐसा करने से मत अथवा विभाजन द्वारा होने

वाले समय का दुरुपयोग नहीं होता।

केवल योग्य और अधिकारी सभासदों को ही मत देने का अधिकार है। किसी सभासद् की पात्रता चंदा न देने के कारण, सजा हो जाने, दिवालिया हो जाने, पहले की अनुपस्थिति के कारण, कर्जदार होने अथवा अन्य किन्हीं कारणों से नष्ट हो गई हो और वह दोष अथवा अपात्रता सभा के समय मौजूद हो, तो उसे मत देने का अधिकार नहीं। किन्हीं संस्थाओं के नियमानुसार चर्चा में तो भाग लिया जा सकता है; पर जब तक एक विशेष काल तक उसकी सदस्यता स्वीकृत न हो जाय तब तक उसे मत देने का अधिकार प्राप्त नहीं होता। इस परिस्थिति में वे सभासद् मत नहीं दे सकते। मतदान के अधिकार के बारे में उठाए जाने वाले आक्षेप, सभा का निर्णय घोषित होने से पूर्व ही उठाने चाहिएँ। वास्तव में ये आक्षेप तभी उठाए जायँ जब प्रश्न पर मत लिये जाने वाले हों। आक्षेपों पर अध्यक्ष जो निर्णय दे तो आक्षेपकर्ता सभासद् उसी के अनुसार व्यवहार करें। ऐसे सदस्य ने आक्षेप उठाए जाने से पूर्व यदि मत दिया हो; और अध्यक्ष ने उसके इस कार्य को अनधिकृत साबित किया हो, तो उसके मत को घटाकर निर्णय घोषित किया जाता है। निर्णय हो चुकने के पश्चात् आक्षेप नहीं उठाया जा सकता। सभा के होने तक वह निर्णय मान्य समझा जाता है।

मत-ग्रहण के समय अथवा विभाजन के समय अनेक सभासद् तटस्थ रहते हैं अथवा गलती से उनके मत गिनने से रह जाते हैं; ऐसे सभासदों को अध्यक्ष के निर्णय घोषित करने से पूर्व, अपना मत दर्ज करवाने के लिए कहने का अधिकार है। निर्णय के घोषित हो जाने पर यह अधिकार व्यर्थ हो जाता है। गलती से दूसरे पक्ष में सभासद् मत दे बैठा हो और उसे गिन लिया गया हो तो, उसे बदलने का सभासद् को अधिकार नहीं है। सभासद् यह कर सकते हैं कि आनुमानिक निर्णय के समय उन्होंने जिस पक्ष में मत दिया हो उससे विरुद्ध पक्ष में वे विभाजन के समय मत दें। परन्तु विभाजन के बाद मत-गणना हो चुकी हो तो फिर मत बदला नहीं जा सकता। प्रस्ताव अथवा संशोधन उपस्थित करके भी उसके विरुद्ध सभासद् मत दे सकता है। हाँ, उसे यह सब प्राथमिक निर्णय के समय ही करना चाहिए। पहले एक ओर और पीछे दूसरी ओर मत देने से नियमों का भंग न भी हो, तो भी उससे सभासद् की प्रतिष्ठा में कमी आ जाती है, यह स्पष्ट है। संशोधन पर तटस्थ रहकर उसी को मूल प्रस्ताव के रूप में उपस्थित करके उस पर मत लिया-दिया जा सकता है। विभाजन के लिए एक आवाज देकर प्रत्यक्ष विभाजन के समय

उसके विरुद्ध मत देना कॉमन्स-सभा की प्रथा के अनुसार अनुचित है। केवल विभाजन के लिए अपने मत के विरुद्ध विरोधी आवाज देना, केवल मत प्राप्त करने के लिए अपने पक्ष का बहुमत होते हुए भी मत की माँग करना अनुचित है। कॉमन्स-सभा में ऐसे प्रसंगों में अपराधी सभासद् का मत, उसको पहली बार जिस पक्ष में मत दिया है उसके अनुसार दर्ज किया जाता है। एतद्विषयक आक्षेप निर्णय के घोषित होने से पूर्व ही उठाया जाना चाहिए। चर्चा के समय, प्रश्न पर मत ग्रहण के समय अनुपस्थित हो तो वह मत दे सकता है। पर मैंने गलती से किस प्रश्न पर मत लिया जा रहा था यह जाने बगैर ही दूसरी ओर मत दिया है अत. वह बदलने दिया जाय, ऐसी माँग करने का अधिकार उसे नहीं रहता। वास्तविक चर्चा को सुनकर, और मत लेते समय पढ़े गए प्रश्न को सुनकर सभासद् को मत देना चाहिए, ऐसा प्रचलन कॉमन्स-सभा में पहले था। सम्प्रति चर्चा के समय अनुपस्थित रहने वाले सभासद् अनेक सभाओं में प्रायः दिखाई देते हैं। पर विभाजन के समय, मत के समय, सभा-भवन में भीड़ होती है और मतदान किया जाता है। पक्ष-संगठन के कारण मत पर चर्चा का क्वचित् ही प्रभाव पड़ता है। इस स्थिति में उपर्युक्त परिस्थिति अनिष्ट होने पर भी अपरिहार्य हो जाती है। मत देने भर के लिए ही उपस्थित रहना अनेक सभासद् अपना कर्तव्य मानते हैं। उनकी सुविधा के लिए केवल मत-दान के समय उपस्थित रहकर मत देना सर्वत्र विधियुक्त मान लिया गया है। सभा का स्वरूप विचार-विनिमय के सम्बन्ध के रूप में न होकर, या मतों में समन्वय स्थापित करने के साधन के रूप में न होकर, एक दर्ज करने की कचहरी का-सा हो जाय, यह अभीष्ट तो नहीं, पर आजकल होता यही है।

मत के लिए प्रस्तुत किए हुए प्रश्नों से सभासद् का व्यक्तिगत स्वार्थ हो तो उसे प्रश्न पर मत देने का अधिकार नहीं। निजी एवं वैयक्तिक स्वार्थ तथा सार्वजनिक हित के मध्य विरोध उत्पन्न होने की संभावना के कारण इस प्रकार के सभासदों का मत-दान ठीक नहीं। मत का अधिकार तभी नहीं मिलेगा जब सभासद् के वैयक्तिक हित-सम्बन्ध उस प्रश्न से सम्बन्धित हों। अन्य अवस्था में उसे मत-दान से वंचित नहीं किया जा सकेगा। कम्पनी का सम्बन्ध हो और सभासद् उसमें हिस्सेदार हों तो इतने से उसका मताधिकार नष्ट नहीं होगा। विशेष नीति से कोई हित निबद्ध हो तो भी अपात्रता न आयगी। नगर-सुधार की योजना से निजी सम्बन्ध हों तो इतने से सभासद् के मत-दान का अधिकार नहीं छीना जा सकता। कमेटी की जगह बेची अथवा किराए पर दी, कमेटी को कर्ज

दिया अथवा समाचार-पत्र में उसके विज्ञापन किये, अपने पेशे के मुताबिक माल लिया अथवा कमेटी का या संस्था का वकालतनामा लिया तो इतने से सभा की सदस्यता पर किसी प्रकार का दोष नहीं आता, इस प्रकार के नियम सर्वत्र हैं। तथापि उक्त विषयों से सम्बद्ध प्रश्न यदि सभा के सामने आयँ तो ऐसे सभासदों का मत न देना ही उचित है। बम्बई-कारपोरेशन के नियमानुसार वह चर्चा में भाग नहीं ले सकता, मत नहीं दे सकता; इतना ही क्यों, उसे तत्सम्बन्धी कागज़ात को देखने अथवा तत्सम्बन्धी प्रश्न पूछने तक का अधिकार भी नहीं है। जब निजी सम्बन्ध इतने व्यापक, वैयक्तिक अथवा सतत न हों, जिससे उसके सभासदत्व पर कोई आँच आती हो, तब, जिस समय भी निकट एवं वैयक्तिक सम्बन्ध प्रश्न से ताल्लुक रखता हो, और प्रश्न भी किसी सार्वजनिक नीति को निर्धारित करने वाला हो तो उस समय सभासद् के लिए यही ठीक है कि वह चर्चा में भाग न ले और मत न दे। जहाँ नियम हों वहाँ एतद्विषयक् आक्षेप मत-दान होने से पूर्व उठाने चाहिएँ। अध्यक्ष जैसा निर्णय दे आक्षेप-कर्ता सभासद् वैसा ही आचरण करे। निकट एवं वैयक्तिक सम्बन्धों के मानी आर्थिक सम्बन्ध ही होते हैं। व्यक्ति के विचारों का स्वाभिमान का सार्वजनिक कृत्यों का अथवा निजी व्यवहार का सम्बन्ध, प्रश्न से आबद्ध होने-मात्र से मत देने का अथवा चर्चा में भाग लेने का अधिकार नहीं होता। सभासदत्व रद करने सम्बन्धी चर्चा में वह भाग ले सकता है और यदि नियम के विरुद्ध न हो, तो मत भी दे सकता है। पर जहाँ पहले ही सभासदत्व स्थगित (Suspended) हो वहाँ सभासदत्व के अभाव में मत देना संभव नहीं।

सभा में मत-ग्रहण के समय जो उपस्थित रहेंगे उन्हीं को मत देने का अधिकार रहेगा। किसी के द्वारा यह काम नहीं कराया जा सकता। सभा का अर्थ उस व्यवस्था से है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति विचार-विनिमय में भाग लेता है, निर्णय पर पहुँचता है तथा उसके अनुसार अपनी राय जाहिर करता है। विचार तथा मन प्रत्येक का अपने-आप करना होता है। मत, मनन द्वारा हुए विचार के परिपक्व फल को कहते हैं। अतः सभासद् स्वयं उपस्थित रहकर अपना मत दे। अनुपस्थित सभासद् को अधिकार-पत्र द्वारा (By Proxy) मत देने का अधिकार देना चर्चा की तात्त्विक भूमिका से असंगत है। यही आक्षेप एक सभासद् के एक से अधिक मत देने के बारे में भी उठता है। एक सभासद् का मत उतना ही महत्त्वपूर्ण माना जाना चाहिए जितना कि किसी अन्य सभासद् का। प्रत्येक सभासद् को एक ही मत देने का अधिकार हो। निर्वाचित प्रतिनिधि मतों के महत्त्व की दृष्टि से समान ही होने चाहिएँ। चाहे

वह प्रचंड बहुमत से निर्वाचित हुआ हो, चाहे निर्विरोध अथवा 'मात्रा के विपर्यय' से निर्वाचित हुआ हो, प्रत्येक के मत का महत्त्व समान ही समझना चाहिए। सार्वजनिक, वैधानिक एवं अधिकांश स्वतः सिद्ध सभाओं में इस प्रकार माना जाता है। पर व्यापारी कम्पनियों, औद्योगिक कम्पनियों, बीमा कम्पनियों आदि की सभाओं में, हालाँकि सभा-संचालन के प्रश्न पर उपस्थित सभासदों का मत पहले लिया जाता है और उस मत-ग्रहण के समय प्रत्येक सभासद् का एक ही मत समझा जाता है तो भी, मत की माँग करने पर और उस समय मत लेते समय जिस सभासद् के कम्पनी में जितने हिस्से होते हैं, उतने उसके मत गिने जाते हैं। उसी प्रकार अनुपस्थित सदस्यों के मत अधिकार-पत्र के द्वारा दर्ज किये जाते हैं। अतः इन सभाओं में अधिकार-पत्रों की प्राप्ति सही नियमानुसार तथा उनसे संबद्ध विषयों को ही विशेष महत्त्व दिया जाता है। अनेक मजदूर-संस्थाओं की सभाओं में चुने गए प्रतिनिधियों के मत, उन्हें चुनने वाली संस्थाओं के सभासदों की संख्या (Block-Votes) के आधार पर गिने जाते हैं। प्रतिनिधि का मत उन-उन संस्थाओं के सभासदों की संख्या मानी जाती है। एक ऐसे मजदूर-संघ के प्रतिनिधि का मत, जिसमें नाम-मात्र को कुछ सभासद् हैं, और एक ऐसे मजदूर-संघ के प्रतिनिधि का मत, जिसमें हजारों सभासद् हैं, समान समझा जाना अन्य दृष्टियों से अनुचित है। कारण, इस मत समानता की अवस्था में अल्प-संख्यक लोग बहुसंख्यकों पर अपना निर्णय लाद सकते हैं। मजदूर-संघ के कार्य की दृष्टि से तथा होने वाले निर्णय की दृष्टि से सभा के सामने आने वाला प्रत्येक प्रश्न, घटक-संस्थाओं द्वारा होता है। इस दृष्टि से प्रतिनिधि के मत को उसे चुनने वाली संस्था के सभासदों की संख्या के समान गिनना उचित सिद्ध होता है। केवल चर्चा की दृष्टि से विचार करना हो तो एक सभासद् को एक ही मत देने का अधिकार रहना चाहिए और वह भी तब जब वह स्वयं सभा में उपस्थित हो। ऐसा होने पर ही विचार-विनिमय ठीक और साङ्गोपाङ्ग हो सकेगा। मत-दान के समय यह देखने की व्यवस्था होनी चाहिए कि जो अधिकार-पत्र और सभासदों की संख्या दिखाने वाले कार्ड पेश किये गए हैं, वे ठीक ढंग से तथा नियमानुसार हैं या नहीं।

विधान-सभाओं में 'जोड़ी' (Pairing) की एक प्रथा होती है। दोनों पक्षों के वे सभासद्, जो अनुपस्थित रहना चाहते हैं, पर यह नहीं चाहते कि दोनों पक्षों के मतों के अनुपात में किसी प्रकार का कोई अंतर आ जाय, वे 'जोड़ी' प्रथा का अवलम्बन करते हैं। एक पक्ष का एक सभासद् दूसरे पक्ष के

एक सभासद् के साथ यह करार करता है कि वे एक निश्चित काल तक अनुपस्थित रहेंगे, और इसके अनुसार वे दोनों अनुपस्थित रहते भी हैं। इससे दोनों पक्षों के मतानुपात में अंतर नहीं आता। यह 'जोड़ी' की प्रथा सभासदों की सुविधा के लिए है, नियमों में उसे कहीं भी स्वीकृति नहीं दी गई। अतः यदि कोई सभासद् इस करार को भंग करके उपस्थित हो जाय और मत दे दे तो कानून की शरण लेकर इस पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। तथापि लोग इस नीति का पालन करते हैं कि वे इन करारों का भंग नहीं करेंगे। करार द्वारा बँधा हुआ सभासद् उपस्थित रहेगा, चर्चा में भी भाग लेगा, परन्तु मत नहीं देगा।

मत दर्ज करने या विभाजन की पद्धति से सम्बन्ध रखने वाले आक्षेप, मत-गणना के आरम्भ होने से पहले अथवा समाप्त होने के बाद उठाने चाहिएँ। उसके चालू रहते समय नहीं उठाए जा सकते। मत-गणना के चालू रहते समय आक्षेप करने की आज्ञा देना अव्यवस्था को आमंत्रित करना है। मत-गणना के आँकड़े अध्यक्ष के पास आने पर तथा निर्णय घोषित होने के बाद आक्षेप नहीं किये जा सकते। निर्णय से पूर्व आए हुए सब आक्षेपों पर विचारपूर्वक अध्यक्ष को उनके विषय में निर्णय प्रकाशित करना चाहिए। निर्णय प्रकाशित करने के पश्चात् जोड़-बाकी में कोई गलती रह जाय तो विधान-सभा के वृत्तांत में उसे सुधारा जा सकता है। यदि किसी सभासद् ने दोनों पक्षों की ओर से मत दिये हों तो उसे वास्तव में किस पक्ष की ओर मत देना था, यह बताकर सुधार किया जाय—ऐसी माँग कॉमन्स-सभा में की जा सकती है। तथापि ये सुधार निर्णय के प्रकाशित किये जाने के पश्चात् होते हैं, अतः उनके कारण निर्णय के अभिप्राय में परिवर्तन नहीं हो सकता। मत गिनने वालों के आँकड़े ठीक हैं इस बात का समाधान करना, आवश्यकता पड़ने पर पुनः विभाजन कराकर मत-गणना आदि कराना अध्यक्ष का कर्त्तव्य है। एक बार निर्णय के प्रकाशित हो जाने पर, उसमें किसी प्रकार की न्यूनता या दोष का रह जाना अध्यक्ष के लिए शोभनीय नहीं है।

अध्यक्ष को सभा की ऐसी स्थिति बनाये रखनी चाहिए कि जिससे सभासदों को मत देने की पूरी स्वतन्त्रता रहे। वाद-विवाद द्वारा किसी के मतों को अपने अनुकूल बना लेना सर्वथा उचित है। सूचना-पत्र बाँटकर सभासदों में प्रचार करना भी अनुचित नहीं। पर चर्चा से पूर्व किसी से लिखित रूप में यह पूछना कि वह किस ओर मत देगा, सभा के विधान के विरुद्ध है। मत-गणना के समय मतों के लिए सभ्यतापूर्वक प्रार्थना करना भी बुरा नहीं। पर खींच-तान

करना, सभासद् को चारों ओर से घेर लेना, धमकी देना तथा डर दिखाना यह सब अनुचित व सभ्यता के विरुद्ध है। अध्यक्ष का कर्तव्य है कि ऐसी स्थिति न आने दे। उसे यह बात भी सावधानी से देखनी चाहिए कि सभा में मत-ग्रहण के समय सभासदों के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। दर्शक, नौकर, स्वयंसेवक आदियों को मत-ग्रहण के समय सभा-स्थल की सीमा से बाहर जाने के लिए कह देना चाहिए। दर्शक कहीं नारे लगाकर या शोर मचाकर सभासदों को बाधित न करें, इस विचार से मौका आ जाय तो दर्शकों को भी सभा-भवन से बाहर जाने के लिए कहना अनुचित नहीं है। तात्पर्य यह है कि सभा के भीतर और बाहर शांति रहे और सभासद् अपनी इच्छा के अनुसार मत दे सकें। विधान-सभाओं में ऐसी प्रथा है कि मत-ग्रहण के समय सूचना की घंटी के बन्द होते ही सभा-भवन के द्वार भी बन्द कर दिए जाते हैं, ताकि सभासदों के अतिरिक्त अन्य कोई वहाँ न आ सके। अन्दर केवल सभासद् या विधान सभा के नौकर ही रहते हैं। द्वार बन्द होने के पश्चात् आने वाले सभासद् को अन्दर नहीं आने दिया जाता। निर्णय के प्रकाशित हो जाने पर द्वार फिर खोल दिए जाते हैं। जहाँ दर्शक और सभासद् नज़दीक बैठते हैं, वहाँ अधिक सावधानी बरतनी पड़ती है। वहाँ उनके सभासदों में मिल जाने की तथा उन्हें डराने-धमकाने की अधिक संभावना रहती है। दर्शक लोग गैलरी में हों तो खास सावधानी की ज़रुरत नहीं रहती।

अतिरिक्त मत :—मत-गणना के पश्चात् समान मतों के आने पर अध्यक्ष को अतिरिक्त मत देने का अधिकार है। वह अपनी सदसद्विवेक-बुद्धि के अनुसार किसी भी ओर मत दे सकता है। तथापि इस विषय में कुछ प्रथाएँ सर्वमान्य स्वीकृत की गई हैं। जहाँ प्रश्न यह हो कि चर्चा चालू रहे या खत्म हो जाय, वहाँ उसे चालू रहने के पक्ष में मत दिए जायँ। अपने अतिरिक्त मत से सभा के निर्णय का उत्तरदायित्व उसे नहीं लेना चाहिए। और मत देते समय उसे यह कहने का अधिकार है कि उसका मत इसी दृष्टि से दिया गया है। विद्यमान स्थिति में अतिरिक्त मत द्वारा अध्यक्ष द्वारा परिवर्तन न लाया जाय प्रस्तुत विषय पर पर्याप्त चर्चा हो चुकने पर सभा स्थगित करने का अथवा पूर्व-प्रश्न का प्रस्ताव आया हो, तो उसके विरुद्ध अपना अतिरिक्त मत देकर, चर्चा को आगे चालू रखने अथवा प्रश्न पर मत लिये जाने की परिस्थिति को निर्माण करना ठीक रहता है। संशोधन पर समान मत आये हों तो अतिरिक्त मत देकर विद्यमान स्थिति को बनाए रखना चाहिए। अतिरिक्त मत अध्यक्ष को देना जरूरी है। इस उत्तरदायित्व से वह बच नहीं सकता।

उसने यदि मत न दिया तो 'सभा के सामने का प्रश्न' अस्वीकृत हो गया—ऐसा माना जाता है। इंगलैंड में लार्ड-सभा के अध्यक्ष को अतिरिक्त मत देने का अधिकार नहीं है, अतः वहाँ यदि किसी प्रश्न पर समान मत आ जायँ तो वह नामंजर हो गया है—ऐसा माना जाता है। सभा का अन्त निर्णय के रूप में हो, इसके लिए अध्यक्ष को अतिरिक्त मत देने का अधिकार होना ही चाहिए और अध्यक्ष इस अधिकार का उपयोग करे। जहाँ उसे यह प्रतीत हो कि प्रश्न के गुण-दोषों पर विचार करके मत दिया जाय, वहाँ उसे वैसा करने का पूरा अधिकार है। जहाँ प्रश्न पर वाद-विवाद करने के सम्बन्ध में निर्णय देने की स्थिति सामने आ जाय तो अध्यक्ष इस दृष्टि से अपना अतिरिक्त मत दे कि प्रश्न पर विचार-विनिमय हो, उचित निर्णय और सदस्यों को विवाद में भाग लेने का पूरा अवसर मिले।

सभा-विसर्जन—अध्यक्ष को चाहिए कि वह काय-क्रम में उल्लिखित विषयों का अपनी सम्मति से या सभा के परामर्श से जो क्रम निश्चित करे, उसी क्रम के अनुसार पूर्ण भी करे। कार्यक्रम के अन्तर्गत विषयों के समाप्त होने पर सभा विसर्जित हो जाती है। कार्य-क्रम में जो विषय अङ्कित नहीं हैं उन पर किसी भी स्थिति में विचार नहीं किया जा सकता—इसका विवेचन पहले ही किया जा चुका है। बचे हुए काम अथवा विचारणीय विषय आगामी बैठक के लिए स्थगित किये जा सकते हैं। ऐसी स्थिति में उस बैठक में बचे हुए काम पर ही विचार किया जा सकेगा। नवीन विषयों पर विचार नहीं किया जा सकता। स्थगित सभा का अर्थ यह है कि पिछली सभा ही फिर चालू हो रही है। एक कार्यक्रम को पूरा करने के लिए बुलाई गई सभा कितनी ही बार क्यों न बुलाई जाय, वह एक ही मानी जाती है। जब इस आशय का प्रस्ताव आता है कि बचा हुआ कार्य अथवा विषयों को दूसरी सभा पूरा करे अथवा आगामी सभा करे या रद किए जायँ, तब पहली सभा खत्म हो गई ऐसा माना जाता है। अनिश्चित काल के लिए सभा स्थगित हुई हो तो पुनः नियमानुसार नोटिस देकर उसे बुलाना होता है, उसके सामने चूँकि पिछली सभा का ही कार्यक्रम रहता है, अतः वह नई सभा नहीं होती। बहुत दफा सभा के कार्य-क्रम में किसी एक या दो विषयों या बातों को अनिश्चित रूप से उठा रखा जाता है। यह विषय मूल सभा चालू हो तो उचित नोटिस देकर उसी सभा में विचारार्थ लिया जा सकता है। मान लीजिए, चालू वर्ष की पहली तिमाही सभा में एक विषय को अनिश्चित काल के लिए उठा रखने का प्रस्ताव आया, यह तिमाही सभा तीन-चार बार स्थगित होकर चालू रहे, तो उस अवस्था में नियमानुसार नोटिस देकर

उक्त प्रस्ताव को संस्था की बैठक के सामने विचारार्थ प्रस्तुत किया जा सकता है। कुछ संस्थाओं के नियमों के अनुसार अनिश्चित काल के लिए उठा रखी गई बात का अर्थ एक खास समय की अवधि माना जाता है और उस अवधि के पश्चात् जो पहली सभा हो, उसके कार्य-क्रम में उस बात को अपने-आप ही स्थान मिल जाता है। पूना नगरपालिका के नियम के अनुसार यह अवधि एक महीना है। उसके बाद की पहली साधारण सभा में उस विषय को कार्य-क्रम में अवश्य शामिल करना चाहिए, ऐसा नियम है। जिन संस्थाओं की बैठकें बराबर होती हैं, वहाँ सभा स्थगित करने से अथवा विशिष्ट विषय के उठा रखने से विशेष काल-हानि नहीं होती। परन्तु उन सभाओं का, जो वर्ष में एक या दो बार होती हैं और वह भी एक समय एकाध दिन के लिए ही कार्य-क्रम समाप्त नहीं हो पाता और बचा हुआ कार्य-क्रम अगली अथवा अन्य किसी सभा के लिए उठा रखने का प्रस्ताव लाकर सभा खत्म कर दी जाती है। इस परिस्थिति में बरसों या महीनों गुजर जाते हैं। परिस्थिति बदल जाती है। सभा के समय, विषय के महत्त्व आदि को ध्यान में रखकर ही कार्य-क्रम कार्य-समिति द्वारा, कार्य-दर्शी द्वारा अथवा अधिकारी-मंडल द्वारा निर्धारित किया जाना चाहिए। अध्यक्ष का भी कर्तव्य है कि वह सभा के काल और विषय के महत्त्व को ध्यान में रख कर यथाशक्ति इस प्रकार सभा का संचालन करे, जिससे निर्धारित कार्य-क्रम पूर्ण हो जाय। सारा कार्य-क्रम उचित वाद-विवाद और निर्णय के बाद ही पूरा हो तो सभा सफल हो जाती है और अध्यक्ष भी प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

उपसंहार—सभा की कारवाई के अपने उचित समय पर समाप्त होते ही अध्यक्ष को उसका उपसंहार करना चाहिए। जो निर्णय वहाँ स्वीकार किये गए हैं, उनकी संक्षेप में समालोचना करनी चाहिए। सभासदों को यह जानकारी करा देनी चाहिए कि निर्णयों की दृष्टि से उनके कर्त्तव्य क्या हैं। उत्साह, आशा, स्फूर्ति एवं सन्तोष के वातावरण में सभा समाप्त हो। यह बहुत-कुछ अध्यक्ष पर निर्भर करता है। उसका सभा के अन्त में सन्देश, आखिरी भाषण, सभासदों के मन पर छाप छोड़ जाता है। यह आखिरी भाषण संक्षिप्त, चटपटा और सारगर्भित हो। सभा में के घाव, आघात-प्रत्याघात मान-अपमान आदि के कारण आई हुई कटुता, अध्यक्ष के आखरी भाषण से दूर हो जानी चाहिए। सदस्यों को अनुभव हो कि सभा पूर्ण सफल रही है तथा सभा का सारा वातावरण स्फूर्ति और प्रसन्नता का रहा है। इस आखिर की 'भैरवी' से मजलिस को खुश होकर मग्न होना चाहिए। उत्कृष्ट सवार का अनुशासन घोड़े को भी प्रिय लगता है। सभा-संचालन में सहयोग और अनुशासन दोनों आ जाते हैं। अध्यक्ष

इस पार्श्व-भूमि को ध्यान में रखकर, इस प्रकार व्यवहार करे जिससे सभी सभासदों का धन्यवाद उसे प्राप्त हो सके। प्राप्त सहयोग के लिए अध्यक्ष सभासदों को धन्यवाद दे। जहाँ अध्यक्ष का काम केवल सभा का नियंत्रण है वह उपसंहार नहीं करता और अपनी तटस्थ भूमिका को यथानुरूप बनाए रखता है। कार्य-क्रम की समाप्ति ही सभा की समाप्ति है। और जहाँ अध्यक्ष उपसंहार करता है वहाँ उपसंहार की समाप्ति पर सभा समाप्त होती है। तथापि जब तक अध्यक्ष अपने मुँह से 'सभा समाप्त हो गई है' ऐसा नहीं कहता तब तक वह समाप्त नहीं होती और उसका अधिकार भी समाप्त नहीं होता। आभार-प्रदर्शन आदि कार्यों के समय भी नियन्त्रण की आवश्यकता रहती है। एतद्विषयक मर्यादाओं का विवेचन पहले किया जा चुका है। आभार-प्रदर्शन के बाद जहाँ उचित हो, वहाँ राष्ट्र-गीत का गायन होना चाहिए और तब अध्यक्ष को 'सभा समाप्त हो गई', ऐसा घोषित करना चाहिए। यह घोषित करने के बाद ही सभा विसर्जित होती है। तब तक अध्यक्ष को सभा पर हर प्रकार से नियंत्रण रखने का अधिकार है। सभा-समाप्ति की घोषणा होने के बाद सभा-स्थान पर सभा के संयोजकों का नियंत्रण हो जाता है।

संगठित संस्थाओं की सभा का स्वरूपः—संविधान द्वारा संगठित-संस्थाओं की सभाओं और सार्वजनिक सभाओं में बड़ा भेद यह है कि एक में भाग लेने का अधिकार नियमित रूप से, जिन्हें संस्था की सदस्यता प्राप्त हो, उन्हीं को रहता है और दूसरे में केवल सभा में उपस्थित रहने से मिल जाता है। अतः संगठित संस्थाओं की सभाएँ सार्वजनिक-सभाएँ नहीं होतीं। उन्हें सार्वजनिक सभा कहने का अधिकार अवश्य रहता है। पर, जिस समय उनके सभासदों की सभाएँ होती हैं उस समय जो लोग सभासद् नहीं होते, उन्हें सभा में भाग लेने का अधिकार नहीं होता। संस्था की चाहे साधारण सभा हो, चाहे असाधारण सभा हो, या प्रार्थित-सभा हो, उसमें केवल सभासद् ही भाग ले सकते है। ये सभाएँ प्रकट रूप में हों, उनका कार्य प्रकट रीति से किया जाय तो भी वे सार्वजनिक नहीं होतीं। केवल दर्शकों और संवाददाताओं के आने से सभा सार्वजनिक नहीं होती। केवल यही कहा जा सकता है कि वह गुप्त सभा नहीं है प्रत्युत प्रकट सभा है। राष्ट्रीय सभा के वार्षिक अधिवेशन में लाखों की संख्या में लोग उपस्थित रहते हैं, पर चालू कार्यों में वे ही भाग ले सकते हैं जो प्रतिनिधि या सभासद् हों। इन प्रतिनिधियों और सभासदों की संख्या तीन-चार हजार से ज्यादा नहीं होती। संस्थाएँ स्वयं सिद्ध हों या वैधानिक हों, उनके सभासदों की सभाएँ सार्वजनिक नहीं होतीं। नगरपालिका के सभासदों की

लाखों मतदाताओं ने चुना है; पर सभा में निर्वाचित व्यक्ति ही भाग ले सकते हैं। तथापि संस्थाओं की सभाओं को जब प्रकट रूप प्राप्त होता है और जब सभासदों से भिन्न व्यक्तियों को उपस्थित रहने का मौका दिया जाता है, तब शांति और व्यवस्था की समस्या उत्पन्न होती है।

दर्शक:—संस्था की सभाओं में सभासदों से भिन्न अन्य किसी को भी उपस्थित रहने का अधिकार नहीं है। दर्शक रहें या न रहें, इसका निश्चय संस्था को करना होता है। वैधानिक संस्थाओं की सभाएँ सार्वजनिक हों, इस प्रकार के नियम बने होते हैं। पंचायत, लोकल बोर्ड, नगरपालिका आदि की सभाओं के नियमों में ही दर्शकों को उपस्थित रहने की आज्ञा रहती है। जहाँ दर्शकों को अनुमति है वहाँ संवाददाताओं को भी अनुमति है। चूँकि इन संस्थाओं में चलने वाले कार्य का प्रभाव जनता के जीवन पर पड़ता है, अतः जनता को इस बात का अधिकार है कि वे इनके कार्यों को तथा कार्य-पद्धतियों को देखें। इस दृष्टि से सभा-स्थान में जितने दर्शकों की सुविधा हो सकती है, उतनों को प्रवेश-पत्र देना पड़ता है। किन्हीं खास मौकों पर अध्यक्ष को यह अधिकार रहता है कि वह दर्शकों को बाहर जाने के लिए कहे और गुप्त सभा करे। किन्हीं संस्थाओं के नियमों के अनुसार अध्यक्ष तभी गुप्त सभा कर सकता है, जब बहुसंख्यक सभासद् वैसा प्रस्ताव करें। विधान-सभाओं में तभी गुप्त सभाएँ हो सकती हैं जब सरकार निश्चित करे। जब गुप्त-सभा न हो तब जनता को उपस्थित रहने और चर्चा को सुनने का अधिकार है। दर्शक लोग कहाँ बैठें, कैसा व्यवहार करें आदि बातों के बारे में आवश्यक नियन्त्रण का अधिकार अध्यक्ष को रहता है। यदि कोई दर्शक असभ्यता करे, दंगा मचाए या अन्य कोई नियम-विरुद्ध काम करे तो अध्यक्ष उसे बाहर चले जाने के लिए कहता है। यदि वह कहे से न जाय तो उसे बाहर करने के लिए आवश्यक शक्ति का प्रयोग करने का अधिकार अध्यक्ष को है। सभा-भवन के नियंत्रण का कार्य अध्यक्ष को तथा संस्था के नौकरों को करना होता है। अध्यक्ष के बुलाए बगैर पुलिस को अन्दर आने तथा बन्दोबस्त करने का अधिकार नहीं है। जहाँ दंगा हो गया हो अथवा होने की पूर्ण सम्भावना हो वहाँ पुलिस वाले अन्दर घुस सकते हैं। अन्य अवसरों पर उनके लिए अध्यक्ष की अनुमति लेना आवश्यक है। सभा-स्थान से बाहर आने-जाने के नियन्त्रण के लिए पुलिस वालों को कानून द्वारा जितना अधिकार मिला हो उतना ही प्रयास करना चाहिए। नगरपालिका के कार्यालय से बाहर पुलिस भले ही खड़ी हो, पर तब तक वह अन्दर नहीं जा सकती, जब तक कि अध्यक्ष उसे न

बुलाय, दंगा न हो जाय या दंगे की तीव्र सम्भावना न हो। अन्य स्वयं सिद्ध संस्थाओं की सभाओं के लिए भी यही नियम हैं। सभा प्रकट रूप में हो और दर्शक उपस्थित हों तो सभा-स्थान में उनका नियंत्रण करने का अध्यक्ष को अधिकार है। अनुचित कार्य करने वाले को सभा से बाहर चले जाने के लिए कहने और या न कहने पर आवश्यक शक्ति प्रयोग-पूर्वक उसे बाहर करने का अधिकार अध्यक्ष को है। सभा-स्थान अथवा सभा-नगर में बन्दोबस्त रखने का अधिकार संस्था का है। बगैर बुलाए पुलिस अन्दर नहीं जा सकती। झगड़ा हो चुका हो या होने की पूरी सम्भावना हो तो उस समय पुलिस अन्दर जा सकती है, शांति-स्थापना की दृष्टि से सभा-भवन पर भी अधिकार कर सकती है। इसके अतिरिक्त अन्य अवसरों पर उन्हें अन्दर जाने का अधिकार नहीं। अंदर की व्यवस्था और नियन्त्रण पूर्णतया संस्था के अधिकार की वस्तु है। अध्यक्ष अथवा सभा जिस समय निश्चित करे, दर्शकों को बाहर चला जाना चाहिए। वे लोग कहाँ बैठें, कैसा व्यवहार करें, कहाँ से प्रवेश करें आदि सब मामलों में नियम और नियन्त्रण करने का अधिकार संस्था का है। गुप्त-सभा के समय दर्शकों के साथ-साथ संवाददाताओं को भी बाहर जाना पड़ता है।

संवाददाता:—सभा में यदि दर्शकों को उपस्थित रहने का अधिकार प्राप्त है तो अखबारों के संवाददाताओं को भी मिलता है और इस परिस्थिति में सभा की कार्रवाई को प्रकाशित करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। प्रकाशित समाचार यदि सही हों और पक्षपात-रहित हों तो उसका प्रकाशन अपराध नहीं होता। सभा में दिये गए भाषण का उत्तरदायित्व वक्ता पर है। खुली सभा की कार्रवाई सही रूप में प्रकाशित करने से अखबार वालों पर उत्तरदायित्व नहीं आता। परन्तु एकाध भाषण हो और वह भी तोड़-मरोड़कर प्रकाशित करना, गलत छापना या अन्य किसी रीति से समाचार का विपर्यास करना इस बात का द्योतक है कि यह प्रकाशन दुर्भावना से किया गया, और यह अपराध है।

समाचार :—सभा में होने वाली कार्रवाई को लिखने, होने वाले निर्णय आदि लिख लेने के लिए अधिकृत व्यवस्था सब कहीं रहती है। विधान-सभा में जो भी कुछ होता है उसे पूरी तरह से लेते हैं। वक्ता के भाषण की प्रतिलिपि उसे भेज दी जाती है। व्याकरण की अशुद्धियां को सुधारने के अतिरिक्त अन्य कुछ भी परिवर्तन नहीं किया जा सकता। भाषण की उस प्रतिलिपि में कुछ भी घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता। निर्धारित समय में यदि वक्ता ने प्रति को सुधारकर वापस न भेजा तो रिपोर्टर की प्रति अधिकृत रूप में छाप दी जाती

है। विधान-सभा के अतिरिक्त संस्थाओं की सभाओं में, सामान्य रूप से चर्चा का सारांश और निर्णय पूरी तरह लिख लेने की व्यवस्था होती है। किन्हीं संस्थाओं में भाषणों की प्रतिलिपियाँ स्वीकृति से पूर्व सभासदों में बाँटी जाती हैं। स्वीकृति के समय कौन से सुधार किये जा सकते हैं, इनका विवेचन पहले ही किया जा चुका है। अनेक संस्थाएँ सभा में होने वाली कार्रवाई की अधिकृत सूचनाएँ प्रकाशन के लिए समाचार-पत्रों के पास भेजती हैं या स्वयं प्रकाशित करती हैं। प्रकाशन के लिए भेजने से पहले अध्यक्ष को दिखाना जरूरी है।

यहाँ तक संस्था की उन सभाओं पर विचार किया गया है जिनके सदस्यों की संख्या बहुत है। उपर्युक्त विवेचन, परिषद्, विषय-नियामक-समिति, खुले अधिवेशन आदि पर भी लागू होता है। जैसा पहले कहा जा चुका है प्रत्येक संस्था में कार्य करने वाली एक छोटी सी कार्य-समिति रहती है। सब सभासद् तो प्रतिदिन कार्य नहीं कर सकते। विधान-सभाएँ कानून बनाती हैं; पर उसे क्रियान्वित करने का भार मंत्रि-मंडल या शासन पर होता है। नगर-पालिका तथा लोकल बोर्डों में स्थायी-समिति या व्यवस्थापक-मंडल होता है। व्यापारी-कंपनियों में संचालक-मंडल होते हैं। तात्पर्य यह कि समस्त सभासदों द्वारा निर्मित संस्था, जिसे साधारण सभा (General Body) कहा जा सकता है, की सभाएँ सर्वाधिकार-सम्पन्न होती हैं। उनके निर्णयों को क्रियान्वित करने वाली एक छोटी-सी समिति होती है। उसकी जिम्मेदारी क्रियान्वयात्मक होती है। इन मंडलों अथवा समितियों का काम भी विचार-विनिमय के द्वारा संचालित होता है। उसी प्रकार भिन्न-भिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए संस्थाओं को थोड़े सभासदों की समितियाँ नियुक्त करनी पड़ती हैं। उनका स्थूल रूप से पीछे वर्णन किया जा चुका है। समिति का अर्थ है, सीमित संख्या के लोगों का एकत्र होकर विचार करना और निश्चित विषय के बारे में किन्हीं निर्णयों पर पहुँचना। निःसन्देह निर्णय पर पहुँचने का माध्यम विचार-विनिमय और चर्चा ही है। जहाँ इस माध्यम से काम किया जाता है, वहाँ किन्हीं नियमों का बंधन आवश्यक है। सर्वसाधारण के रूप में इन नियमों और प्रथाओं का विचार आगे किया जा रहा है।

समिति—समिति कोई स्वयं सिद्ध घटना नहीं है। किसी-न-किसी को उसे नियुक्त करना तथा निर्वाचित करना होता है। जब समिति की नियुक्ति या निर्वाचन किया जाता है, तब उसके सभासदों की संख्या निश्चित की जाती है तथा यह भी निश्चित किया जाता है कि कौन सभासद् रहें। किन्हीं संस्थाओं के नियमों के अनुसार समिति का अध्यक्ष कौन हो, यह भी निश्चित रहता है।

विधान-सभाओं में जिस विषय से सम्बन्धित समिति हो उस विभाग का प्रमुख मंत्री अथवा कार्य-समिति का सभासद् अध्यक्ष होता है। कई बार समिति का अध्यक्ष भी समिति की नियुक्ति अथवा निर्वाचन होते समय निश्चित कर लिया जाता है। जहाँ ऐसी परिस्थिति न हो वहाँ समिति के सभासदों का पहला काम अध्यक्ष को चुनना है। संस्था का निर्वाचित अथवा नियुक्त अध्यक्ष उपस्थित न हो तो मौजूद सभासदों में से अध्यक्ष चुन लिया जाता है। समिति के अधिकार, प्रस्ताव द्वारा अथवा संस्था के संविधानान्तर्गत नियमों के द्वारा निश्चित किये जाते हैं। जितने अधिकार उसे दिये गए हों उनका ही उपयोग वह कर सकेगी। समिति का रूप चाहे कार्यकारिणी का हो, परामर्शदात्री का हो अथवा अन्य किसी भी प्रकार का हो, उनके निर्णय उसके अनुसार रहेंगे और उसी दृष्टि से उसकी कार्य-पद्धति भी रहेगी। समिति-नियुक्ति का प्रस्ताव, समिति को विषयों की सीमा बताने वाला तथा तत्सम्बन्धी आदेश (Instructions) देने वाला होता है। जो समितियाँ नियमानुसार अस्तित्व में आती हैं, (Statutory Committee) उनका कार्य नियमानुसार निश्चित रहता है। उन्हें क्या करना है इसका उल्लेख संविधान के नियमों में ही रहता है। जो समितियाँ प्रस्ताव के द्वारा अस्तित्व में आती हैं उनका संयोजक समिति के सदस्यों को उनके कार्य, अवधि तथा निर्णय के स्वरूप के बारे में आदेश देता रहता है। निश्चित किये गए समय में यदि समिति काम न करे तो वह पद-च्युत हो जाती है। सामान्यतः समय अधिक दिया जाता है। अधिकार के बाहर काम किया हो और संयोजक व्यक्ति अथवा संस्था को मंजूर न हो तो वह रद हो जाता है। समिति द्वारा किया हुआ काम पसन्द न हो तो उस समिति को फिर वही अथवा उसमें कुछ और वृद्धि करके काम करने को कहा जाता है। समिति की रिपोर्ट चर्चा के लिए साधारण सभा के सामने लाई जायगी। वहाँ वह या तो मंजूर हो जायगी या नामंजूर हो जायगी। उसमें कुछ अधूरापन हो या उसमें त्रुटि रह गई हो तो उसे पुनर्विचारार्थ समिति के समीप भेज देने का निर्णय हो जायगा। जो कुछ चर्चा हो चुकी है, उसे ध्यान में रखकर तथा अधिक आदेश देकर अनेक बार उसी समिति को पुनः काम करने के लिए कहा जाता है। नियुक्त अथवा नियमानुसार अस्तित्व में आने वाली समिति को नियोजित कार्य की दृष्टि से आवश्यक अधिकार दिये जाते हैं या पहले ही से उसे मिले रहते हैं। संस्था के कागजात देखना, अन्य कागजात हासिल करना, आवश्यक साक्षी प्रमाण में लेना, आवश्यक स्थानों पर जाकर निरीक्षण करना इत्यादि जहाँ उचित और आवश्यक प्रतीत हों वहाँ उसके करने का अधिकार समिति को रहता है।

समिति का काम अनौपचारिक वातावरण में चलता है। सभासदों से भिन्न अन्य किसी भी व्यक्ति को सामान्यतः उपस्थित रहने का अधिकार नहीं रहता। कोई व्यक्ति संस्था का सभासद् तो है पर समिति का नहीं है, तो उसे समिति की बैठक में उपस्थित रहने का अधिकार नहीं है। कामन्स-सभा की किन्हीं समितियों की बैठक में समिति के सदस्यों से भिन्न सभासद् भी उपस्थित रह सकते हैं, पर यह अधिकार एक निश्चित सीमा तक ही है। जब समिति किसी निर्णय पर पहुँचने लगती है उस समय यह अधिकार नहीं रहता। समिति जिस समय साक्षियाँ ले रही हो, उस समय किन्हीं विशेष अवसरों को छोड़, अन्य सभासदों को उपस्थित रहने का अधिकार है। समिति की कार्रवाई प्रकट रूप से होने के सम्बन्ध में आदेश अथवा नियम न हो, तो वैसा न होना ही लाभदायक है। जहाँ साक्षियों का कोई प्रश्न नहीं, वहाँ खुली बैठक करने की आवश्यकता ही नहीं है। सभा में चर्चा अनौपचारिक तथा खुले दिल से की जाती है वह है भी ठीक। अतः उस चर्चा की रिपोर्ट नहीं रखी जाती केवल निर्णय लिख लिए जाते हैं। समिति की बैठक में जो विषय विचारार्थ आए हुए हैं, वे किसके हैं यह समिति की अधिकृत रिपोर्ट में न हो तो साधारण सभा के सदस्यों की बैठक में भी वह नहीं बताना चाहिए। इस प्रकार का उल्लेख अनुचित तथा नीति के विरुद्ध माना जाता है।

समिति-संचालन—समिति की बैठक के लिए विज्ञप्ति निकालना आवश्यक है। उसके साथ ही कार्य-क्रम भी देना चाहिए। स्थान और समय सभासदों की सुविधा के अनुसार ही निश्चित किया जाय। जहाँ इस बारे में नियम हों वहाँ उनके अनुसार करना ठीक है। औपचारिक वातावरण न होने के कारण समिति की बैठकों के संचालन में थोड़ा अन्तर पड़ जाता है। सभासद् लोग बैठकर बोलते हैं। चाय पीना और धूम्र-पान करना भी अनुचित नहीं माना जाता। प्रस्तावों और संशोधनों के लिए अनुमोदन की आवश्यकता नहीं। एक बार ही बोला जाय, यह नियम भी वहाँ लागू नहीं होता। वहाँ प्रत्येक सभासद् के मत को ठीक से समझने तथा समझाने का पूरा अवसर रहता है। विषयों का क्रम भी सभासदों की सुविधा के अनुसार रखा जाता है। उचित कारण हो तो चर्चा दरगिन करने का प्रस्ताव पेश किया जा सकता है। पर करने वाला प्रस्ताव अप्रास्य हो जाता है। मत का सवाल ही नहीं पैदा होता। अध्यक्ष को संचालन सम्बन्धी सभी आवश्यक अधिकार रहते हैं। असभ्य आचरण अथवा उपद्रव करने वाले को वह बाहर निकलवा सकता है। चर्चा को बंद करने का प्रस्ताव लाया जा सकता है और पर्याप्त चर्चा हो चुकी हो तो अध्यक्ष उसे स्वीकृत कर

लेता है। साधारणतया आसन पर आते ही अध्यक्ष काम के स्वरूप और उसके क्रम पर प्रकाश डालता है तथा उसके लिए सभा की अनुमति प्राप्त करता है। 'सभा के सामने के प्रश्न' को यथा-रीति चर्चा के लिए प्रस्तुत करने के पश्चात् यदि किसी को उसके सम्बन्ध में कुछ जानकारी हासिल करनी हो, कुछ शंकाएँ हों, कुछ प्रश्न पूछने हों तो वह पूछ सकता है। उचित जानकारी देने का अध्यक्ष प्रबन्ध करता है। उसके बाद अपने मनोगत विचारों को प्रकट करने के लिए अध्यक्ष प्रत्येक सभासद् को बुलाता है। इस प्रकार सबको मौका दिये जाने के बाद और कुछ किसी को बोलना हो तो उसे अध्यक्ष फिर मौका देता है। समन्वय करने के प्रयत्नों को प्रोत्साहन देता है या फिर प्रत्येक सभासद् का मत लेकर निर्णय देता है।

जहाँ समिति कार्यकारिणी के रूप में (Exlcutive) है वहाँ निर्णय सभी का समझा जाता है और उसके विरुद्ध मत देने वाले सभासद् पर भी उसकी जिम्मेदारी आती है। महासमिति की सभा में वह उसके विरुद्ध नहीं बोल सकता। क्रियान्वित करने का कार्य एकमुखी होना चाहिए। कार्यकारिणी के सभासद् यदि चार मुखों से चार बातें करने लगेंगे तो काम होगा ही नहीं। प्रथा यह है कि या तो वे बहुमत के निर्णय को मान लें या फिर त्याग-पत्र देकर समिति से अलग हो जायँ। जहाँ समिति का स्वरूप भिन्न प्रकार का है वहाँ प्रत्येक सभासद् अपनी सम्मति पृथक् एक कागज में नत्थी कर सकता है। न्याय-सम्बन्धी (Judicial) समिति हो तो बहुमत का निर्णय विधि-युक्त अवश्य होता है पर जिस सभासद् को वह निर्णय मान्य न हो, वह निर्णय-पत्र पर अपना भिन्न मत लिख सकता है और उसके कारण भी प्रस्तुत कर सकता है। निर्वाचक-समितियों तथा जाँच समितियों के सभासद् अपने-अपने मतों का कारण स्पष्ट करके रिपोर्ट लिख सकते हैं। जाँच खत्म होने पर उसके ऊपर सभासद् लोग चर्चा करते हैं। मुख्य-मुख्य बातों पर मतैक्य हो तो सारी रिपोर्ट लिखने का काम एक या दो सभासदों को अथवा निरीक्षक को सौंप दिया जाता है। जो निर्णय लिये गए हैं उन्हीं के आधार पर रिपोर्ट लिखी जाती है और समिति के सामने पेश की जाती है। वह स्वीकृत हो जाय तो प्रश्न ही हल हो गया। पर कभी-कभी सामान्य स्वीकृति देकर भी अनेक सभासद् अपनी पृथक् राय भी जोड़ देते हैं। जहाँ मतभेद अत्यन्त तीव्र हो वहाँ विभिन्न मतों वाले सभासद् अपनी-अपनी प्राथमिक रिपोर्ट तैयार करते हैं और विषय तथा परिच्छेद के अनुसार चर्चा के बाद निर्णय लिये जाते हैं। उस अवस्था में जो और जैसी रिपोर्ट बहुमत द्वारा स्वीकृत होगी वैसी रिपोर्ट समिति पेश करती है। भिन्न मत-पत्रिकाएँ भी जोड़ी जाती हैं। यह उम्मीद

की जाती है कि समिति में जिस विचार-धारा को स्वीकार किया जाता है, नैतिकता का विचार करते हुए सभासद् महासमिति के अधिवेशन में भी उसी पर दृढ़ रहे। रिपोर्ट सर्व सम्मति से स्वीकृत की गई हो तो प्रचलन-क्रम के अनुसार बड़ी सभा में उसके पक्ष में ही उन सबको राय देनी होती है। आदेश से बाहर समिति काम नहीं कर सकती। जहाँ महासमिति ने किन्हीं तथ्यों पर पहुँचकर, किन्हीं तत्त्वों को मंजूर करके समिति नियुक्त की है, वहाँ समिति उन निर्णयों और तत्त्वों को नामंजूर करके सिफारिशें नहीं कर सकती। जहाँ मौलिक अन्तर पड़ता हो वहाँ रिपोर्ट पर फिर विस्तार से चर्चा की जाती है और पुनः वह प्रश्न नवीन प्रस्ताव की भाँति कमेटी को सुपुर्द किया जाता है। प्रश्न के लिए नियुक्त समिति उस पर रिपोर्ट पेश करने के बाद कृत-कार्य होती है। उसके बाद उसका अस्तित्व नहीं रह जाता। रिपोर्ट के प्रकाशित होने से पहले अथवा महासमिति के सामने प्रस्तुत समिति के सभासदों का उसे प्रकाशित करना और उसके निर्णयों को प्रकाशित करना अनुचित माना जाता है। वैधानिक दृष्टि से बनी हुई समितियाँ नियम के अनुसार अस्तित्व में रहती हैं।

तात्पर्य यह है कि समितियों के अधिकार मुख्य संस्था निश्चित करती है और कार्य के स्वरूप के अनुसार उन अधिकारों की रूपरेखा रखनी पड़ती है। सभा-विषयक और सभा-संचालन के नियम जो प्रायः सर्व सामान्य सभाओं पर लागू होते हैं, वे ही न्यूनाधिक मात्रा में समितियों की सभाओं पर लागू होते हैं। समितियों की सभाओं का काम सामान्यतया अनौपचारिक वातावरण में होता है। अतः संचालन में जो थोड़ा परिवर्तन आ जाता है उसका निर्देश ऊपर किया जा चुका है। अनौपचारिक वातावरण होने पर भी सभा में विचार-विनियम करने के बाद निर्णय किये जाते हैं। सभासदों को कागज़ात दिखलाकर और सभा बुलाए बिना ही निर्णय कर डालना अनुचित है। इसी प्रकार पहले निर्णय करके और पीछे से सम्मति लेना भी आपत्ति जनक है। इस प्रथा से सभासदों पर दबाव और अनुचित बोझ पड़ता है। विज्ञप्ति (Circular) निकालकर निर्णय को स्थिर करना किन्हीं संस्थाओं के नियमों में उचित माना गया है। सभा का निर्णय विचार-विनिमय के पश्चात् ही होना ठीक है। उसके बगैर नहीं। सबकी उपस्थिति में और सबके आमने-सामने होने वाला विचार-विनिमय ही सही माना जाता है। लिखित सम्मति लेकर किया जाने वाला विचार-विनिमय सही नहीं माना जाता। पहले निर्णय कर लेना और फिर चर्चा करना क्रम-विरुद्ध है। यह सब सभा-तंत्र के प्रतिकूल है। अपवाद के अवसर पर उपर्युक्त नियम लागू माना जा सकता है।

उपसमिति :—उपसमितियों की बैठक पर उपरिलिखित नियम लागू होते हैं। जहाँ उपसमिति एक ही सभासद् की है वहाँ सभा-संचालन का प्रश्न ही नहीं पैदा होता। उपसमिति महासमिति के सामने रिपोर्ट पेश करती है और उसके बाद उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। समिति का अस्तित्व समाप्त हो जाय तो उपसमिति का अस्तित्व अपने-आप ही समाप्त हो जाता है।

४

संघ-तन्त्र

सार्वजनिक सभाओं के सम्बन्ध में पहले भाग में विवेचन किया और संगठित संस्थाओं के सम्बन्ध में दूसरे भाग में। अब सभा-नियन्त्रण अथवा सभा-संचालन के सम्बन्ध में अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। तथापि संगठित संस्थाओं के सम्बन्ध में थोड़ा सा विचार करना आवश्यक है। भाषण-स्वातंत्र्य और संघ स्वातंत्र्य एक अधिकार के ही दो रूप हैं। व्यक्ति की जो प्रतीति, अनुभूति एवं सम्मति हो उसे वाणी द्वारा व्यक्त करने का अधिकार उसे मिलना ही चाहिए। इस अधिकार के अभाव में व्यक्ति का विकास नहीं हो सकता। व्यक्ति अपना मत, अपने विचार तथा सम्मति किसी बंद कोठरी में आत्मगत-भाषण करके व्यक्त नहीं करता, वह और लोगों के सामने व्यक्त करना चाहता है। अन्य व्यक्ति के अनुभवों से तुलना करना चाहता है और उसका दृष्टिकोण जानना चाहता है। वह चार-पांच लोगों को एकत्र करके विचार-विनिमय करता है। भाषण-स्वातंत्र्य हो लेकिन आदमियों को जमा होने का अधिकार न हो तो वह निरर्थक है। भाषण-स्वातंत्र्य जन समूह के सामने ही उपयोग में आता है। दो-चार व्यक्तियों के सामने ही क्यों न हो; पर उन्हें भी एक स्थान पर सार्वजनिक रूप से एकत्र होने का अधिकार भाषण-स्वातंत्र्य के लिए प्राप्त होना आवश्यक है। इसी प्रकार एकत्र होने के अधिकार—अर्थात् जो काम एक व्यक्ति कर सकता है उसे कई व्यक्ति अनेकों की सहायता से कर सकें—इसका उपयोग करने के लिए भी भाषण-स्वातंत्र्य की आवश्यकता रहती है। सब लोग साथ आयें, पर बोलने का अधिकार न हो तो यह भी अर्थ-हीन है। लोग एक साथ आने पर विचार-विनिमय द्वारा निर्णय पर पहुँचा करते हैं। साथ आने और संगठित रूप से काम करने के लिए नियम-बद्धता की ज़रूरत है। अपने जीवन को व्यापक एवं विकसित करने की भावना से मनुष्य संगठन की ओर आकृष्ट होता है। संघ में आने से जिन बन्धनों का सामना करना पड़ता है वे दूषण न होकर भूषण ही सिद्ध होते हैं। समाज में आकर मनुष्य का थोड़ा-सा स्वातंत्र्य नष्ट अवश्य होता है, पर सुरक्षित हो जाता है। संघ में आने और उसके नियमानुसार कार्य करने में मनुष्य को अनुशासन

में रहना पड़ता है। पर उसके प्रतिदान-स्वरूप उसकी उन्नति की दृष्टि से लाभ ही होता है। संघ में उसकी शक्ति अनेक गुनी बढ़ जाती है, अवसर बढ़ जाते हैं, कार्य-क्षेत्र व्यापक हो जाता है और गुणों के विकास के लिए भी स्वस्थ वातावरण प्राप्त हो जाता है। कलियुग में संघ शक्ति श्रेष्ठ है; पर संघ में कलि का घुसना भी उतना ही अनिष्टकारक है और अनुभव भी यही है। अतः संघ द्वारा काम करते समय जिन बातों का ध्यान रखना जरूरी है उन बातों पर ध्यान देने का प्रयत्न करना चाहिए। मनुष्य सामाजिक प्राणी है और उसमें सामूहिक-जीवन की भावना रहती है। अतः संघ-विषयक विचार महत्त्वपूर्ण है, और वहाँ भी निर्णय का माध्यम चूँकि विचार-विनिमय ही है, अतः सभा-शास्त्र में उस पर विचार करना उचित है।

समाज में नाना प्रकार के संघ विभिन्न प्रयोजनों की सिद्ध के लिए काम किया करते हैं। मोटे तौर से उनका वर्गीकरण यों किया जा सकता है:—(१) वैधानिक तथा (२) स्वतः सिद्ध। संगठित रीति से एक से अधिक व्यक्तियों का एक साथ आकर कार्य करना 'संघ-बद्ध' होकर काम करना है। समाज का नियंत्रण राज्य-सत्ता के द्वारा हुआ करता है। नियमांचरण और नियन्त्रण-तन्त्र की रचना में जहाँ लोकतांत्रिक दृष्टि रखी जाती है, वहाँ राजकीय कारोबार में लोगों की बात सुनी जाती है, लोगों के सहयोग से वह चलता है और लोग ही अपने प्रतिनिधियों द्वारा उसे चलाया करते हैं। राजकीय करोबार का अथवा राज्य-सत्ता का कार्य-क्षेत्र कितना हो यह संविधान द्वारा राज्य-सत्ता निश्चित किया करती है। कार्य-क्षेत्र जितना व्यापक होगा, तद्विषयक संस्थाएँ भी उतनी ही अधिक होती हैं और विशेषाधिकार का प्रयोग भी अधिक किया करती हैं। राज्य-सत्ता के कार्य-क्षेत्र में अथवा राजकीय करोबार में जिन संस्थाओं को काम दिया जाता है, वे सब संविधान अथवा कानून द्वारा अस्तित्व में आई होती हैं। संविधान के अनुसार विधान-सभा बनती है। संविधान के अनुसार निर्मित विधान-सभा स्थानीय स्वायत्त-संस्थाओं-सम्बन्धी कानून बनाती है। राजकीय कारोबार करने वाले व्यक्ति का जिस प्रकार सरकारी अधिकारी होना और राज्य-सत्ता द्वारा उसे अधिकार दिया जाना आवश्यक है, उसी प्रकार उस काम को करने वाली यदि कोई संस्था हो तो उसका निर्माण भी सरकार को ही करना चाहिए। अर्थात् कानून बनाकर उसे अस्तित्व में लाना चाहिए, इस प्रकार की संस्थाएँ वैधानिक कहलाती हैं। कानून द्वारा वे निर्मित हुई परन्तु ऐसा नहीं होता कि कुछ आदमी जमा हो गए, उन्होंने नगरपालिका की स्थापना की और शहर का कारोबार शुरू कर दिया। नियन्त्रण की जो धाराएँ केवल सभासदों पर

ही नहीं अन्य व्यक्तियों पर भी लागू हैं और जिन्हें अस्वीकार करने से सजा भुगतनी पड़ती है, वे धाराएँ राज्य-सत्ता द्वारा ही कार्यान्वित हो सकती हैं। यह नियम करने वाले व्यक्ति अथवा संस्थाएँ देश के राज्य-तन्त्र का, शासन का भाग होती हैं। वैधानिक संस्थाओं (Statutory Bodies) के नियंत्रण के पीछे देश की राज्य-सत्ता होती है। कारण, ये संस्थाएँ राज्य-सत्ता का ही एक अंग होती हैं। इन सत्ता-केन्द्रों का निर्माण राजकीय कारोबार में सुभीता पैदा करने के खयाल से ही किया जाता है। व्यक्ति एक स्थान पर एकत्रित होकर प्रस्ताव करें और वे संस्थाएँ अस्तित्व में आयें, ऐसा नहीं होता। इनके निर्माण में व्यक्तियों की इच्छा का सम्बन्ध नहीं है। उनका निर्माण देश के संविधान के अनुसार, कानून के अनुसार होता है और वे उसी के अनुसार कार्य करती हैं, अतः उन्हें वैधानिक कहा जाता है। वे निर्वाचित प्रतिनिधियों अथवा राज्य-सत्ता द्वारा नियुक्त सभासदों से बनी होती हैं। उनकी अथवा उनके सभासदों की संख्या इच्छानुसार बढ़ नहीं सकती। सभासद् अपनी मर्जी के अनुसार जो चाहें काम नहीं कर सकते। सभा की सदस्यता, कार्य-क्षेत्र, अधिकार, उत्तरदायित्व, कार्य-पद्धति आदि कानून के द्वारा निश्चित होती हैं। सभासद् उनमें किसी प्रकार का मौलिक अन्तर नहीं डाल सकते। इच्छा होने से सदस्यता नहीं प्राप्त होती और इच्छा न होने पर भी पद द्वारा सभासदत्व अनेक स्थानों पर प्राप्त हो जाता है।

इसके विरुद्ध उन संस्थाओं की अवस्था होती है, जो स्वतः सिद्ध होती हैं। लोग एक साथ जमा होकर विचार करते हैं और इन संस्थाओं को जन्म देते हैं। 'किरायेदार-संघ' कानून द्वारा निर्मित नहीं है। कुछ किरायेदार इकट्ठे हुए और उन्होंने अपने फायदे के लिए एक संघ स्थापित कर लिया। 'आर्य क्रीड़ा-मंडल' स्वतन्त्र रूप से कुछ व्यक्तियों ने ही निर्माण किया है। 'तमाखू मजदूर-संघ' का संविधान कैसा हो, नियम कौन से हों, किन संकेतों (प्रथाओं) को माना जाय, यह सब उन संघों के सभासदों को निश्चित करना होता है। कानून द्वारा संघ-स्वातंत्र्य होने पर भी यदि किन्हीं अधिक अधिकारों, संरक्षणों या प्रतिष्ठा की आवश्यकता हो तो तद्विषयक कानून का थोड़ा-बहुत बंधन स्वीकार करना पड़ता है अर्थात् उन्हीं कानूनों के अनुसार उन संघों को दर्ज करवाना पड़ता है। दर्ज करवाना ही चाहिए ऐसा कोई बन्धन नहीं है पर दर्ज कराने से अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। स्वतः सिद्ध संघ दर्ज कराए बिना भी कार्य-क्षम, प्रभावशाली और सर्वमान्य होते हैं। दर्ज की हुई संस्थाएँ भी प्राणहीन हो सकती हैं। तथापि सरकारी कानून के मुताबिक दर्ज कराने से उन कानूनों में दी

हुई सुविधा अथवा प्रतिष्ठा मिलती है। संघ की दृष्टि से निम्न कानून महत्त्व के हैं:—(१) १८६० का संस्थाओं के दर्ज कराने का कानून। (२) १६१२ का सहकारी संस्थाओं-सम्बन्धी कानून। (३) १६१३ का भारतीय कम्पनियों का कानून। (४) १६२६ का भारतीय व्यवसाय-संघों-सम्बन्धी कानून। (५) १६३७ का बीमा व्यवहार-सम्बन्धी कानून। इन कानूनों के अनुसार कुछ संस्थाओं को दर्ज किया जा सकता है और किन्हीं व्यवहार करने वाली संस्थाओं को तो दर्ज कराना ही पड़ता है। उसके बिना उन्हें उस व्यवहार को करने की अनुमति नहीं रहती। संस्था ने स्वेच्छा से अपने को दर्ज कराया हो या अनिवार्य रूप से दर्ज कराया हो, दर्ज कराने के बाद उसके ऊपर कुछ बंधन और कुछ सीमाएँ आ जाती हैं। उन सीमाओं के भीतर रहकर संस्थाओं अथवा संघों को अपने संविधान अथवा नियमों में परिवर्तन करने पूरा अधिकार रहता है।

१८६० के संस्थाओं के दर्ज करने के कानून के अनुसार दान, धर्म करने वाली, अनाथों की मदद करने वाली, शास्त्र, कला, साहित्य आदि की उन्नति के लिए यत्न करने वाली, ज्ञान का प्रचार करने वाली संस्थाओं को तथा ग्रंथालय, वाचनालय, सार्वजनिक पदार्थ-संग्रहालय, सार्वजनिक चित्र-संग्रहालय कला-भवन एवं यांत्रिक अनुसन्धान के लिए स्थापित संस्थाओं को दर्ज किया जाता है। रजिस्ट्रार अथवा दर्ज करने वाले के पास स्मृति-पत्र (Memorandum) भेजना पड़ता है। उसमें (१) संस्था का नाम (२) स्थापना का उद्देश्य तथा संस्था के नियमानुसार जो कार्यवाहक अथवा व्यवस्थापक-मंडल हो उसके सभासदों के नाम, पेशे और पते देने पड़ते हैं। उसी प्रकार संस्था के नियमों की प्रति देनी पड़ती है। स्मृति-पत्र पर व्यवस्थापक-मंडल के कम-से-कम तीन सभासदों के नाम देने पड़ते हैं। दर्ज कराने की फीस देने के बाद दर्ज करने वाला इस बात का सर्टिफिकेट या प्रमाण-पत्र देता है कि उस संस्था का नाम दर्ज कर लिया गया है। संस्था के उद्देश्यों को इस कानून की सीमा में रहकर सभासद् लोग कम या अधिक कर सकते हैं। कानून की सीमा से बाहर जाकर संस्था के स्वरूप में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। वैसा करने पर प्रमाण-पत्र रद हो जायगा। कानून में रहकर उद्देश्य बदला जा सकता है अथवा समान उद्देश्य वाली अन्य संस्थाओं को शामिल किया जा सकता है। यह करने के लिए जो योजना निश्चित की हुई हो वह सब सभासदों में वितरित करके और नियमानुसार विशेष सभा आमंत्रित करके उसे स्वीकार करना होता है। उसके केवल पास होने से काम नहीं चलता। इसके लिए उपस्थित सभासदों में से तीन चौथाई सभासदों का मत मिलना आवश्यक है। अधिकार-पत्र द्वारा मत

ही नहीं अन्य व्यक्तियों पर भी लागू हैं और जिन्हें अस्वीकार करने से सजा भुगतनी पड़ती है, वे धाराएँ राज्य-सत्ता द्वारा ही कार्यान्वित हो सकती हैं। यह नियम करने वाले व्यक्ति अथवा संस्थाएँ देश के राज्य-तन्त्र का, शासन का भाग होती हैं। वैधानिक संस्थाओं (Statutory Bodies) के नियंत्रण के पीछे देश की राज्य-सत्ता होती है। कारण, ये संस्थाएँ राज्य-सत्ता का ही एक अंग होती हैं। इन सत्ता-केन्द्रों का निर्माण राजकीय कारोबार में सुभीता पैदा करने के खयाल से ही किया जाता है। व्यक्ति एक स्थान पर एकत्रित होकर प्रस्ताव करें और वे संस्थाएँ अस्तित्व में आयँ, ऐसा नहीं होता। इनके निर्माण में व्यक्तियों की इच्छा का सम्बन्ध नहीं है। उनका निर्माण देश के संविधान के अनुसार, कानून के अनुसार होता है और वे उसी के अनुसार कार्य करती हैं, अतः उन्हें वैधानिक कहा जाता है। ये निर्वाचित प्रतिनिधियों अथवा राज्य-सत्ता द्वारा नियुक्त सभासदों से बनी होती हैं। उनकी अथवा उनके सभासदों की संख्या इच्छानुसार बढ़ नहीं सकती। सभासद् अपनी मर्जी के अनुसार जो चाहें काम नहीं कर सकते। सभा की सदस्यता, कार्य-क्षेत्र, अधिकार, उत्तरदायित्व, कार्य-पद्धति आदि कानून के द्वारा निश्चित होती हैं। सभासद् उनमें किसी प्रकार का मौलिक अन्तर नहीं डाल सकते। इच्छा होने से सदस्यता नहीं प्राप्त होती और इच्छा न होने पर भी पद द्वारा सभासदत्व अनेक स्थानों पर प्राप्त हो जाता है।

इसके विरुद्ध उन संस्थाओं की अवस्था होती है, जो स्वतः सिद्ध होती हैं। लोग एक साथ जमा होकर विचार करते हैं और इन संस्थाओं को जन्म देते हैं। 'किरायेदार-संघ' कानून द्वारा निर्मित नहीं है। कुछ किरायेदार इकट्ठे हुए और उन्होंने अपने फायदे के लिए एक संघ स्थापित कर लिया। 'आर्य क्रीड़ा-मंडल' स्वतन्त्र रूप से कुछ व्यक्तियों ने ही निर्माण किया है। 'तमाखू मजदूर-संघ' का संविधान कैसा हो, नियम कौन से हों, किन संकेतों (प्रथाओं) को माना जाय, यह सब उन संघों के सभासदों को निश्चित करना होता है। कानून द्वारा संघ-स्वातंत्र्य होने पर भी यदि किन्हीं अधिक अधिकारों, संरक्षणों या प्रतिष्ठा की आवश्यकता हो तो तद्विषयक कानून का थोड़ा-बहुत बंधन स्वीकार करना पड़ता है अर्थात् उन्हीं कानूनों के अनुसार उन संघों को दर्ज करवाना पड़ता है। दर्ज करवाना ही चाहिए, ऐसा कोई बन्धन नहीं है पर दर्ज कराने से अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। अतः सब संघ दर्ज कराए बिना भी कार्य-क्षम, प्रभावशाली और सर्वमान्य होते हैं। दर्ज की हुई संस्थाएँ भी प्राणहीन हो सकती हैं। यद्यपि सरकारी कानून के मुताबिक दर्ज कराने से उन कानूनों में दी

हुई सुविधा अथवा प्रतिष्ठा मिलती है। संघ की दृष्टि से निम्न कानून महत्त्व के हैं:—(१) १८६० का संस्थाओं के दर्ज कराने का कानून। (२) १६१२ का सहकारी संस्थाओं-सम्बन्धी कानून। (३) १६१३ का भारतीय कम्पनियों का कानून। (४) १६२६ का भारतीय व्यवसाय-संघों-सम्बन्धी कानून। (५) १६३७ का बीमा व्यवहार-सम्बन्धी कानून। इन कानूनों के अनुसार कुछ संस्थाओं को दर्ज किया जा सकता है और किन्हीं व्यवहार करने वाली संस्थाओं को तो दर्ज कराना ही पड़ता है। उसके बिना उन्हें उस व्यवहार को करने की अनुमति नहीं रहती। संस्था ने स्वेच्छा से अपने को दर्ज कराया हो या अनिवार्य रूप से दर्ज कराया हो, दर्ज कराने के बाद उसके ऊपर कुछ बंधन और कुछ सीमाएँ आ जाती हैं। उन सीमाओं के भीतर रहकर संस्थाओं अथवा संघों को अपने संविधान अथवा नियमों में परिवर्तन करने पूरा अधिकार रहता है।

१८६० के संस्थाओं के दर्ज करने के कानून के अनुसार दान, धर्म करने वाली, अनाथों की मदद करने वाली, शास्त्र, कला, साहित्य आदि की उन्नति के लिए यत्न करने वाली, ज्ञान का प्रचार करने वाली संस्थाओं को तथा ग्रंथालय, वाचनालय, सार्वजनिक पदार्थ-संग्रहालय, सार्वजनिक चित्र-संग्रहालय कला-भवन एवं यांत्रिक अनुसन्धान के लिए स्थापित संस्थाओं को दर्ज किया जाता है। रजिस्ट्रार अथवा दर्ज करने वाले के पास स्मृति-पत्र (Memorandum) भेजना पड़ता है। उसमें (१) संस्था का नाम (२) स्थापना का उद्देश्य तथा संस्था के नियमानुसार जो कार्यवाहक अथवा व्यवस्थापक-मंडल हो उसके सभासदों के नाम, पेशे और पते देने पड़ते हैं। उसी प्रकार संस्था के नियमों की प्रति देनी पड़ती है। स्मृति-पत्र पर व्यवस्थापक-मंडल के कम-से-कम तीन सभासदों के नाम देने पड़ते हैं। दर्ज कराने की फीस देने के बाद दर्ज करने वाला इस बात का सर्टिफिकेट या प्रमाण-पत्र देता है कि उस संस्था का नाम दर्ज कर लिया गया है। संस्था के उद्देश्यों को इस कानून की सीमा में रहकर सभासद् लोग कम या अधिक कर सकते हैं। कानून की सीमा से बाहर जाकर संस्था के स्वरूप में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। वैसा करने पर प्रमाण-पत्र रद हो जायगा। कानून में रहकर उद्देश्य बदला जा सकता है अथवा समान उद्देश्य वाली अन्य संस्थाओं को शामिल किया जा सकता है। यह करने के लिए जो योजना निश्चित की हुई हो वह सब सभासदों में वितरित करके और नियमानुसार विशेष सभा आमंत्रित करके उसे स्वीकार करना होता है। उसके केवल पास होने से काम नहीं चलता। इसके लिए उपस्थित सभासदों में से तीन चौथाई सभासदों का मत मिलना आवश्यक है। अधिकार-पत्र द्वारा मत

आए हों तो उनकी संख्या तीन चौथाई सभासदों की संख्या के समान होनी चाहिए। फिर इस निर्णय को उतने ही मताधिक्य से दूसरी विशेष सभा में पास होना पड़ता है। इस रीति से उसके स्वीकृत हो जाने पर दर्ज करने वाला उसे मान्यता देता है। दर्ज की हुई संस्था, संस्था के नाम से कोर्ट में दावा कर सकती है। संस्थाओं के विरुद्ध भी दावे किये जा सकते हैं और संस्था की सम्पत्ति को जब्त किया जा सकता है। जहाँ संस्था के अधिकारियों की वैयक्तिक सम्पत्ति पर जब्ती की आज्ञा लागू हो सकती है। इसके अतिरिक्त सब सभासदों को उत्तरदायी बनना पड़ता है और वे व्यक्तिगत रूप से जिम्मेवार समझे जाते हैं। संस्था दर्ज की हुई हो तो नियमानुसार जो अधिकारी होगा वही संस्था की ओर से मुकदमे में शामिल होगा और उसी के विरुद्ध मुकदमा चलाया जा सकेगा। संस्था की सम्पत्ति ही जिम्मेदार ठहरती है। संस्था को खत्म करना हो तो तीन चौथाई सभासदों की सम्मति होनी आवश्यक है। संस्था का विघटन (Dissolution) होते ही संस्था की सम्पत्ति का नियमानुसार उचित प्रबन्ध हो जाना चाहिए। नियमों के अभाव में व्यवस्थापक-समिति उसका योग्य प्रबन्ध करेगी। बखेड़ा खड़ा होने पर दीवानी अदालत में मामला फैसले के लिए भेजना पड़ता है। सरकारी मदद मिलती हो तो विघटन के लिए सरकार की सम्मति आवश्यक है। ऋण चुकाने के बाद जो सम्पत्ति बच जाती है उसे सभासदों में नहीं बाँटा जा सकता; उसे उसी प्रकार के उद्देश्य वाली संस्था को सौंपना पड़ता है। किस संस्था को सौंपना है यह तीन चौथाई सभासद् निश्चित करते हैं या अदालत निश्चित करती है। इस कानून के आधीन जिन संस्थाओं को दर्ज कराया जा सकता है उन सबको दर्ज करना ही चाहिए, ऐसी बात नहीं। दर्ज कराने पर उन्हें कौन-कौन सी सीमाओं में आना पड़ता है इनका स्पष्टीकरण ऊपर किया है। इसके साथ ही सभासदों पर व्यक्तिशः उत्तरदायित्व नहीं रहता। यह संरक्षण मिलता है तथा इस बात की गारंटी भी मिल जाती है कि संस्था के समाप्त होने पर ऐसी परिस्थिति नहीं उत्पन्न होगी कि उसकी सम्पत्ति का अपहरण जो चाहे करे।

नफे के लिए व्यवहार, व्यापार एवं उद्योग करने वाली कम्पनियाँ १९१३ के कम्पनी-कानून के अनुसार दर्ज कराई जाती हैं। स्मृति-पत्र में कम्पनी की स्थापना का उद्देश्य, उसकी सफलता के लिए कम्पनी को मिले हुए अधिकार, कम्पनी का नाम, पूँजी, भागों की संख्या, सीमित अथवा असीमित उत्तरदायित्व का उल्लेख मुख्य कार्यालय का पता इत्यादि बातें अंकित करके संचालकों को अपने हस्ताक्षर सहित यह स्मृति-पत्र रजिस्ट्रार के पास भेजना होता है। यह स्मृति-पत्र यदि

नियमानुकूल हो तो रजिस्ट्रार उसे दर्ज कर लेता है और प्रमाण-पत्र दे देता है। प्रमाण-पत्र के मिलने पर कम्पनी अपना कारोबार शुरू कर सकती है। स्मृति-पत्र एक प्रकार से कम्पनी की सनद है। उस स्मृति-पत्र के अनुसार कम्पनी नियमावली (Articales of Association) तैयार करती है। नियमों में व्यवहार कौन देखे, व्यवस्था कौन करे, संचालक-मंडल के अधिकार, उनकी संख्या, उनका चुनाव, भागीदारों के अधिकार, मत का अधिकार और उसकी पात्रता, उसके प्रकार, सभा-विषयक तथा सभा-संचालन-विषयक आदि बातों का समावेश होता है। प्रत्येक कम्पनी को अपनी इच्छा के अनुसार किंतु कम्पनी-कानून के अविरोधी नियम बनाने का अधिकार है। नियमावली हो तो उसकी एक प्रति रजिस्ट्रार को देनी पड़ती है। जहाँ नियमावली न हो और हो तो अधूरी हो, वहाँ उक्त कानून में दी हुई नियमावली लागू होती है। उस नियमावली को 'टेबुल अ' (Table A.) के नाम से सम्बोधित किया गया है। सभा-संचालन की दृष्टि से कम्पनी की नियमावली महत्त्व रखती है। उसमें सभा-सम्बन्धी नियम होते हैं। नोटिस, कोरम-संख्या, मत की पात्रता और प्रकार, वोट माँगने-सम्बन्धी व्यवस्था इत्यादि बातें होने के कारण कम्पनी की सभाएँ उन नियमों के आधार पर ही की जानी चाहिएँ। नियम न हों, और 'टेबल अ' में भी मार्ग-दर्शन न हो तो सर्व साधारण संचालन के तत्त्व वे ही हों जो हम पिछले प्रकरण में बता आए हैं। बहुधा नियमावली इतनी बारीकी से तैयार की जाती है कि, कोई नियम उसमें न हो ऐसा बहुत ही कम होता है।

स्वतः सिद्ध संस्था में शामिल होकर व्यक्ति स्वेच्छा से नियन्त्रण स्वीकार करता है। उसकी इच्छा है कि वह सभासद् हो या न हो, हो तो जितनी देर वह रहना चाहे उतनी देर रहे। कम्पनी का भाग वह खरीद ले, बेच डाले और उत्तरदायित्व से मुक्त हो; इच्छा न रहने पर कोई भी सभासद् नहीं होता और कोई रख भी नहीं सकता। स्वतः सिद्ध संस्था का नियंत्रण केवल सभासद् पर ही आश्रित है। स्वतः सिद्ध संस्थाओं की यह बात नहीं है। ग्राम-पंचायत, लोकल-बोर्ड, नगरपालिका, विधान-सभा आदि के क्षेत्रों में जो रहेंगे उन सब पर उन-उन संस्थाओं का अधिकार रहता है और शासन भी चलता है। कर बिठा दिया गया हो तो देना पड़ता है, घर बनाना हो तो अनुमति लेनी पड़ती है। कानून बनाया गया हो तो उसे मानना पड़ता है। इन संस्थाओं की आज्ञा अथवा कानून न मानने पर दण्डित होना पड़ता है। स्वतः सिद्ध संस्थाओं की आज्ञा अथवा नियम अमान्य करने पर सभा की सदस्यता रद हो जायगी या अधिक हुआ तो कुछ आर्थिक जिम्मेदारी आ जायगी। सरकारी संस्थाओं की आज्ञा

मानने में कोई बड़प्पन नहीं, पर अपने-आप स्वीकार किये हुए बंधन अथवा नियंत्रण को मानने में ही अधिक शोभा है तथा उसमें एक नैतिक प्रतिष्ठा है। स्वतः सिद्ध संस्था की आज्ञा लोगों को युक्ति-संगत प्रतीत हुई और उन्होंने उसे माना तो उसे भी नैतिक गौरव प्राप्त होता है। केवल वह सरकारी संस्था की आज्ञा होने से नैतिक नहीं सिद्ध होती। वह यदि सदसद्विवेक-बुद्धि को ठीक न जँचती हो तो उसके पालन की जिम्मेदारी भले ही कानूनी हो, नैतिक नहीं हो सकती। राज्य-संस्था अथवा अन्य किसी सरकारी संस्था के नियंत्रण को या संरक्षण को स्वीकार करना नहीं पड़ता। उसके क्षेत्र में पैदा होने तथा रहने ही से वह प्राप्त होती है, लादी जाती है, इन्कार करने से वह नष्ट नहीं होती। राज्य-गत नागरिकता के सम्बन्ध में स्वीकार करने या इन्कार करने का प्रश्न बहुत ही कम पैदा होता है। अन्य संस्थाओं की सदस्यता, यदि उसका काम-काज पसन्द न हो तो, त्यागी जा सकती है। अतः सभा की सदस्यता स्वेच्छया-प्रेरित होने के कारण प्राप्त होने वाला नियंत्रण, नैतिक दृष्टि से प्रतिष्ठापूर्ण रहता है। सदस्यता बनाए रखनी है तो नियमानुसार, नियंत्रणानुसार काम करना चाहिए। अपना कहा आप ही मान रहे हैं यह तात्त्विक एवं वास्तविक परिस्थिति होती है।

स्वतः सिद्ध संस्थाओं में सभासदों को विशेष जिम्मेदारी से काम करना होता है। कारण, उनके निर्णयों और अनुशासन में प्रत्येक सभासद् का काम रहता है। उस संस्था की साख, प्रतिष्ठा और कीर्ति के संपादन-कार्य में उनका हिस्सा रहता है। व्यापारी-कम्पनियाँ प्रायः सीमित उत्तरदायित्व वाली तथा नफे के लिए स्थापित होती हैं अतः भागीदारों में और वहाँ, जहाँ उनकी संख्या हजारों में होती है, संघ-भाव शायद ही कहीं होता है। किसी समय या राजकीय पक्ष के सम्बन्ध में सभासदों में जैसी आत्मीयता होती है वैसी कम्पनी के भागीदारों में कम्पनी के सम्बन्ध में नहीं दिखाई देती। नफे की दृष्टि से भाग लेना और बेचना, इसमें आत्मीयता का तथा भावुकता का प्रश्न ही नहीं पैदा होता। वही स्थिति बीमा व्यवसाय करने वाली कम्पनियों में होती है। बीमा-कम्पनियों के भागीदार भागों पर नफा कितना मिलेगा इस बात की ओर देखते हैं, तो पालिसी वाले इस बात की ओर देखते हैं कि बीमा-कम्पनी का सारा काम-काज किस प्रकार चल रहा है, पर अन्त में दोनों पक्ष आर्थिक दृष्टि से ही कंपनी के व्यवहार की ओर देखते हैं। थोड़ी-बहुत मात्रा में यही परिस्थिति सहकारी संस्थाओं में भी दृष्टिगत होती है। वहाँ भी आर्थिक दृष्टि ही प्रमुख रहती है। अतः जिन स्वतः सिद्ध संस्थाओं में आर्थिक व्यवहार होता है वहाँ सभासदों

को इस दृष्टि से सजग रहना और संस्था की साख एवं पैसे की रक्षा करनी चाहिए। उन्हीं के सहयोग से दोनों बातों की उत्पत्ति होती है, स्थिति होती है और वृद्धि होती है। भागीदारों की सभा में गैर जिम्मेदारी से बर्ताव करने के कारण ऐसे अनेक उदाहरण देखे गए हैं जहाँ बैंक, बीमा-कंपनियाँ तथा सहकारी संस्थाएँ संकट में पड़ गईं। भागीदार और संचालक-मंडल के बीच में विरोध तथा दलबन्दी आदि और मुकदमेबाजी होने के कारण, अनेक स्थानों पर साख और पैसा दोनों मिट्टी में मिल गए। संस्था का संविधान कितनी भी सावधानी से क्यों न बनाया गया हो, सभा-संचालन कितना भी बढ़िया क्यों न हो, जब तक सभासद् अपनी जिम्मेदारी को नहीं पहचानता, तब तक नियमों की सीमा में रहकर भी वह संस्था की हानि करने से न चूकेगा। दर्ज करवाने से जो सरकारी कानून का बन्धन प्राप्त होता है उससे यह ठीक है कि हानि की राह में कुछ रुकावटें आ जाती हैं, पर हानि पूरी तरह टल नहीं जाती, अथवा दर्ज करवाने से काम-काज में सफलता प्राप्त होती है या वह अधिक शक्तिशाली हो जाता है, ऐसी बात भी नहीं।

सहकारी संस्थाओं में सभासदों पर अधिक जिम्मेदारी रहती है। उनकी पूँजी उनकी साख पर आधारित रहती है। वहाँ सभासद् लोग गरजमन्द होते हैं अर्थात् पैसे को काम पर लगाने की भावना से भाग नहीं खरीदते। सहयोग द्वारा पूँजी खड़ी की जाय, सुविधाएँ हासिल की जायँ और गरज़ पूरी की जाय, यह भावना रहती है। व्यवहार करके फिर नफ़ा हासिल किया जाय यह उद्देश्य वहाँ नहीं होता। किन्हीं में तो सभासदों की जिम्मेदारी संयुक्त रहती है। प्रत्येक सभासद् सभासद् के कार्य के लिए जिम्मेदार रहता है। वहाँ सभासदों के बीच सहयोग मुख्य सूत्र का कार्य करता है। सभासदों को सहयोग द्वारा जीवन के संकटों का निवारण करना है और सुविधाओं में वृद्धि करनी है, उत्कर्ष प्राप्त करना है—यह उद्देश्य होने के कारण, और चूँकि वह संघ अथवा संस्था के माध्यम द्वारा साध्य होता है, अतः प्रत्येक सभासद् की जिम्मेदारी वैयक्तिक रहती है। उसका स्वरूप नैतिक अधिक रहता है। १९१२ के सहकारी कानून की रचना और उसके अधीन बनाए गए नियमों के पीछे यही बात काम कर रही है। सरकार, कंपनी-कानून के अधीन जो नियंत्रण करती है उसकी अपेक्षा अधिक नियंत्रण सहकारी संस्थाओं के बारे में रहता है, पर उसके साथ-ही-साथ सुविधाएँ भी अधिक दी जाती हैं। उसकी अपेक्षा भी महत्त्व की बात यह है कि कई बार मार्ग-दर्शन भी सरकार ही करती है। उनका काम-काज आसान और व्यवस्थित रूप से हो, इसके लिए जाँच और निर्देशन प्रायः सरकार की ओर

को इस दृष्टि से सजग रहना और संस्था की साख एवं पैसे की रक्षा करनी चाहिए। उन्हीं के सहयोग से दोनों बातों की उत्पत्ति होती है, स्थिति होती है और वृद्धि होती है। भागीदारों को सभा में गैर जिम्मेदारी से बर्ताव करने के कारण ऐसे अनेक उदाहरण देखे गए हैं जहाँ बैंक, बीमा-कंपनियाँ तथा सहकारी संस्थाएँ संकट में पड़ गईं। भागीदार और संचालक-मंडल के बीच में विरोध तथा दलबन्दी आदि और मुकदमेबाजी होने के कारण, अनेक स्थानों पर साख और पैसा दोनों मिट्टी में मिल गए। संस्था का संविधान कितनी भी सावधानी से क्यों न बनाया गया हो, सभा-संचालन कितना भी बढ़िया क्यों न हो, जब तक सभासद् अपनी जिम्मेदारी को नहीं पहचानता, तब तक नियमों की सीमा में रहकर भी वह संस्था की हानि करने से न चूकेगा। दर्ज करवाने से जो सरकारी कानून का बन्धन प्राप्त होता है उससे यह ठीक है कि हानि की राह में कुछ रुकावटें आ जाती हैं, पर हानि पूरी तरह टल नहीं जाती, अथवा दर्ज करवाने से काम-काज में सफलता प्राप्त होती है या वह अधिक शक्तिशाली हो जाता है, ऐसी बात भी नहीं।

सहकारी संस्थाओं में सभासदों पर अधिक जिम्मेदारी रहती है। उनकी पूँजी उनकी साख पर आधारित रहती है। वहाँ सभासद् लोग गरजमन्द होते हैं अर्थात् पैसे को काम पर लगाने की भावना से भाग नहीं खरीदते। सहयोग द्वारा पूँजी खड़ी की जाय, सुविधाएँ हासिल की जायँ और गरज़ पूरी की जाय, यह भावना रहती है। व्यवहार करके फिर नफ़ा हासिल किया जाय यह उद्देश्य वहाँ नहीं होता। किन्हीं में तो सभासदों की जिम्मेदारी संयुक्त रहती है। प्रत्येक सभासद् सभासद् के कार्य के लिए जिम्मेदार रहता है। वहाँ सभासदों के बीच सहयोग मुख्य सूत्र का कार्य करता है। सभासदों को सहयोग द्वारा जीवन के संकटों का निवारण करना है और सुविधाओं में वृद्धि करनी है, उत्कर्ष प्राप्त करना है—यह उद्देश्य होने के कारण, और चूँकि वह संघ अथवा संस्था के माध्यम द्वारा साध्य होता है, अतः प्रत्येक सभासद् की जिम्मेदारी वैयक्तिक रहती है। उसका स्वरूप नैतिक अधिक रहता है। १९१२ के सहकारी कानून की रचना और उसके अधीन बनाए गए नियमों के पीछे यही बात काम कर रही है। सरकार, कंपनी-कानून के अधीन जो नियंत्रण करती है उसकी अपेक्षा अधिक नियंत्रण सहकारी संस्थाओं के बारे में रहता है, पर उसके साथ-ही-साथ सुविधाएँ भी अधिक दी जाती हैं। उसकी अपेक्षा भी महत्त्व की बात यह है कि कई बार मार्ग-दर्शन भी सरकार ही करती है। उनका काम-काज आसान और व्यवस्थित रूप से हो, इसके लिए जाँच और निर्देशन प्रायः सरकार की ओर

को इस दृष्टि से सजग रहना और संस्था की साख एवं पैसे की रक्षा करनी चाहिए। उन्हीं के सहयोग से दोनों बातों की उत्पत्ति होती है, स्थिति होती है और वृद्धि होती है। भागीदारों को सभा में गैर जिम्मेदारी से बर्ताव करने के कारण ऐसे अनेक उदाहरण देखे गए हैं जहाँ बैंक, बीमा-कंपनियाँ तथा सहकारी संस्थाएँ संकट में पड़ गई। भागीदार और संचालक-मंडल के बीच में विरोध तथा दलबन्दी आदि और मुकदमेबाजी होने के कारण, अनेक स्थानों पर साख और पैसा दोनों मिट्टी में मिल गए। संस्था का संविधान कितनी भी सावधानी से क्यों न बनाया गया हो, सभा-संचालन कितना भी बढ़िया क्यों न हो, जब तक सभासद् अपनी जिम्मेदारी को नहीं पहचानता, तब तक नियमों की सीमा में रहकर भी वह संस्था की हानि करने से न चूकेगा। दर्ज करवाने से जो सरकारी कानून का बन्धन प्राप्त होता है उससे यह ठीक है कि हानि की राह में कुछ रुकावटें आ जाती हैं, पर हानि पूरी तरह टल नहीं जाती, अथवा दर्ज करवाने से काम-काज में सफलता प्राप्त होती है या वह अधिक शक्तिशाली हो जाता है, ऐसी बात भी नहीं।

सहकारी संस्थाओं में सभासदों पर अधिक जिम्मेदारी रहती है। उनकी पूँजी उनकी साख पर आधारित रहती है। वहाँ सभासद् लोग गरजमन्द होते हैं अर्थात् पैसे को काम पर लगाने की भावना से भाग नहीं खरीदते। सहयोग द्वारा पूँजी खड़ी की जाय, सुविधाएँ हासिल की जायँ और गरज़ पूरी की जाय, यह भावना रहती है। व्यवहार करके फिर नफा हासिल किया जाय यह उद्देश्य वहाँ नहीं होता। किन्हीं में तो सभासदों की जिम्मेदारी संयुक्त रहती है। प्रत्येक सभासद् सभासद् के कार्य के लिए जिम्मेदार रहता है। वहाँ सभासदों के बीच सहयोग मुख्य सूत्र का कार्य करता है। सभासदों को सहयोग द्वारा जीवन के संकटों का निवारण करना है और सुविधाओं में वृद्धि करनी है, उत्कर्ष प्राप्त करना है—यह उद्देश्य होने के कारण, और चूँकि वह संघ अथवा संस्था के माध्यम द्वारा साध्य होता है, अतः प्रत्येक सभासद् की जिम्मेदारी वैयक्तिक रहती है। उसका स्वरूप नैतिक अधिक रहता है। '१६१२ के सहकारी कानून की रचना और उसके अधीन बनाए गए नियमों के पीछे यही बात काम कर रही है। सरकार, कंपनी-कानून के अधीन जो नियंत्रण करती है उसकी अपेक्षा अधिक नियंत्रण सहकारी संस्थाओं के बारे में रहता है, पर उसके साथ-ही-साथ सुविधाएँ भी अधिक दी जाती हैं। उसकी अपेक्षा भी महत्त्व की बात यह है कि कई बार मार्ग-दर्शन भी सरकार ही करती है। उनका काम-काज आसान और व्यवस्थित रूप से हो, इसके लिए जाँच और निर्देशन प्रायः सरकार की ओर

मानने में कोई बड़प्पन नहीं, पर अपने-आप स्वीकार किये हुए बंधन अथवा नियंत्रण को मानने में ही अधिक शोभा है तथा उसमें एक नैतिक प्रतिष्ठा है। स्वतः सिद्ध संस्था की आज्ञा लोगों को युक्ति-संगत प्रतीत हुई और उन्होंने उसे माना तो उसे भी नैतिक गौरव प्राप्त होता है। केवल वह सरकारी संस्था की आज्ञा होने से नैतिक नहीं सिद्ध होती। वह यदि सद्सद्विवेक-बुद्धि को ठीक न जँचती हो तो उसके पालन की जिम्मेदारी भले ही कानूनी हो, नैतिक नहीं हो सकती। राज्य-संस्था अथवा अन्य किसी सरकारी संस्था के नियंत्रण को या संरक्षण को स्वीकार करना नहीं पड़ता। उसके क्षेत्र में पैदा होने तथा रहने ही से वह प्राप्त होती है, लादी जाती है, इन्कार करने से वह नष्ट नहीं होती। राज्य-गत नागरिकता के सम्बन्ध में स्वीकार करने या इन्कार करने का प्रश्न बहुत ही कम पैदा होता है। अन्य संस्थाओं की सदस्यता, यदि उसका काम-काज पसन्द न हो तो, त्यागी जा सकती है। अतः सभा की सदस्यता स्वेच्छया-प्रेरित होने के कारण प्राप्त होने वाला नियंत्रण, नैतिक दृष्टि से प्रतिष्ठापूर्ण रहता है। सदस्यता बनाए रखनी है तो नियमानुसार, नियंत्रणानुसार काम करना चाहिए। अपना कहा आप ही मान रहे हैं यह तात्त्विक एवं वास्तविक परिस्थिति होती है।

स्वतः सिद्ध संस्थाओं में सभासदों को विशेष जिम्मेदारी से काम करना होता है। कारण, उनके निर्णयों और अनुशासन में प्रत्येक सभासद् का काम रहता है। उस संस्था की साख, प्रतिष्ठा और कीर्ति के संपादन-कार्य में उनका हिस्सा रहता है। व्यापारी-कम्पनियाँ प्रायः सीमित उत्तरदायित्व वाली तथा नफे के लिए स्थापित होती हैं अतः भागीदारों में और वहाँ, जहाँ उनकी संख्या हजारों में होती है, संघ-भाव शायद ही कहीं होता है। किसी समय या राजकीय पक्ष के सम्बन्ध में सभासदों में जैसी आत्मीयता होती है वैसी कम्पनी के भागीदारों में कम्पनी के सम्बन्ध में नहीं दिखाई देती। नफे की दृष्टि से भाग लेना और बेचना, इसमें आत्मीयता का तथा भावुकता का प्रश्न ही नहीं पैदा होता। वही स्थिति बीमा-व्यवसाय करने वाली कम्पनियों में होती है। बीमा-कम्पनियों के भागीदार भागों पर नफा कितना मिलेगा इस बात की ओर देखते हैं, तो पालिसी वाले इस बात की ओर देखते हैं कि बीमा-कम्पनी का सारा काम-काज किस प्रकार चल रहा है, एक शब्द में दोनों पक्ष आर्थिक दृष्टि से ही कंपनी के व्यवहार की ओर देखते हैं। थोड़ी-बहुत मात्रा में यही परिस्थिति सहकारी संस्थाओं में भी दृष्टिगत होती है। वहाँ भी आर्थिक दृष्टि ही प्रमुख रहती है। अतः जिन स्वतः सिद्ध संस्थाओं में आर्थिक व्यवहार होना है वहाँ सभासदों

को इस दृष्टि से सजग रहना और संस्था की साख एवं पैसे की रक्षा करनी चाहिए। उन्हीं के सहयोग से दोनों बातों की उत्पत्ति होती है, स्थिति होती है और वृद्धि होती है। भागीदारों को सभा में गैर जिम्मेदारी से बर्ताव करने के कारण ऐसे अनेक उदाहरण देखे गए हैं जहाँ बैंक, बीमा-कंपनियाँ तथा सहकारी संस्थाएँ संकट में पड़ गईं। भागीदार और संचालक-मंडल के बीच में विरोध तथा दलबन्दी आदि और मुकदमेबाजी होने के कारण, अनेक स्थानों पर साख और पैसा दोनों मिट्टी में मिल गए। संस्था का संविधान कितनी भी सावधानी से क्यों न बनाया गया हो, सभा-संचालन कितना भी बढ़िया क्यों न हो, जब तक सभासद् अपनी जिम्मेदारी को नहीं पहचानता, तब तक नियमों की सीमा में रहकर भी वह संस्था की हानि करने से न चूकेगा। दर्ज करवाने से जो सरकारी कानून का बन्धन प्राप्त होता है उससे यह ठीक है कि हानि की राह में कुछ रुकावटें आ जाती हैं, पर हानि पूरी तरह टल नहीं जाती, अथवा दर्ज करवाने से काम-काज में सफलता प्राप्त होती है या वह अधिक शक्तिशाली हो जाता है, ऐसी बात भी नहीं।

सहकारी संस्थाओं में सभासदों पर अधिक जिम्मेदारी रहती है। उनकी पूँजी उनकी साख पर आधारित रहती है। वहाँ सभासद् लोग गरजमन्द होते हैं अर्थात् पैसे को काम पर लगाने की भावना से भाग नहीं खरीदते। सहयोग द्वारा पूँजी खड़ी की जाय, सुविधाएँ हासिल की जायँ और गरज़ पूरी की जाय, यह भावना रहती है। व्यवहार करके फिर नफ़ा हासिल किया जाय यह उद्देश्य वहाँ नहीं होता। किन्हीं में तो सभासदों की जिम्मेदारी संयुक्त रहती है। प्रत्येक सभासद् सभासद् के कार्य के लिए जिम्मेदार रहता है। वहाँ सभासदों के बीच सहयोग मुख्य सूत्र का कार्य करता है। सभासदों को सहयोग द्वारा जीवन के संकटों का निवारण करना है और सुविधाओं में वृद्धि करनी है, उत्कर्ष प्राप्त करना है—यह उद्देश्य होने के कारण, और चूँकि वह संघ अथवा संस्था के माध्यम द्वारा साध्य होता है, अतः प्रत्येक सभासद् की जिम्मेदारी वैयक्तिक रहती है। उसका स्वरूप नैतिक अधिक रहता है। १६१२ के सहकारी कानून की रचना और उसके अधीन बनाए गए नियमों के पीछे यही बात काम कर रही है। सरकार, कंपनी-कानून के अधीन जो नियंत्रण करती है उसकी अपेक्षा अधिक नियंत्रण सहकारी संस्थाओं के बारे में रहता है, पर उसके साथ-ही-साथ सुविधाएँ भी अधिक दी जाती हैं। उसकी अपेक्षा भी महत्त्व की बात यह है कि कई बार मार्ग-दर्शन भी सरकार ही करती है। उनका काम-काज आसान और व्यवस्थित रूप से हो, इसके लिए जाँच और निर्देशन प्रायः सरकार की ओर

से किये जाते हैं। सरकारी संस्थाओं के उद्देश्य के अनुसार ही संविधान और नियमों के नमूने तैयार किये जाते हैं। संविधान और नियम के निर्माण का कार्य यद्यपि संस्था के सभासदों का है, तथापि बहुधा वह सरकारी नमूने के अनुरूप ही किया जाता है। उत्कृष्ट संविधान अथवा आदर्श नियमों के होते हुए भी ये संस्थाएँ इस देश में बहुत सफल नहीं हो पाई हैं। व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध एवं निर्दोष वाक्य भी जिस प्रकार अर्थ-शून्य हो सकता है, उसी प्रकार सर्वथा नियमानुसार काम करने वाली संस्थाएँ भी निष्प्रभ और निःसत्त्व हो सकती हैं। जिस उद्देश्य एवं कार्य से प्रेरित होकर संस्था की स्थापना की गई है, सभासदों में यदि उसके अनुरूप भाव न हो तो वह संस्था कितनी भी वैधानिक, कितनी भी निर्दोष और कार्य-पद्धति में कितनी भी नियम-बद्ध हो, बलशाली नहीं हो सकती। प्रत्येक संस्था के कार्य द्वारा एक परम्परा उत्पन्न होती है, उसका एक अध्यात्म निर्माण होता है। जिसका संगोपन यदि सभासदों ने न किया तो वह संस्था नेस्तोनाबूद हो जाती है। संविधान द्वारा संस्था का अस्थि-पंजर निर्माण होगा। उसके लिए आवश्यक प्राण एवं शक्ति तो इस बात पर अवलंबित रहती है कि सभासद् लोग किस भाव एवं भावना से संस्था के साथ सम्बन्ध रखते हैं। संस्था के भावों के विरुद्ध यदि वातावरण उत्पन्न हो तो संस्था की समाप्ति हो जाती है अथवा वह निष्क्रिय हो जाती है। आर्थिक लाभ की दृष्टि से स्थापित संस्था में राजनीति घुस आई, सहकारी संस्था में व्यक्ति-निष्ठा घुस आई तो उन संस्थाओं की कार्य-क्षमता नष्ट हो जाती है। राजनीतिक संस्थाओं में मनोरंजन के लिए अथवा पेशा समझकर सभासद् प्रवेश करें, तो उन संस्थाओं का कार्य मूल उद्देश्य से गिर जाता है। उस समय संस्था जन-सेवा का एक पवित्र साधन न रहकर स्वार्थ-पूर्ति का साधन बन जाती है। मनोरंजन के लिए एक क्लब बन जाती है और वहाँ जन सेवा तो होती नहीं, खुराफातें पैदा होने लग जाती हैं। तात्पर्य यह कि सहकारी संस्था के उद्देश्य से विपरीत भावनाओं को स्थान देने से सहकारी संस्थाओं में गुण्डागर्दी और दलबन्दी अधिक मच जाती है।

व्यापारी-कम्पनियों, बीमा-कम्पनियों अथवा सहकारी संस्थाओं में न्यूनाधिक मात्रा में वैयक्तिक स्वार्थ एवं आर्थिक सम्बन्ध अधिक बलवान रहता है। १८६० के संस्थाओं को दर्ज करने के कानून का विषय बनने वाली संस्थाओं के बारे में यह बात नहीं होती, १९२६ के व्यवसाय-संघ के कानून (Indian Trade Union Act. 1926) का विषय बनने वाली संस्थाओं के बारे में भी यही कहा जा सकता है। इस कानून के अनुसार उन तात्कालिक अथवा स्थायी संघों

को दर्ज किया जा सकता है, जिनका मुख्य उद्देश्य मजदूर और मालिक, मजदूर और मजदूर, तथा मालिक और मालिकों के बीच के सम्बन्धों का नियंत्रण करना है। अनेक संघों से मिलकर बने हुए संयुक्त-संघ को भी दर्ज किया जा सकता है। प्रांतों में जो दर्ज करने का अधिकारी नियुक्त हो उसके पास दर्ज करवाने की अर्जी भेजनी होती है। उस अर्जी में (१) अर्जी करने वाले सभासदों के नाम (२) व्यवसाय-संघ का नाम (Name of the Trade Union) और मुख्य कार्यालय का पता (३) संयुक्त-संघ की अर्जी हो तो घटक-संघों के नाम, पेशे और पते आदि की जानकारी होनी चाहिए। दर्ज कराई के लिए अन्य कुछ बातों की आवश्यकता होती है। इस कानून की धारा २२ के अनुसार कार्यवाहक-मंडल प्रस्तुत संस्था का होना चाहिए। इस धारा के अनुसार कार्यवाहक-मंडलों में उन सभासदों का अनुपात ½ निश्चित किया हुआ है, जो उस पेशे के नहीं हैं। इसी प्रकार, संघ के नियमों में संघ का नाम, उद्देश्य तथा उन कार्यों, जिनके लिए संघ का पैसा उपयोग में लाया जायगा आदि, का निर्देश हो, और वे सब कार्य इस कानून में मान्य किये गए कार्यों में अन्तर्भत हो सकें। सदस्यता उन लोगों को मिलनी चाहिए जो उस व्यवसाय में काम करते हों। अन्य लोगों को किस अनुपात में लिया जाय इसका स्पष्टीकरण धारा २२-में है। सभासदों की सूची, उसे जाँचने की सुविधा, सभासदों को दिये जाने वाले लाभ की शर्तें, वह जुर्माना, जो उन्हें देना पड़ेगा, उसका वह पैसा, जो जब्त किया जा सकेगा, नियमों को बदलने अथवा रद करने की व्यवस्था, कार्यवाहक-मण्डल का चुनाव, फंड की व्यवस्था, जाँच, संघ को बन्द करना हो तो विघटन के कार्य आदि की व्यवस्था होनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि जब तक किसी संघ का संविधान या नियंत्रण हो तंब तक उसे दर्ज नहीं किया जा सकता। दर्ज किये जाने के बाद प्रमाण-पत्र दिया जाता है। नियम के विरुद्ध आचरण करने या किसी अन्य उचित कारण से यह प्रमाण-पत्र रद किया जाता है। रद करने वाले फैसले के विरुद्ध दीवानी अदालत में अपील की जा सकती है। जिन व्यवसाय-संघों को दर्ज कर लिया गया है वे पैसा उन्हीं बातों पर खर्च कर सकते हैं जो कानून में निर्दिष्ट हैं। वे बातें ये हैं:—कार्यालय पर, अभियोग चलने की दशा में, व्यवसाय में कोई बखेड़ा खड़ा हो जाय अर्थात् हड़ताल आदि हो गई हो तब सभासद को झगड़े में नुकसान हो जाय तो उसकी भरपाई के लिए, बीमारी, मृत्यु तथा बेकारी आदि प्रयोजन के लिए, शिक्षण-विषयक, सामाजिक अथवा धार्मिक विषयों पर, संघ के उद्देश्य लेकर कोई समाचार-पत्र निकलता हो तो उसके लिए अथवा अन्य प्रकाशनों पर, और जिन कार्यों पर संघ की सम्पूर्ण आय का एक

चौथाई तक संघ का पैसा खर्च किया जा सकता है, ऐसे किसी भी कार्य के प्रसार के लिए।

कानून का उद्देश्य यह है कि संघ का पैसा संघ के उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही खर्च हो। तथापि राजनीति के लिए खर्च करना हो तो एक स्वतंत्र फंड बनाने की अनुमति इस कानून में है। इन फंडों की सहायता से संघ की ओर से चुनाव के लिए खड़े होने वाले उम्मीदवार का खर्च और उसका मेहनताना आदि दिया जा सकता है। सभा और प्रकाशन का तथा प्रचार का खर्च भी किया जा सकता है। पर सभासद् को इस फंड में चंदा देने के लिए बाध्य नहीं दिया जा सकता। ऐसे सभासदों को संघ की ओर से मिलने वाली सुविधाओं से वंचित नहीं किया जा सकता। यह भी नियम नहीं बनाया जा सकता कि संघ में प्रवेश तभी मिलेगा जब वह इस फंड में चंदा दे। संघ ने अपने को दर्ज करवा लिया तो उपरिवर्णित सभी बंधन उस पर लागू हो जाते हैं। यदि दर्ज न कराया हो तो किसी प्रकार का बंधन नहीं रहता। यदि नाम दर्ज कराया हो तो सरकार की ओर से मान्यता प्राप्त होती है और कुछ अधिकार भी प्राप्त होते हैं। विधान-सभाओं के लिए मजदूर-संघों को अपना प्रतिनिधि चुनने का अधिकार है, पर यह तभी है जब उनके नाम दर्ज किये हुए हों। यदि संघ का नाम दर्ज हो तो मालिकों को मान्यता का अस्वीकार करना कठिन हो जाता है। दर्ज होने के कारण काम-काज में व्यवस्था बनी रहती है। सरकार के पास वार्षिक ब्यौरा भेजना पड़ा है। नाम दर्ज रहे इस भावना से नियमानुसार काम करने की आवश्यकता उत्पन्न होती है। संघ का पैसा व्यवस्थित रहता है और विघटन हो जाने पर भी उसकी व्यवस्था करके रजिस्ट्रार उसे सभासदों में बाँट देता है।

स्वतः सिद्ध संस्था अथवा संघ दर्ज किया हुआ हो या न हो, उसके लिए संविधान और नियम आवश्यक हैं। भले ही संघ की श्रेष्ठता और कार्य-क्षमता उसके सभासदों की शक्ति और योग्यता पर आश्रित हो, पर अनुरूप और अनुकूल संविधान के अभाव में काम में दिक्कतें पैदा होती हैं, देर लगती है। संघ के कार्य में संघर्ष नहीं रहना चाहिए। राग-द्वेष या पक्षपात होने पर संघ का ह्रास न हो, इसके लिए सभासदों की संस्था के प्रति निष्ठा व्यक्ति-निरपेक्ष होनी चाहिए। उसका संविधान भी ऐसा हो जिसमें मतभेद के लिए गुञ्जाइश हो और कार्य की एकता भी सम्भव हो। विचार-विनिमय के द्वारा एक साथ आने वाले व्यक्ति यह स्थिर करते हैं कि एक संघ बनाया जाय, विचार-विनिमय के द्वारा संघ के निर्णय लिये जाते हैं और विचार-विनिमय का अतिरेक हो जाने से संघ का विलय एवं विनाश हो जाता है। उत्पत्ति, स्थिति

और लय तीनों में विचार-विनिमय की सहायता संघ को रहती है। अतः तद्विषयक नियमों का महत्त्व है। विचार-विनिमय की उपलब्धि के लिए व्यक्तियों का एक साथ आना आवश्यक है। तात्पर्य यह है कि संघ की हर हालत में आवश्यकता है। एक ही बार वे एक जगह आये और चले गए तो वह एक सभा हुई और खत्म हो गई। पर लगातार काम करने के लिए संघ-रूपी साधन के निर्माण हो जाने पर तद्विषयक नियमों को महत्त्व प्राप्त हो जाता है। संघ के लिए संविधान चाहिए और चूँकि उसका कार्य विचार-विनिमय द्वारा किया जाता है, अतः उसके सम्बन्ध में उचित नियम होने चाहिएँ। विचार-विनिमय द्वारा निर्णय पर पहुँचने के लिए संघ के सभासदों के सभा में बैठने के पश्चात्, किस पद्धति से कार्य हो इसका विचार पिछले प्रकरण में किया जा चुका है। संघ के लिए संविधान बहुत ज़रूरी है अन्यथा उसके कार्यों में निश्चिति, सुसंगति आदि नहीं रहेगी। सभासदों में विश्वास एवं निष्ठा भी नहीं रहेगी। इन सबके लिए प्रत्येक संघ के वास्ते किसी-न-किसी प्रकार का संविधान और नियम आवश्यक हैं। संघ का एक संगठन होना चाहिए। उसके लिए आवश्यक मुख्य बातों का विचार आगे किया जा रहा है।

जो वैधानिक संस्थाएँ होती हैं उनका संविधान राज्य-सत्ता के कानून द्वारा निश्चित किया हुआ रहता है। देश की मुख्य विधान-सभा, राज्य के संविधान अथवा संविधान कानून के द्वारा अस्तित्व में आती है। मतदाता कौन हो सकता है, मतदाता-संघ का विभक्तीकरण, उम्मीदवारों की योग्यता, निर्वाचन की पद्धति, विधान-सभा के सभासदों की संख्या, अध्यक्ष का चुनाव, कार्य-क्षेत्र का विचार, कार्य-पद्धति का विचार इत्यादि सब बातों की व्यवस्था उस कानून में रहती है। मुख्य विधान-सभा कानून बनाकर देश की अन्य वैधानिक संस्थाओं को जन्म देती हैं। ग्राम-पंचायत, लोकल बोर्ड, नगरपालिका, पोर्ट ट्रस्ट आदि प्रत्येक वैधानिक संस्था कानून द्वारा अस्तित्व में आती है। उसका संविधान तथा नियम आदि भी कानून द्वारा ही निश्चित किये जाते हैं। उसके मौलिक स्वरूप में परिवर्तन करने का सभासदों को अधिकार नहीं रहता। एक निश्चित सीमा तक के काम चलाऊ नियमों में थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर सकते हैं। अधिकार से बाहर का काम विधियुक्त नहीं होता और वह कानूनी नहीं समझा जाता। कानून द्वारा जितना किया जा सकता है उतना ही वे लोग कर सकते हैं। केवल सभासदों की मंजूरी से किया गया काम कानूनी नहीं होता। जो संस्थाएँ वैधानिक नहीं हैं वे एक दृष्टि से सर्वशक्तिमान् एवं सत्ताधीश होती हैं। उन्हें अर्थात् उनके सभासदों को अपने संविधान में किसी भी प्रकार का परिवर्तन

करने का पूरा अधिकार है। जहाँ उनका नाम दर्ज किया होता है वहाँ इस अधिकार पर थोड़ा प्रतिबंध तो बना ही रहता है। इसी प्रकार यदि कोई कार्य संविधान से बाहर का हो गया हो तो सभासदों की मंजूरी मिलने पर वह ठीक हो जाता है। सभासद्, संस्था अथवा संघ को खत्म कर सकते हैं। निर्माण करने और नष्ट करने का, जन्म देने और मारने दोनों का उन्हें अधिकार होता है। नगरपालिका के सब सभासदों ने मिलकर भी यदि उसके अस्तित्व को समाप्त करने की ठान ली हो तो भी वे वैसा नहीं कर सकते। तात्पर्य यह कि स्वतः सिद्ध संस्था अपने वास्ते सर्वशक्तिमान् होती है।

स्वतः सिद्ध संस्थाएँ सर्व सत्ताधीश होती हैं अतएव नियम द्वारा उनकी सत्ता की सीमा को निश्चित करना लाभदायक है। उनका संविधान अवश्य होना चाहिए। संविधान में पहला स्थान है उद्देश्य का। समान उद्देश्य के लिए व्यक्ति एकत्र होते हैं और संघ स्थापित करते हैं, अतः उनमें संघ-भाव निर्माण करने वाला मुख्य और एक-मात्र सूत्र है उद्देश्य। संघ-निष्ठा का अर्थ है उद्देश्य अथवा ध्येय के प्रति निष्ठा। सभासदों की निष्ठा संघ की सम्पत्ति अथवा वस्तु (इमारत) पर न रहकर उसके ध्येय पर रहनी चाहिए। फण्ड का अर्थ संघ नहीं, पत्थर और मिट्टी की इमारतें संघ नहीं, वे तो उसके स्थूल रूप हैं। संघ का ध्येय आत्मा है। वह जब तक प्रबल है तब तक संघ भी प्रबल रहता है, अतः संघ के ध्येय अथवा उद्देश्य का संविधान में पहला स्थान है और सभासदों के मन में भी उसका पहला स्थान होना जरूरी है। सभासदों के स्वार्थ के लिए संस्था का ध्येय जब मर्जी हो तब बदला न जा सके—इस बात की व्यवस्था संविधान में होनी चाहिए। ध्येय को प्रबल बनाए रखने के लिए समयानुसार उसमें परिवर्तन किये जाने की व्यवस्था भी संविधान में रहनी चाहिए। मनुष्य जीवन एक प्रवाह है, उसमें चैतन्य है, उसके विकास के लिए, कर्तृत्व के लिए अवसर मिले और यदि यह सब संघ के द्वारा होना है तो संघ एक सम्प्रदाय न बन जाय। परिस्थिति के अनुसार संघ के कार्य में परिवर्तन किया जाय। संघ तभी जीवित रहता है। जब उसका ध्येय समयानुकूल हो। बहने वाली नदी अपना वेग और पाट बढ़ाती जाती है। संघ के बारे में भी यही बात अनुभव में आनी चाहिए। उचित परिस्थिति में ध्येय और उद्देश्य के अन्दर अनुरूप परिवर्तन करने का अधिकार, और उसे अमल में लाने की योजना संविधान में अवश्य हो।

ध्येय अथवा उद्देश्य के अनन्तर संस्था के नाम का विचार भी महत्त्वपूर्ण है। नाम में क्या रखा है, ऐसा कहने से काम नहीं चलता। इसी प्रकार नाम के

लिए बहुत अधिक कोशिश करना भी उचित नहीं। संस्था का नाम ऐसा होना चाहिए जिससे आसानी से उसके ध्येय, कार्य-क्षेत्र और स्वरूप का ज्ञान हो जाय। कुल-परम्परा के समान ही संस्था की परम्परा भी निर्माण होती जाती है और इसमें उसका नाम मध्य-बिन्दु का काम करता है। वह आत्मीयता को जागृत करने वाला चैतन्य होता है। एक ही जगह एक ही नाम की दो संस्थाओं का होना ठीक नहीं, अतः संस्था का नाम रखते समय इस बात का ध्यान विशेष रूप से रखा जाय। अनेक बार मूल संस्था में फूट पड़ जाती है और उसमें से बाहर निकले हुए लोग उसी या थोड़े से परिवर्तन से उस-जैसे नाम की एक दूसरी संस्था स्थापित कर लेते हैं। इसके कारण दोनों के कार्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। मूल संस्था का नाम कौन ले सकता है, यह उस संस्था के संविधान के अनुसार निर्णायक रूप में स्थिर किया जा सकता है। उसके स्थिर हो जाने पर दुराग्रह पूर्वक उसे अन्य लोग ले लें यह अनुचित होगा। कार्य के लिए प्रयत्न न होकर नाम के लिए ही सारा उत्साह समाप्त हो जायगा। नाम निश्चित करते समय जो काम होने जा रहा है वह उसके लिए अनुरूप हो, इस बात का विचार करना अनुचित नहीं होगा। छोटे से शहर में मुट्ठी-भर लोग जमा हों और उस संस्था का अखिल भारतीय नाम रख दें तो यह उस काम का मज़ाक करना ही तो है। संस्था का नाम रखते समय मर्यादा, प्रतिष्ठा और प्रासङ्गिकता का विचार अवश्य किया जाना चाहिए।

संघ का अर्थ है सभासद् और यह अनेक दृष्टियों से सही है। संघ की इमारत भव्य हो; पर अन्दर काम करने वाले क्षुद्र हों, संघ का नाम व्यापक क्षेत्र प्रदर्शित करने वाला हो पर सभासद् में प्रान्तीयता की पक्षपातपूर्ण भावना हो, संघ जन-सेवा करने वाला हो और सभासद् स्वार्थ साधने वाले हों तो यह विरोध बहुत बुरी तरह से अखरता है। संविधान कैसा भी हो, नाम कुछ भी हो, संघ का वास्तविक स्वरूप तो उसके मौजदा सभासदों के विचार और व्यवहार के आधार पर ही प्रकट होता है। संघ का प्रभावोत्पादक अवयव सभासद् ही है। अतः सभा-सदस्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण वस्तु है। सभा की सदस्यता को यदि गौरवास्पद, भूषणास्पद बनना है, प्रभावशाली और कार्य-क्षम होना है तो वह पात्रता का विचार करके ही किसी को प्राप्त होना चाहिए। संस्था के कार्य और स्वरूप पर सभा की सदस्यता आश्रित रहती है। भाग खरीदा, प्रवेश-शुल्क दिया, उद्देश्य-पत्रिका को मान्य किया कि सभा की सदस्यता हासिल हो गई, ऐसा भी हो सकता है। इसके विपरीत यह भी हो सकता है कि कुछ काल तक उम्मीदवारी करने पर, कुछ काम करके दिखाने पर, कुछ रचना करने पर, सदस्यता हासिल

हो। संस्था और सभासद् दोनों का उद्देश्य अथवा प्रयोजन एक ही होना चाहिए। संस्था के उद्देश्य की स्वीकृति-मात्र न्यूनतम योग्यता है। संस्था का ऐसा बाजारी रूप न हो कि जब चाहे कोई उसमें आय और जब चाहे उसमें से निकल जाय। केवल मनोरंजन के लिए स्थापित नाट्य-गृह में टिकट खरीदने पर प्रवेश भले ही मिलता हो, पर अनुचित व्यवहार करने पर वहाँ भी बाहर निकाल दिया जाता है। तब, जहाँ प्रवेश-उद्देश्य को मान्य करने के पश्चात् मिलता है, और जहाँ संघ केवल मनोरंजन के लिए नहीं है, वहाँ अभद्र व्यवहार करने वाले सभासद् को संघ से बाहर निकालने की व्यवस्था का होना आवश्यक है। संघ में आते समय उद्देश्य की मंजूरी होनी चाहिए और जब तक संघ में रहें तब तक संघ के नियमों के अनुसार व्यवहार किया जाय। संघ से बाहर जाते समय अपनी जिम्मेवारी पूरी करके सभासद् को जाना चाहिए। इस दृष्टि से विचार करते हुए संविधान में सभासद्-प्रवेश, सभासदों का व्यवहार, अनुशासन भंग और सदस्यता रद या स्थगित करने आदि बातों के बारे में ठीक-ठीक व्यवस्था हो। चूँकि संघ में आने का उद्देश्य व्यक्ति का विकास, उन्नति और आनन्द की प्राप्ति होती है अतः ऐसा होना ठीक नहीं कि अनुशासन के नाम पर ठीक इससे उलटी बातें होने लग जायँ। इसके साथ ही सभासद् यह न भूलें कि संघ का अर्थ होता है सहयोग, कुछ देना और कुछ लेना, कुछ बन्धन स्वीकार करके किसी स्वातन्त्र्य को तेजस्वी बनाना। एकाकी वृत्ति का, व्यक्ति-निष्ठ, झगड़ालू, अति तार्किक, अपनी ही सब कहीं टाँग अड़ाने वाला सभासद् संस्थाओं के लिए अयोग्य साबित होता है। नियमों में रहते हुए भी वह संस्था के कार्य के रस में विष घोल सकता है। किन्हीं संस्थाओं के नियमों में सभासदों को लेते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है और अनुरूप नियम रहते हैं। भाग खरीदकर अथवा चन्दा देकर जहाँ संस्था में प्रवेश मिलता है वहाँ सभासदों की मनोवृत्तियों पर किसी का ध्यान नहीं जाता। संस्था का सभासद् बनाते समय अगर कुछ न किया जा सके तो अनुभव के पश्चात् अयोग्य, संस्था-विरोधी, उसकी अप्रतिष्ठा करने वाले सभासद् को बाहर निकालने की व्यवस्था की जाय। न तो संस्था को नियमानुसार व्यवहार करने वाले सभासद् को कुचलना चाहिए और न सभासदों में नियमों की सहायता से संस्था के कार्य को विघटित करने की भावना हो। संविधान, कार्य में व्यवस्था उत्पन्न करने के लिए है। वह शस्त्र के रूप में काम में लाने के लिए नहीं है। यह भावना, संविधान के आदर्श होने-मात्र से उत्पन्न नहीं होती। सभासदों के शील और प्रवृत्ति पर यह अवलम्बित रहता है। सभासदों को सदस्य बनाते

समय उचित नियम बनाकर सावधान रहना चाहिए।

संस्था के निर्णय सभासदों को करने होते हैं। अनेक मनुष्यों द्वारा किये जाने वाला निर्णय बहुमत द्वारा होता है यह स्पष्ट ही है। यथा सम्भव समझदारी और समन्वयपूर्वक कार्य करके भी यदि सर्व प्रिय निर्णय न लिया जा सके तो बहुमत द्वारा निर्णय का लेना अनिवार्य हो जाता है। बहुमत को निर्णय का आधार भले ही माना जाय तो भी कुछ निर्णय ऐसे हैं जिनके लिए नाम-मात्र के बहुमत से काम नहीं चलता। कुछ विषय साधारण होते हैं और कुछ संगठनात्मक होते हैं। जो विषय संघ के मूलभूत अथवा संगठनात्मक स्वरूप से सम्बन्ध नहीं रखते उनका निर्णय यदि सामान्य बहुमत से हो जाय तो कोई बुराई नहीं। पर जो विषय मूलगामी अथवा संघटनात्मक स्वरूप के हैं उनके बारे में विशिष्ट बहुमत द्वारा लिया गया निर्णय ही विधियुक्त माना जाय। ध्येय अथवा उद्देश्य में और सदस्य की पात्रता में परिवर्तन, संविधान के नाम से जो व्यवस्था है उसमें, और उसी प्रकार के परिवर्तन मौलिक एवं संघटनात्मक हैं। ये परिवर्तन सामान्य बहुमत से न हों बल्कि सभासदों की समस्त संख्या के $\frac{2}{3}$ अथवा $\frac{3}{4}$ बहुमत से होने चाहिएँ। इस प्रकार परिवर्तन करने का अवसर प्रत्येक सभा को नहीं है। उचित नोटिस देकर अथवा विशेष रूप से जो सभा बुलाई जाय उसी में इस प्रकार की बातों का विचार किया जाय।

संस्था का अर्थ है, समान प्रयोजन से लोगों का एक साथ जमा होना। अतः वहाँ समता का वातावरण रहना ठीक है। अतः मत की दृष्टि से सब सभासदों को समान ही मानना चाहिए। एक सभासद् का एक मत—यह मुख्य सिद्धान्त है। नफे के लिए स्थापित संगठनों में पूँजी के आधार पर अर्थात् भागों (शेयर) की संख्या के आधार पर मतों की संख्या निश्चित की जाती है। सहकारी संस्था के कार्यों में एक सभासद् के लिए एक मत स्वीकृत किया गया है और वह सर्वथा योग्य है। प्रतिनिधियों द्वारा संगठित संस्थाओं में मत की दृष्टि से सभी प्रतिनिधि समान रहते हैं। कितने ही संयुक्त संगठनों में प्रतिनिधियों का मत उन्हें चुनने वाले संघों के सभासदों की संख्या के बराबर माना जाता है। इस पद्धति को संख्या-बद्ध मत-पद्धति (Block Votes) कहते हैं। अधिकार-पत्रों का गट्ठा देकर अथवा संख्या-बद्ध मत देकर निर्णय पर पहुँचना संघ के कार्य की दृष्टि से भले ही वांछनीय हो तथापि विचार-विनिमय के तत्त्व ज्ञान से वह संगत नहीं है। जहाँ पूँजी का सवाल न हो वहां तो एक सभासद् को एक मत रहना ही चाहिए एवं यथासम्भव सदस्यता के नाना प्रकार नहीं करने चाहिएँ। पार्टीबाजी से बचने के लिए संघ में सब दृष्टियों से समानता का वाता-

वरण रहना वांछनीय है।

संघ पर प्रभुत्व संघ के सारे सभासदों का है। सभासदों से मिलकर जो संगठन बनता है वह उस संस्था की साधारण सभा (General Body) है। इस साधारण सभा को संघ के सारे अधिकार रहते हैं। संघ के सबसे आखिर के निर्णय यही साधारण सभा सारे सभासदों की बैठक बुलाकर उसमें किया करती है। सब सभासद् चूँकि हर रोज आकर संघ का काम नहीं देख सकते अतः प्रत्येक संस्था अथवा संघ की एक कार्यकारिणी समिति रहती है और ऐसी एक छोटी सी समिति प्रत्येक संस्था में होनी चाहिए। इसी प्रकार प्रत्येक संगठन का एक प्रमुख भी हो तथा साधारण सभा द्वारा उसका चुनाव किया जाय। कार्यकारिणी समिति का चुनाव भी साधारण सभा ही करे। किन्हीं संस्थाओं में पहले अध्यक्ष चुना जाता है और पीछे से वह कार्यकारिणी समिति की नियुक्ति करता है। उसमें उसकी नीति के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण होता है। लेकिन कार्यकारिणी समिति उसके साथ समान स्तर पर काम नहीं कर सकती, उतनी निर्भय नहीं हो सकती और प्रतिनिधित्व की दृष्टि से भी न्यूनता रह जाती है। यदि कार्यकारिणी का चुनाव साधारण सभा ने किया हो तो साधारण सभा के पक्ष का प्रतिबिंब कार्यकारिणी समिति पर पड़ता है। और वर्ष में एक या दो बार होने वाले वाद-विवाद हर रोज या हर सप्ताह होने लगते हैं। काम तो होता नहीं उल्टे ऐसा वातावरण निर्माण होता है कि कुछ भी होने न दिया जाय और कोई नवीन कार्य करने न दिया जाय। तथापि कार्यकारिणी का चुनाव करने की पद्धति अधिक अच्छी है।

कार्यकारिणी समिति अथवा अन्य किसी प्रकार का निर्वाचन करने की पद्धति संविधान में स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट रहनी चाहिए और चूँकि यह मौलिक स्वरूप का प्रश्न है अतः बार-बार उसमें परिवर्तन होना ठीक नहीं। जहाँ ज्यादा दिक्कत पेश नहीं आती। साधारण सभा की सभा में उपस्थित रहने वालों की संख्या जहाँ बहुत नहीं होती वहाँ भी दिक्कत नहीं होती। दिक्कत वहाँ पेश आती है जहाँ उपस्थित रहने वाले सभासद् भी ज्यादा हों और चुनाव के स्थान भी अधिक हों। सामान्य तौर से निर्वाचन गुप्त मत-दान-पद्धति द्वारा किया जाय। जहाँ स्थान अधिक हों वहाँ मत किस प्रकार दिये जायँ यह एक महत्त्व का प्रश्न हो जाता है। (१) जितने स्थान उतने मत और सब-के-सब एक उम्मीद-वार के लिए इकट्ठा करके देना (Camulative Voting) एक प्रकार की पद्धति हुई। इसमें अल्पसंख्यकों को अवसर मिलता है और बहुत दफा अधिक प्रतिनिधित्व मिल जाता है। (२) जितनी जगहें उतने मत, मगर एक से अधिक

किसी भी उम्मीदवार के लिए नहीं दिये जा सकते, उन्हें बाँटकर देना होता है; इसे विभाजक मत-दान (Distributive Votes) कहा जाता है। किन्हीं स्थानों पर यह विभाजन आवश्यक हो जाय तो वहाँ सारे मत देने चाहिएँ। इस परिस्थिति में अल्पसंख्यकों को पूरा अवसर नहीं मिलता। ऐच्छिक विभाजन हो तो अल्पसंख्यकों को योग्य अवसर मिलता है। (२) आनुपातिक मत-दान (Proportional Representation) की एक और पद्धति है। इसमें संसद् का क्रम लगाया जाता है। मतदाता जिस उम्मीदवार को सबसे अधिक पसन्द करता है, उसे अपना पहला मत देता है। उसके बाद अपनी पसन्द के क्रम से दूसरा, तीसरा तथा अन्य जितनी जगहें होंगी उतने मत उस क्रम से देता चला जायगा। न्यूनतम मत कितने आते हैं यह गिना जाता है और वे जिसे मिलते हैं उसे चुन लिया जाता है। उसे अधिक मिले हुए मत पसन्द के क्रम से बचे हुए उम्मीदवारों में बाँट दिए जाते हैं। इस पद्धति से मतदाताओं की विचार-सरणी का योग्य प्रतिनिधित्व निर्वाचन के परिणाम पर प्रतिफलित होता है। पर यह पद्धति बहुत क्लिष्ट और समझने के लिए मुश्किल है। विधान-सभाओं की समितियों के निर्वाचन में इसको स्वीकृत किया गया है। किन्हीं विश्वविद्यालयों तथा संस्थाओं के चुनावों में इसे स्थान दिया गया है। पर साधारण तौर पर इस देश में अभी तक इसका प्रसार नहीं हुआ। ऐच्छिक विभाजक मत-दान कुछ अच्छा प्रतीत होता है। पद्धति कोई भी हो, पर चुनाव के सम्बन्ध में प्रत्येक संस्था के अपने नियमों का होना आवश्यक है। वार्षिक सभाओं में जो मारामारी, अव्यवस्था, गड़बड़ी इन निर्वाचनों के मामले में हुआ करती है, कम-से-कम उनसे तो इन नियमों के कारण बचा जा सकेगा।

नियमों में इन बातों का स्पष्ट उल्लेख रहना चाहिए:—कार्य कारिणी समिति के सभासदों की संख्या, उसकी कार्य-पद्धति, कार्यवाहक, उसके अधिकार—सामान्य परिस्थिति में एवं विशिष्ट परिस्थिति में। तथा यह भी स्पष्ट हो कि, अध्यक्ष के क्या अधिकार हैं, उसकी अनुपस्थिति में सभा-संचालन की व्यवस्था क्या होगी, यदि उपाध्यक्ष चुना जाता हो तो उनकी संख्या इत्यादि। संघ का एक कोषाध्यक्ष तथा एक लेखा-परीक्षक होना चाहिए। इन सब बातों के बारे में योग्य व्यवस्था संस्था के संविधान में हो सब मुख्य, मौलिक, एवं संघटनात्मक बातों का समावेश जिन नियमों में होता है, उसे संविधान कहना उचित है। कार्य-पद्धति तथा अन्य बातों से सम्बन्धित नियम उतने मौलिक नहीं होते। सभा तथा उसके संचालन से सम्बन्धित नियम प्रत्येक संस्था अथवा संघ में होने चाहिएँ! सभा-विषयक नियम ये होने चाहिएँ:—

वरण रहना वांछनीय है।

संघ पर प्रभुत्व संघ के सारे सभासदों का है। सभासदों से मिलकर जो संगठन बनता है वह उस संस्था की साधारण सभा (General Body) है। इस साधारण सभा को संघ के सारे अधिकार रहते हैं। संघ के सबसे आखिर के निर्णय यही साधारण सभा सारे सभासदों की बैठक बुलाकर उसमें किया करती है। सब सभासद् चूँकि हर रोज आकर संघ का काम नहीं देख सकते अतः प्रत्येक संस्था अथवा संघ की एक कार्यकारिणी समिति रहती है और ऐसी एक छोटी सी समिति प्रत्येक संस्था में होनी चाहिए। इसी प्रकार प्रत्येक संगठन का एक प्रमुख भी हो तथा साधारण सभा द्वारा उसका चुनाव किया जाय। कार्यकारिणी समिति का चुनाव भी साधारण सभा ही करे। किन्हीं संस्थाओं में पहले अध्यक्ष चुना जाता है और पीछे से वह कार्यकारिणी समिति की नियुक्ति करता है। उसमें उसकी नीति के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण होता है। लेकिन कार्यकारिणी समिति उसके साथ समान स्तर पर काम नहीं कर सकती, उतनी निर्भय नहीं हो सकती और प्रतिनिधित्व की दृष्टि से भी न्यूनता रह जाती है। यदि कार्यकारिणी का चुनाव साधारण सभा ने किया हो तो साधारण सभा के पक्ष का प्रतिबिंब कार्यकारिणी समिति पर पड़ता है। और वर्ष में एक या दो बार होने वाले वाद-विवाद हर रोज या हर सप्ताह होने लगते हैं। काम तो होता नहीं उल्टे ऐसा वातावरण निर्माण होता है कि कुछ भी होने न दिया जाय और कोई नवीन कार्य करने न दिया जाय। तथापि कार्यकारिणी का चुनाव करने की पद्धति अधिक अच्छी है।

कार्यकारिणी समिति अथवा अन्य किसी प्रकार का निर्वाचन करने की पद्धति संविधान में स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट रहनी चाहिए और चूँकि यह मौलिक स्वरूप का प्रश्न है अतः बार-बार उसमें परिवर्तन होना ठीक नहीं। जहाँ ज्यादा दिक्कत पेश नहीं आती। साधारण सभा की सभा में उपस्थित रहने वालों की संख्या जहाँ बहुत नहीं होती वहाँ भी दिक्कत नहीं होती। दिक्कत वहाँ पेश आती है जहाँ उपस्थित रहने वाले सभासद् भी ज्यादा हों और चुनाव के स्थान भी अधिक हों। सामान्य तौर से निर्वाचन गुप्त मत-दान-पद्धति द्वारा किया जाय। जहाँ स्थान अधिक हों वहाँ मत किस प्रकार दिये जायँ यह एक महत्त्व का प्रश्न हो जाता है। (१) जितने स्थान उतने मत और सब-के-सब एक उम्मीदवार के लिए इकट्ठा करके देना (Camulative Voting) एक प्रकार की पद्धति हुई। इसमें अल्पसंख्यकों को अवसर मिलता है और बहुत दफा अधिक प्रतिनिधित्व मिल जाता है। (२) जितनी जगहें उतने मत, मगर एक से अधिक

किसी भी उम्मीदवार के लिए नहीं दिये जा सकते, उन्हें बाँटकर देना होता है; इसे विभाजक मत-दान (Distributive Votes) कहा जाता है। किन्हीं स्थानों पर यह विभाजन आवश्यक हो जाय तो वहाँ सारे मत देने चाहिएँ। इस परिस्थिति में अल्पसंख्यकों को पूरा अवसर नहीं मिलता। ऐच्छिक विभाजन हो तो अल्पसंख्यकों को योग्य अवसर मिलता है। (३) आनुपातिक मत-दान (Proportional Representation) की एक और पद्धति है। इसमें संख्या का क्रम लगाया जाता है। मतदाता जिस उम्मीदवार को सबसे अधिक पसन्द करता है, उसे अपना पहला मत देता है। उसके बाद अपनी पसन्द के क्रम से दूसरा, तीसरा तथा अन्य जितनी जगहें होंगी उतने मत उस क्रम से देता चला जायगा। न्यूनतम मत कितने आते हैं यह गिना जाता है और वे जिसे मिलते हैं उसे चुन लिया जाता है। उसे अधिक मिले हुए मत पसन्द के क्रम से बचे हुए उम्मीदवारों में बाँट दिए जाते हैं। इस पद्धति से मतदाताओं की विचार-सरणी का योग्य प्रतिबिम्बित निर्वाचन के परिणाम पर प्रतिफलित होता है। पर यह पद्धति बहुत क्लिष्ट और समझने के लिए मुश्किल है। विधान-सभाओं की समितियों के निर्वाचन में इसको स्वीकृत किया गया है। किन्हीं विश्वविद्यालयों तथा संस्थाओं के चुनावों में इसे स्थान दिया गया है। पर साधारण तौर पर इस देश में अभी तक इसका प्रसार नहीं हुआ। ऐच्छिक विभाजक मत-दान कुछ अच्छा प्रतीत होता है। पद्धति कोई भी हो, पर चुनाव के सम्बन्ध में प्रत्येक संस्था के अपने नियमों का होना आवश्यक है। वार्षिक सभाओं में जो मारामारी, अव्यवस्था, गड़बड़ी इन निर्वाचनों के मामले में हुआ करती है, कम-से-कम उनसे तो इन नियमों के कारण बचा जा सकेगा।

नियमों में इन बातों का स्पष्ट उल्लेख रहना चाहिए :—कार्य कारिणी समिति के सभासदों की संख्या, उसकी कार्य-पद्धति, कार्यवाहक, उसके अधिकार—सामान्य परिस्थिति में एवं विशिष्ट परिस्थिति में। तथा यह भी स्पष्ट हो कि, अध्यक्ष के क्या अधिकार हैं, उसकी अनुपस्थिति में सभा-संचालन की व्यवस्था क्या होगी, यदि उपाध्यक्ष चुना जाना हो तो उनकी संख्या इत्यादि। संघ का एक कोषाध्यक्ष तथा एक लेखा-परीक्षक होना चाहिए। इन सब बातों के बारे में योग्य व्यवस्था संस्था के संविधान में हो सब मुख्य, मौलिक, एवं संघटनात्मक बातों का समावेश जिन नियमों में होता है, उसे संविधान कहना उचित है। कार्य-पद्धति तथा अन्य बातों से सम्बन्धित नियम उतने मौलिक नहीं होते। सभा तथा उसके संचालन से सम्बन्धित नियम प्रत्येक संस्था अथवा संघ में होने चाहिएँ। सभा-विषयक नियम ये होने चाहिएँ:—

साधारण सभा, असाधारण सभा, प्रार्थित सभा आदि के काम, उन्हें बुलाने के लिए निमंत्रण, नोटिस, प्रकाशन आदि के नियम, सभा में रखे जाने वाले विषय और उनसे सम्बन्धित नियम, सभासदों को किन बातों की जानकारी मिल सकती है इससे सम्बन्धित नियम, कार्यक्रम की रचना, कोरम संख्या आदि इसी प्रकार चर्चा-सम्बन्धी, स्थगन-सम्बन्धी प्रस्ताव, संशोधन आदि के उपस्थित करने अथवा वापिस लेने इत्यादि संचालन-विषयक नियम रहें। तात्पर्य यह कि उद्देश्य से लेकर सभा-संचालन तक सब कार्यों की व्यवस्था के लिए प्रत्येक संस्था का संविधान एवं नियम अवश्य हों। इनमें महत्त्वपूर्ण बातें कौन-कौन सी हैं, इसका संक्षेप में विचार हमने अब तक यहाँ किया है।

प्रस्तुत ग्रंथ का सम्बन्ध सभा शास्त्र से है। संघ और सभाओं के सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुए हमने संघ-तन्त्र के बारे में भी संक्षेप में आवश्यक वर्णन कर दिया है। सभा-शास्त्र की भाँति संघटन भी एक शास्त्र है। उसके भी कुछ सिद्धान्त हैं, जो अनुभव द्वारा निर्णीत हुए हैं। उन सब पर विचार करना यहाँ सम्भव नहीं; वैसा करना विषय की सीमा का अतिक्रमण होगा। संघ और सभा दोनों सुसंस्कृत समाज के मुख्य लक्षण हैं। किंबहुना समाज स्वयं एक अग्र संघ, श्रेष्ठ संघ है। उसकी सदस्यता जन्म से मृत्यु तक रहती है। मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहार केवल शक्ति के आधार पर न चलें प्रत्युत विवेक और विचार-विनिमय के आधार पर चलें, इसीलिए समाज का जन्म हुआ। एक-दूसरे की बात सुनना, सहिष्णुता प्रदर्शित करना, समझ-बूझ से काम लेना, समाज के मूल में यही प्रवृत्ति है। यही उसका स्थायी भाव है। यदि ऐसा न हो तो कोई भी व्यक्ति अपनी भुजाओं के बल पर किसी भी व्यक्ति से जो चाहे छीन ले और उसी के बल पर उस वस्तु को अपने पास बनाए रखे। यह जंगल का कानून है। इसके लागू हो जाने से 'समाज' नाम की संस्था नाम-शेष हो जायगी। समाज का अभिप्राय है सर्व सम्मत नियंत्रण तथा उन नियंत्रणों को निष्ठा पूर्वक मानने की प्रवृत्ति। समाज का यह नियंत्रण वस्तु-स्थिति में जितनी मान्यता प्राप्त करेगा उतना ही वह बलशाली होगा। समाज-नियंत्रण में प्रत्येक को अपना अनुभव सुनाने का अवसर मिलना चाहिए। अपनी राय जाहिर करने का योग्य अवसर मिले। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक निर्णय विचार विनिमय के द्वारा ही होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को यह प्रतीत होना चाहिए कि वह निर्णय की प्रक्रिया में पूरा हाथ बटा रहा है। जहाँ यह सम्भव होता है वहीं वास्तविक प्रजातंत्र निवास करता है। इसी दृष्टि से समाज के भिन्न संघों का विचार किया जाय। संघ चाहे स्वतः सिद्ध हो

हो, चाहे वैधानिक, जो भी निर्णय किया जाय वह प्रत्येक सभासद् को स्वीकृत होना चाहिए। अतः सभासदों को विचार-विनिमय का पूरा-पूरा अवसर मिले। इस दृष्टि से भाषण-स्वातंत्र्य एवं संघ-स्वातंत्र्य की मौलिक सत्ता है। नागरिकता का वे प्राण हैं। उनके बगैर नागरिकता मृतवत् है। संघ-विषयक व्यवहार आधुनिक काल में राज्य-व्यवस्था तथा अन्य विभागों में बढ़ रहा है। उसको उचित रीति से चलाने के लिए संघ-तंत्र और सभा-तंत्र का ज्ञान आवश्यक है।

विचार-विनिमय में व्यवस्था रहे ऐसा प्रत्येक को प्रतीत होता है। पर प्रत्येक व्यक्ति नियमों के अनुसार आचरण करता हो, सो बात नहीं। कुछ लोग अज्ञान के कारण और कुछ लोग उजड्डता के कारण विपरीत आचरण करते हैं। विचार-विनिमय अथवा सभा, निर्णय लेने के माध्यम हैं, निर्णय टालने के नहीं। वाद बढ़ाने का कार्य इस माध्यम का नहीं है, उसका उद्देश्य तो वाद-विवाद में से तत्त्व बोध प्राप्त करके सत्य-निर्णय पर पहुँचना है। शत्रुता, द्वेष, मन-मुटाव बढ़ाने के लिए उसका जन्म नहीं होता और न ही उसे जन्म देने वालों का वैसा ख़याल होता है। सब यही उम्मीद रखते हैं कि सहयोग और समन्वय के द्वारा सब एक मत होंगे तथा उसमें से सबके लिए हितकर निर्णयों का निर्माण होगा। निर्णय का आधार बहुमत है पर अल्पमत वालों पर जुल्म ढाने का साधन वह बन जाय, इस रीति से सभा-तंत्र का उपयोग करना अनुचित है। बहुमत द्वारा निर्णय होने पर भी वह सभा का सामुदायिक निर्णय है ऐसी भावना एवं नैतिक उत्तरदायित्व प्रत्येक सभासद् में उत्पन्न हो सके, इस रीति से सभा-कार्य होना चाहिए; इतने प्रमाण में बहुमत का निर्णय किया जाय। सहिष्णुता, सौजन्य, परमत-विषयक आदर, यथा सम्भव समन्वय द्वारा निर्णय पर पहुँचने की इच्छा इत्यादिक भाव न हों तो सभा-तंत्र एक जुल्म ढाने का साधन बन जायगा। उस अवस्था में उसके प्रतिकार के लिए रुकावटें पैदा करना, देरी लगाना, आदि बातें अपरिहार्य हो जाती हैं। स्वयं निर्माण किये हुए संघ में सभासदों को उपरिलिखित बातें करने के लिए बाधित होना पड़े यह संघ का दुर्भाग्य है।

संस्था में सब लोग भले ही समान हों तो भी अधिकार-प्राप्ति के कारण उनमें भी हित-सम्बन्ध निर्माण होते हैं। अधिकार की ओर सभी का आकर्षण रहता है और आकर्षण उसका धर्म है। पर उसके साथ आसक्ति भी उसका एक लक्षण है। जिसको वह प्राप्त हो जाता है वह उससे आसक्ति स्थापित करने का प्रयत्न करता है और उस दृष्टि से संघ-तंत्र और सभा-तंत्र को काम में लाया करता है। एक खास समय के बाद पुनर्निर्वाचन हो तो जो लोग

अधिकार से वंचित रहते हैं उन्हें अधिकार प्राप्त करने का अवसर तो प्राप्त होता है। इस दृष्टि से एक निश्चित समय के बाद कार्य-समिति के पुनर्निर्वाचन की व्यवस्था प्रत्येक संस्था में रहनी चाहिए। वैधानिक संस्थाओं में भी यह व्यवस्था रहनी चाहिए और वह सामान्यतया रहती भी है। जिन विधान-सभाओं में बहुमत होने पर भी अधिकार की प्राप्ति नहीं, वहाँ सभा-तंत्र का उपयोग केवल रुकावटें पैदा करने में किया जाय यह अपरिहार्य है। अधिकार बहुमत को स्वत प्राप्त है, उससे इन्कार करना सभा अथवा विचार-विनिमय की विडम्बना-मात्र है। वहाँ सभा का शस्त्र रूप में प्रयोग किया जाना वांछनीय और आवश्यक है। उस परिस्थिति में लिये गए निर्णयों की नैतिक प्रतिष्ठा नहीं होती, क्योंकि वे बहुमत के विरुद्ध होते हैं। बहुमत की परवाह न करते हुए उन्हें अमल में लाया जाता है। सभा के निर्णय को सभासद् लोग मानें यह नैतिक भावना यदि उनमें उत्पन्न करनी है तो उन्हें इतना तो अवश्य प्रतीत होना चाहिए कि वह उनका अपना है, उनके अपने मत के अनुसार है। वाद-विवाद में भाग लेने के बाद यदि कोई निर्णय बहुमत से स्वीकृत हो जाय तो वह खलता नहीं, पर केवल वाद-विवाद हो और निर्णय बहुमत के विरुद्ध अमल में लाया जाय, तो यह बात सभा के तत्त्व और सभा की कल्पना के लिए असंगत है। सभा विचार-विनिमय के पश्चात् बहुमत द्वारा होने वाले निर्णय को अन्तिम निर्णय मानने के सिद्धान्त का नाम है। इस सिद्धान्त को ध्यान में रखकर यह ग्रंथ लिखा गया है और जहाँ यह सिद्धान्त माना जाता है, वहीं सभा के नियमों और सभा के संचालन को वास्तविक सम्मान का स्थान प्राप्त होता है, वहीं सभासदों पर निर्णय को स्वीकार करने की नैतिक जिम्मेदारी है।

५

बम्बई-नगरपालिका के महत्त्वपूर्ण नियम

काम-काज के प्रत्येक वर्ष की पहली सभा में नगरपालिका अपने सभासदों में से एक को अगले वर्ष की पहली सभा तक के लिए अध्यक्ष (Mayer) चुनेगी। इस बीच किन्हीं कारणों से अध्यक्ष का स्थान रिक्त हो जाय तो अवशिष्ट अवधि के लिए नगरपालिका यथाशीघ्र सभासदों में से एक को चुन लेगी (धारा ३७)। धारा ३६ के अनुसार सभा-विषयक और संचालन-विषयक नियम बनाने का नगरपालिका को अधिकार है। विद्यमान नियमों में से महत्त्व के नियम नीचे दिये जा रहे हैं—

(१) बम्बई १८८८ के कानून के अनुसार बम्बई-नगरपालिका की सभाओं का काम होना चाहिए।

(२) प्रतिमास एक साधारण सभा होगी और मार्च मास की साधारण सभा उस महीने की २० तारीख से पहले हो जाय। आम चुनाव के अनन्तर अप्रैल महीने की पहली बैठक उस महीने की किसी सुविधाजनक तारीख को होगी; सभा का समय, स्थान, कमिश्नर जिस दिन निश्चित करे, उस दिन यदि सभा न हो, तो अगली सभा की तारीख कमिश्नर निश्चित करेगा।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक सभा का दिन, समय और स्थान मेयर निश्चित करेगा, उसकी मृत्यु हो जाय, वह त्याग-पत्र दे दे या किसी अन्य कारण से उसकी जगह खाली हो जाय अथवा अधिकार-हीन हो जाय तो उपर्युक्त बातें स्थायी समिति का सभापति निश्चित करे।

(३) मेयर अथवा उपर्युक्त परिस्थिति में सभापति, उचित प्रतीत होने पर विशेष सभा बुलायगा। यदि सोलह सभासद् अथवा स्थायी समिति के चार सदस्य हस्ताक्षर सहित लिखित माँग करें तो उस हालत में सभा अवश्य बुलानी होगी।

(४) प्रत्येक सभा प्रकट रूप से काम करेगी और जनता उसमें उपस्थित रह सकेगी। सभा के सामने विद्यमान किसी विषय पर चर्चा अथवा जाँच प्रकट रूप से न हो, इस आशय का प्रस्ताव अध्यक्ष स्वयं पेश करे या अन्य कोई सभासद्

पेश करे। और उपस्थित सभासदों के बहुमत द्वारा वह स्वीकृत हो जाय तो सभा का काम प्रकट रूप से नहीं होगा। अध्यक्ष को इस बात का अधिकार होगा कि सभा की कार्रवाई में विघ्न पैदा करने वाले किसी भी व्यक्ति को सभा से बाहर कर दे।

(५) स्थगित सभा को छोड़कर अन्य सभाओं के लिए सात दिनों का नोटिस देना उचित है। जिस सभा को बुलाने की माँग स्थायी समिति के कम-से-कम चार सभासदों ने की हो, उसका नोटिस कम-से-कम तीन दिन पूर्व दिया जाय। इस प्रार्थित सभा में बजट पर विचार नहीं किया जा सकेगा। स्थगित सभा का नोटिस इस बात को ध्यान रखकर कि, वह सभा कितने दिनों के लिए स्थगित हुई है, सुविधाजनक रीति से दी जाय।

सभा के नोटिस में सभा का समय, स्थल एवं कार्य-क्रम का उल्लेख हो। नोटिस स्थानीय समाचार-पत्रों में तथा (स्थगित एवं प्रार्थित सभाओं को छोड़) 'बम्बई गजट' में खुले तौर पर प्रकाशित किया जाना चाहिए।

(६) सभा चालू हो; उसमें यदि अध्यक्ष की जानकारी में यह लाया जाय कि उपस्थिति अध्यक्ष को मिलकर पच्चीस से भी कम है तो अध्यक्ष को सभा स्थगित करनी होगी। स्थगित करते समय यह भी निश्चित करके घोषित करना होगा कि सभा फिर किस दिन, कब और कहाँ होगी। यह समय तथा स्थान उसकी सुविधा के अनुकूल हो। जो काम होने से रह गया है वह स्थगित सभा

३. प्रश्नोत्तर।
४. अर्जी।
५. स्थायी कमेटी तथा विशेष कमेटियों के प्रस्ताव।
६. स्कूल-कमेटी की ओर से महत्त्वपूर्ण पत्र-व्यवहार।
७. कमिश्नर द्वारा रखे हुए पत्र और काम काज।
८. सरकार अथवा अन्यों की ओर से आए हुए पत्र।
९. कमेटियों की रिपोर्ट।
१०. प्रस्तावों के नोटिस।

(१०) सभा के कार्य-क्रम में सम्पूर्णतया अविद्यमान कोई बात अथवा अन्य कुछ विषय सभासद् को सभा के सामने लाने हों तो सभा के दिन से कम-से-कम तीन दिन पूर्व नगरपालिका के सेक्रेटरी को इसकी सूचना दे देनी चाहिए। ऐसा नोटिस आया हो तो सेक्रेटरी को चाहिए कि वह उसे किसी-न-किसी स्थानीय समाचार-पत्र में सभा वाले दिन से एक दिन पहले तक प्रकाशित कर दे।

(११) प्रस्ताव में कोई भाग अप्रतिष्ठाकारक हो अथवा आक्षेपजनक हो तो मेयर उसे निकाल दे। उचित प्रतीत होने पर वह सारा प्रस्ताव ही रद कर सकता है। यदि प्रत्यक्ष सभा के सामने ही कोई आक्षेपजनक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया हो तो उपस्थित सभासदों की सम्मति से अध्यक्ष कार्य-क्रम में से उक्त भाग को निकाल सकता है।

(१२) शीघ्र विचारणीय प्रश्नों पर विचार करने के लिए बुलाई गई प्रार्थित सभा को छोड़कर अथवा बजट पर जिस समय विचार हो रहा हो, उस समय को छोड़कर नोटिस द्वारा प्रकाशित कार्य-क्रम और गत विषयों के अतिरिक्त अन्य कोई भी विषय सभा के सामने नहीं लाया जा सकता। इस प्रकाशित नोटिस में कमिश्नर ने अथवा स्थायी समिति ने समाविष्ट किया हो तो वह विषय सभा के सामने विचारार्थ लाया जायगा। अन्य अवस्थाओं में ऐसा कोई भी विषय सभा के सामने चर्चा के लिए नहीं लाया जा सकेगा जिसका न तो नोटिस में उल्लेख है और न जो नियम संख्या १० के अनुसार प्रकाशित किया गया है। ऐसे विषय के सम्बन्ध में प्रस्ताव भी नहीं पेश किया जा सकेगा। कमिश्नर अथवा स्थायी समिति द्वारा आवश्यक मानकर लाए गए विषय का जो पृष्टपोषण नहीं करता, ऐसा कोई भी प्रस्ताव पेश नहीं किया जा सकेगा। यदि उपस्थित सभासदों में से तीन चौथाई सभासदों ने, जिनकी संख्या १५ से न्यून न हो, सम्मति प्रदान की हो तो प्रस्तुत आवश्यक विषय सभा के सामने पेश किया जायगा।

(१३) आवश्यक विषय पर विचार करने के लिए बुलाई गई प्रार्थित सभा

पेश करे। और उपस्थित सभासदों के बहुमत द्वारा वह स्वीकृत हो जाय तो सभा का काम प्रकट रूप से नहीं होगा। अध्यक्ष को इस बात का अधिकार होगा कि सभा की कार्रवाई में विघ्न पैदा करने वाले किसी भी व्यक्ति को सभा से बाहर कर दे।

(५) स्थगित सभा को छोड़कर अन्य सभाओं के लिए सात दिनों का नोटिस देना उचित है। जिस सभा को बुलाने की माँग स्थायी समिति के कम-से-कम चार सभासदों ने की हो, उसका नोटिस कम-से-कम तीन दिन पूर्व दिया जाय। इस प्रार्थित सभा में बजट पर विचार नहीं किया जा सकेगा। स्थगित सभा का नोटिस इस बात को ध्यान रखकर कि, वह सभा कितने दिनों के लिए स्थगित हुई है, सुविधाजनक रीति से दी जाय।

सभा के नोटिस में सभा का समय, स्थल एवं कार्य-क्रम का उल्लेख हो। नोटिस स्थानीय समाचार-पत्रों में तथा (स्थगित एवं प्रार्थित सभाओं को छोड़) 'बम्बई गजट' में खुले तौर पर प्रकाशित किया जाना चाहिए।

(६) सभा चालू हो; उसमें यदि अध्यक्ष की जानकारी में यह लाया जाय कि उपस्थिति अध्यक्ष को मिलकर पच्चीस से भी कम है तो अध्यक्ष को सभा स्थगित करनी होगी। स्थगित करते समय यह भी निश्चित करके घोषित करना होगा कि सभा फिर किस दिन, कब और कहाँ होगी। यह समय तथा स्थान उसकी सुविधा के अनुकूल हो। जो काम होने से रह गया है वह स्थगित सभा वाले दिन किया जायगा अथवा पुनः सभा स्थगित हो जाय, तो जिस दिन वह फिर होगी उस दिन किया जायगा। उस अवस्था में चाहे पच्चीस का कोरम उपस्थित हो या न हो।

(७) प्रत्येक सभा मेयर की अध्यक्षता में होगी। उसकी जगह खाली हो अथवा सभा के समय वह अनुपस्थित हो तो उपस्थित सभासद् जिसे चुनें उसकी अध्यक्षता में होगी।

(८) नगरपालिका ने किसी सभासद् को किसी कमेटी का सभापति चुना हो और मेयर उस कमेटी का सदस्य हो तो जिस समय वह उपस्थित रहेगा उस समय कमेटी का काम उसकी अध्यक्षता में होगा; अन्यथा प्रत्येक कमेटी को अपना सभापति चुनना चाहिए।

(९) नगरपालिका का कमिश्नर निम्न लिखित क्रम से कार्य-क्रम तैयार करे—

१. पिछली साधारण सभा की कार्रवाई की (अथवा बीच में कोई विशेष सभा हुई हो तो उस सभा की भी) स्वीकृति।

२. नगरपालिका द्वारा किए गये खास चुनाव।

३. प्रश्नोत्तर।

४. अर्जी।

५. स्थायी कमेटी तथा विशेष कमेटियों के प्रस्ताव।

६. स्कूल-कमेटी की ओर से महत्त्वपूर्ण पत्र-व्यवहार।

७. कमिश्नर द्वारा रखे हुए पत्र और काम-काज।

८. सरकार अथवा अन्यों की ओर से आए हुए पत्र।

९. कमेटियों की रिपोर्ट।

१०. प्रस्तावों के नोटिस।

(१०) सभा के कार्य-क्रम में सम्पूर्णतया अविद्यमान कोई बात अथवा अन्य कुछ विषय सभासद् को सभा के सामने लाने हों तो सभा के दिन से कम-से-कम तीन दिन पूर्व नगरपालिका के सेक्रेटरी को इसकी सूचना दे देनी चाहिए। ऐसा नोटिस आया हो तो सेक्रेटरी को चाहिए कि वह उसे किसी-न-किसी स्थानीय समाचार-पत्र में सभा वाले दिन से एक दिन पहले तक प्रकाशित कर दे।

(११) प्रस्ताव में कोई भाग अप्रतिष्ठाकारक हो अथवा आक्षेपजनक हो तो मेयर उसे निकाल दे। उचित प्रतीत होने पर वह सारा प्रस्ताव ही रद कर सकता है। यदि प्रत्यक्ष सभा के सामने ही कोई आक्षेपजनक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया हो तो उपस्थित सभासदों की सम्मति से अध्यक्ष कार्य-क्रम में से उक्त भाग को निकाल सकता है।

(१२) शीघ्र विचारणीय प्रश्नों पर विचार करने के लिए बुलाई गई प्रार्थित सभा को छोड़कर अथवा बजट पर जिस समय विचार हो रहा हो, उस समय को छोड़कर नोटिस द्वारा प्रकाशित कार्य-क्रम और गत विषयों के अतिरिक्त अन्य कोई भी विषय सभा के सामने नहीं लाया जा सकता। इस प्रकाशित नोटिस में कमिश्नर ने अथवा स्थायी समिति ने समाविष्ट किया हो तो वह विषय सभा के सामने विचारार्थ लाया जायगा। अन्य अवस्थाओं में ऐसा कोई भी विषय सभा के सामने चर्चा के लिए नहीं लाया जा सकेगा जिसका न तो नोटिस में उल्लेख है और न जो नियम संख्या १० के अनुसार प्रकाशित किया गया है। ऐसे विषय के सम्बन्ध में प्रस्ताव भी नहीं पेश किया जा सकेगा। कमिश्नर अथवा स्थायी समिति द्वारा आवश्यक मानकर लाए गए विषय का जो पृष्ठपोषण नहीं करता, ऐसा कोई भी प्रस्ताव पेश नहीं किया जा सकेगा। यदि उपस्थित सभासदों में से तीन चौथाई सभासदों ने, जिनकी संख्या १५ से न्यून न हो, सम्मति प्रदान की हो तो प्रस्तुत आवश्यक विषय सभा के सामने पेश किया जायगा।

(१३) आवश्यक विषय पर विचार करने के लिए बुलाई गई प्रार्थित सभा

में अथवा बजट पर चर्चा करने के लिए बुलाई गई सभा में, ऐसा कोई भी विषय न तो लाया जा सकेगा और न उसके सम्बन्ध में कोई प्रस्ताव पेश किया जा सकेगा, जिसका सम्बन्ध न आवश्यक विषय से हो और न बजट से। बजट पर विचार करने के लिए बुलाई गई सभा में, स्थायी समिति द्वारा सुझाई गई कर-व्यवस्था में अथवा उसके द्वारा निर्धारित व्यय की योजना में परिवर्तन करने वाला कोई भी प्रस्ताव, यदि वह नियम संख्या ५ के अनुसार प्रकाशित किये गए नोटिस में अथवा नियम संख्या १० के अनुसार प्रकाशित होने वाले अनुपूरक विज्ञापन में समाविष्ट न हो तो, पेश नहीं किया जा सकता। बजट पर की जाने वाली चर्चा स्थगित सभा में हो रही हो तो यह प्रस्ताव, यदि नियम संख्या १४ में उल्लिखित शर्तों के अनुरूप न हो तो, उस सभा में पेश नहीं किया जा सकता।

(१४) उपस्थित सभासदों के बहुमत से समय-समय पर सभा स्थगित की जा सकेगी। परन्तु स्थगित सभा में उन्हीं विषयों पर चर्चा होगी जो कार्यक्रम में थे और जिन पर विचार करके किसी निर्णय पर नहीं पहुँचा गया। अन्य विषय अथवा प्रस्ताव सभा के सामने नहीं लाये जा सकेंगे। यदि स्थगित सभा बजट पर विचार करने वाली हो तो बजट में परिवर्तन सुझाने वाला प्रस्ताव, पिछली सभा का अवशिष्ट विषय न होने पर भी, उस सभा के सामने लाया जा सकेगा। किन्तु—

१. उस प्रस्ताव का नोटिस पिछली सभा में दिया हुआ हो।

२. स्थगितीकरण कम-से-कम तीन दिनों का होना चाहिए।

३. कम-से-कम सभा के एक दिन पहले इस प्रस्ताव का विज्ञापन किसी न किसी स्थानीय समाचार-पत्र में सेक्रेटरी को प्रकाशित करवाना चाहिए। (प्रस्ताव के आने पर सेक्रेटरी को [illegible] देना ही पड़ेगा)।

(१४-अ) मेयर निम्न परिस्थितियों में सभा को स्थगित कर सकेगा —

१. वर्तमान अथवा भूतपूर्व सभासद की मृत्यु हो जाने पर।

२. भूतपूर्व मेयर की मृत्यु हो जाने पर।

३. स्थायी समिति, [illegible] समिति अथवा [illegible] समिति के भूतपूर्व अध्यक्ष की मृत्यु हो जाने पर।

४. राज-परिवार के [illegible] अथवा राज-प्रतिनिधि की मृत्यु पर।

इनके सिवा [illegible] की मृत्यु हो जाने पर स्थगितीकरण का प्रस्ताव नहीं [illegible]। [illegible] के लिए सभा का काम बन्द करने का प्रस्ताव [illegible]। [illegible] सभा [illegible] मिनट के लिए [illegible]

कर दी जायगी और उसके बाद सभा का काम शुरू हो जायगा।

(१५) सभा का काम अंग्रेजी[1] में होगा। जो सभासद् अंग्रेजी में नहीं बोल सकता उसके लिए यह स्वतन्त्रता है कि वह गुजराती, मराठी, हिंदी अथवा उर्दू में से किसी भाषा में बोले।

(१६) उपस्थित सभासदों के नाम प्रस्तुत करके सभा की कार्रवाई सभा की समाप्ति के पश्चात् उचित रीति से तैयार की जायगी। सेक्रेटरी उसे रजिस्टर में लिख लेगा। उस पर अगली सभा में अध्यक्ष हस्ताक्षर करेगा। उस रजिस्टर को नगरपालिका के सभासद् कार्यालय के समय देख सकेंगे। सभासदों के अतिरिक्त यदि अन्य कोई देखना चाहेगा तो फीस देनी पड़ेगी।

(१७) पिछली सभा की कार्रवाई प ने के बाद स्वीकृत समझी जायगी। उपस्थित सभासदों की बहुसंख्या की प्रार्थना पर उसे सबके सामने पढ़कर सुनाया जायगा।

(१८) उपस्थित सभासद् यदि कार्रवाई की किन्हीं त्रुटियों को प्रकाश में लायँ तो सभा की सम्मति से अध्यक्ष जो संशोधन सुझायगा वे कार्रवाई में ठीक कर दी जायँगी।

(१९) स्थायी समिति के प्रस्ताव उसके सभापति को प्रस्तुत करने चाहिएँ। वह न पेश करे या वह अनुपस्थित हो तो स्थायी-समिति का कोई सदस्य प्रस्तुत करे, वह भी न करे तो कोई भी सभासद् प्रस्तुत कर सकता है।

(२०) पाठशाला की समिति के पत्रों से सम्बन्धित सारे प्रस्ताव भी उसके सभापति को प्रस्तुत करने चाहिए। वह न करे तो उस समिति का कोई और सदस्य प्रस्तुत करे। वह भी न करे तो कोई भी सभासद् प्रस्तुत कर सकता है।

(२१) जिस प्रस्ताव के लिए नोटिस दिया गया है, उसे नोटिस देने वाला प्रस्तुत करे या उसका अनुमोदक। नोटिस देने वाले ने, जिसे लिखित रूप में पेश करने का अधिकार दिया हो, वह भी प्रस्तुत कर सकता है। यदि वह न करे तो वह प्रस्ताव समाप्त समझा जायगा। (लिखित अधिकार-पत्र, प्रस्ताव पेश करने से सम्बन्धित हो तो अध्यक्ष के पास देना चाहिए)

(२२) उपस्थित सभासद् बहुमत द्वारा कार्यक्रम के किसी विषय को पहले लेने की प्रार्थना करें तो उसे पहले स्थान मिलेगा तब उसी पर विचार भी पहले होगा। इसके लिए प्रार्थनात्मक प्रस्ताव सभा के सामने तभी लाया जा सकेगा जब कि उसके सम्बन्ध में एक दिन पहले सेक्रेटरी को नोटिस दे दिया गया हो,

---

[1]यह नियमावली अंग्रेजी राज्य के समय बनाई गई थी।

अन्यथा नहीं। इस प्रकार का नोटिस आया हो तो सेक्रेटरी को चाहिए कि वह सब सभासदों को इसकी सूचना दे।

कार्यक्रम के किसी भी विषय पर पहले विचार करने की माँग करने वाले प्रार्थना-पत्र में यह स्पष्ट कर दिया जाय कि किस दिन यह माँग की जायगी। उस दिन यदि माँग न की गई, और उस विषय को प्राथमिकता दिलाने की इच्छा हो तो फिर दूसरा प्रार्थना-पत्र भेजना चाहिए। उसमें भी दिन का निर्देश किया जाय।

(२३) यदि दो अथवा अधिक बातें एक ही विषय से सम्बन्धित हों और कार्यक्रम में उनका अलग-अलग उल्लेख किया हुआ हो, तो उपस्थित सभासदों की बहुसंख्या की सम्मति से उन सबको एकत्र करके, एक ही समय अध्यक्ष विचारार्थ सभा के सामने रख सकता है। इसी प्रकार, एक ही दिन दो सभाएँ बुलाई गई हों और दोनों के एक-जैसे ही विषय हों तो उपस्थित सभासदों के बहुमत से अध्यक्ष यह निश्चित कर सकता है कि उन सब विषयों को एकत्र करके एक ही सभा में उन पर विचार किया जाय।

(२४) अध्यक्ष को यदि ऐसा अनुभव हो कि कोई प्रस्ताव या संशोधन आपत्तिजनक है और उसके अपने मूल रूप में पेश किये जाने से सभा में गड़बड़ी मच जायगी तथा असुविधा पैदा हो जायगी, तो उसे वह दो या अधिक विभागों में विभक्त करके अंशतः सभा में रख सकता है।

इस प्रकार प्रस्ताव अथवा संशोधन का अध्यक्ष विभाजन किया हो तो पहले प्रस्ताव अथवा संशोधन को छोड़, सभा के सामने आने वाले उसके अन्य किसी भी भाग को पृथक् रूप से पेश करने या उसका अनुमोदन करने की तब तक ज़रूरत नहीं, जब तक कि अध्यक्ष न कहे। प्रत्येक भाग पर स्वतंत्र रूप से अध्यक्ष को मत लेने चाहिए।

(२५) उपस्थित प्रश्न पर मत देने वाले सभासदों के बहुमत के बिना निर्णय [illegible] नहीं रखा जा सकता।

(२६) सभासद, भाषण करते समय सभा अध्यक्ष को सम्बोधित करके करे। [illegible] सभासद [illegible] बैठ जाना चाहिए।

(२७) [illegible] अधिक बोलने देना [illegible] चर्चा में भाग लेने [illegible] इच्छा पर [illegible]।

(२८) [illegible]

सकता है। अनुमोदन मिलने पर यदि अध्यक्ष समझे कि इस प्रस्ताव द्वारा सभा के नियमों का दुरुपयोग नहीं होता अथवा अल्पसंख्यकों के साथ अन्याय नहीं होता, तो इस प्रस्ताव पर तत्काल मत ले लिए जायँगे। प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने पर प्रस्तावक को उत्तर देने का अधिकार है। यह उत्तर वाला भाषण दस मिनट में खत्म हो जाय। उत्तर के बाद जिस प्रस्ताव या संशोधन पर बहस हो रही थी उस पर तत्काल मत ले लिया जायगा।

(२९) चर्चा (बहस) में सभासद् एक ही बार बोल सकता है। प्रस्तावक अथवा अनुमोदक को उत्तर देने का अधिकार है। जो सभासद् बोल चुका है, उसके भाषण का स्पष्टीकरण करने के लिए यदि कोई दूसरा सभासद् बोल रहा हो और वह अवसर प्रदान करे तो उक्त सभासद् तत्काल खड़ा होकर स्पष्टीकरण कर सकता है; पर बोलने वाले ने अवसर न दिया तो उसका भाषण समाप्त होने पर वह स्पष्टीकरण कर सकता है।

(३०) संचालन-विषयक अथवा अन्य प्रकार का कोई आक्षेप सभा में उठे तो अध्यक्ष बिना किसी वाद-विवाद के तत्काल उसका निर्णय कर दे। अध्यक्ष के निर्णय के विरुद्ध नगरपालिका की अगली सभा में विचार करने के लिए माँग की जा सकती है। उसके लिए इस आशय का प्रस्ताव पेश करना चाहिए कि 'जो निर्णय दिया गया है वह ग़लत है' तथा नियम संख्या १० के अनुसार इस प्रस्ताव के बारे में नोटिस दिया जाय।

(३१) किसी सभासद् के बारे में कोई आक्षेप उठाया गया हो तो अध्यक्ष उक्त आक्षेप का निर्णय होने तक सभासद् को अपना भाषण बंद करने के लिए कहे। उसके कहते ही वक्ता नीचे बैठ जाय। अध्यक्ष चाहे तो उक्त सभासद् को आक्षेप के सम्बन्ध में बोलने की आज्ञा दे सकता है।

(३२) १. अध्यक्ष को सभा में अनुशासन और व्यवस्था रखने का अधिकार है। अनुशासन के विरुद्ध व्यवहार करने वाले सभासद् को वह बाहर जाने की आज्ञा देगा। अध्यक्ष के इस प्रकार आज्ञा देने पर सभासद् सभा से बाहर चला जाय तथा उस दिन की सभा में भाग न ले। एक पक्ष में यदि किसी सभासद् को दो बार बाहर जाने की आज्ञा हुई हो तो अध्यक्ष उस सभासद् को एक पक्ष से थोड़े समय के लिए सभा में भाग न लेने की आज्ञा दे सकता है।

उक्त सभासद् यदि सन्तोषजनक रीति से क्षमा-याचना करे तो अध्यक्ष उसकी अनुपस्थिति के दंड की अवशिष्ट अवधि क्षमा कर सकता है। इस दण्ड-विधि में सभासद् नगरपालिका की सभा को छोड़कर अन्य किसी भी कमेटी में काम कर सकता है।

२. सभा में दंगा हो जाय तो तीन दिन तक के लिए अध्यक्ष सभा को स्थगित कर सकता है।

(३३) पेश किया जाने वाला प्रस्ताव अंग्रेजी भाषा में सुवाच्य अक्षरों में लिखा अथवा छपा होना चाहिए। प्रस्तावक उसे पढ़े और आवश्यक प्रतीत हो तो उस पर भाषण दे। उसके बाद उसे अध्यक्ष को देना चाहिए। उक्त प्रस्ताव का अनुमोदन होने पर यह समझा जायगा कि वह चर्चा के लिए सभा के सामने आ गया है। अनुमोदक को यदि कुछ बोलना हो तो वह उसी समय बोल सकता है। उसकी इच्छा हो तो वह अपने भाषण को अन्य सभा के लिए रक्षित रख सकता है।

(३४) प्रस्ताव के पेश और अनुमोदित होने पर कोई भी सभासद् उस पर संशोधन पेश कर सकता है। संशोधन के लिए अनुमोदन आवश्यक है। उसके अभाव में वह व्यर्थ हो जायगा। एक ही समय अनेक संशोधन सभा के सामने आ सकते हैं।

(३५) प्रस्ताव अथवा संशोधन को सभा-गृह की अनुमति के बिना वापिस नहीं लिया जा सकता। यह अनुमति निर्विरोध होनी चाहिए। (यदि एक भी व्यक्ति उसके विरोध में आवाज़ उठाए तो अनुमति नहीं मिलेगी।)

(३६) प्रस्ताव पर बोलने के बाद संशोधन पर बोलने का भी सभासद् को अधिकार है। परन्तु वह भाषण संशोधन के विषय तक ही सीमित रहे।

(३७) संशोधन जिस क्रम से पेश किये गए हों उसके उलटे क्रम से मूल प्रश्न के विरुद्ध उन पर मत लिया जायगा। अर्थात् मूल प्रस्ताव पर तथा आखीर के संशोधन पर एक दूसरे के विरुद्ध मत लिये जायँ। इनमें जो स्वीकृत हो जायगा उसके विरुद्ध पहले वाले संशोधन पर मत लिये जायँगे। यह मत ग्रहण का क्रम रहेगा।

(३८) चर्चा के स्थगित अथवा सभा के स्थगित करने-सम्बन्धी प्रस्ताव के आने पर, उसके सम्बन्ध में पक्ष तथा विपक्ष के कारणों पर प्रकाश डालने के लिए सभासदों को जितना समय देना अध्यक्ष उचित समझे उतना समय उन्हें दे। उसके पश्चात् तत्काल उस पर मत ले।

(३८-अ) नियम संख्या ३८ के नीचे आने वाला प्रस्ताव गौण स्वरूप का हो। उसके ऊपर समय की सीमा और संविधान की सीमा कमिश्नर अथवा कमेटी की रिपोर्ट आने तक निश्चित की जा सकती है। इससे भिन्न अन्य सीमाओं का समावेश किया गया हो तो नियम संख्या ३२ के अनुसार वह प्रस्ताव न होकर नियम संख्या ३४ के अनुसार उसे विवादास्पद प्रश्न पर

संशोधन समझा जायगा।

(३९) जब तक सभासद् का भाषण जारी रहे, विवाद का अथवा सभा के स्थगित करने-सम्बन्धी प्रस्ताव नहीं लाया जा सकता।

(४०) सभा में एक बार विवाद-स्थगित अथवा सभा-स्थगन-सम्बन्धी प्रस्ताव लाने के बाद फिर कितनी देर बाद वह प्रस्ताव लाया जा सकता है, इसका निश्चय अध्यक्ष अपने विवेक द्वारा करे। और जब तक उतना काल व्यतीत न हो जाय तब तक इस प्रकार का प्रस्ताव नहीं लाया जा सकता।

(४१) सभासद् का भाषण चालू रहते समय भी यदि अध्यक्ष को उचित प्रतीत हो तो बहुमत से वह सभा को स्थगित कर सकता है।

(४१-अ) बोलने वाले सभासद् का भाषण समाप्त हो जाने पर कोई भी सभासद् यह प्रस्ताव पेश कर सकता है कि अगले विषय पर विचार किया जाय। इस प्रस्ताव का अनुमोदन हो जाने पर उस पर चर्चा न होने देकर मत-ग्रहण किया जाना चाहिए और उसके स्वीकृत हो जाने पर चालू विषय (चर्चाधीन विषय—(Question under discussion) निकाल दिया गया ऐसा माना जायगा।

(४२) स्थायी कमेटी अथवा कमिश्नर द्वारा पेश किये गए प्राथमिकता पाने वाले विषय-सम्बन्धी प्रस्ताव के प्रस्तुत करने के प्रश्न के अतिरिक्त अन्य सब प्रश्नों का निर्णय उपस्थित मतदाता सभासदों के बहुमत से किया जायगा। समान मत पड़ने पर अध्यक्ष को दूसरा अथवा अतिरिक्त मत देने का अधिकार है। प्रश्न पर मत लेते समय पक्ष में कौन और विपक्ष में कौन है, यह दो बार पूछा जायगा एवं मत लिए जायँगे। मत हाथ ऊपर करके दिये जायँ।

(किन्हीं मामलों में विशेष अनुपात में बहुमत न रहे तो निर्णय वैधानिक नहीं होता। उदाहरणार्थ, म्युनिसिपल कामों से भिन्न खर्च करने के लिए कम-से-कम ५४ सभासदों की स्वीकृति मिलनी चाहिए। स्पेशल कमेटी को अधिकार देने के लिए $\frac{2}{3}$ बहुमत हो। सिटी इञ्जीनियर के समान अधिकारियों को हटाने के लिए $\frac{2}{3}$ बहुमत होना आवश्यक है।)

(४३) जिन विषयों से सभासदों का आर्थिक सम्बन्ध, कानून की धारा संख्या १६ में आए वर्णन के अनुसार हो अथवा जिस विषय के सम्बन्ध में व्यवसाय की दृष्टि से पत्रकारों की ओर से अथवा अन्य किसी की ओर से उसका सम्बन्ध प्रतीत हो तो, उस विषय की चर्चा में वह भाग नहीं ले सकता अथवा उस पर मत नहीं दे सकता।

(४४) अध्यक्ष के प्रस्ताव की स्वीकृति घोषित होने पर यदि कम-से-कम

चार सभासदों ने तत्काल मत-विभाजन की माँग न की तो रिपोर्ट में वह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ लिख लिया जायगा। और इसे पक्ष और विपक्ष में आये मतों की संख्या के निर्देश के बगैर भी प्रस्ताव के स्वीकृत होने का ठोस प्रमाण माना जायगा।

(४५) मत लेते समय अध्यक्ष उपस्थित सभासदों को दो समूहों में विभक्त होने के लिए कहेगा। मत की माँग होते ही सभा-गृह के दो छोरों पर हमेशा रखी जाने वाली टेबलों में से प्रत्येक टेबल पर एक-एक सभासदों की सूची सेक्रेटरी को रखनी चाहिए। अध्यक्ष द्वारा नियुक्त मत-गणकों के सामने सभासदों को अपने नाम के आगे हस्ताक्षर करने चाहिएँ। टेबल पर 'पक्ष में' 'विपक्ष में' लिखी हुई चिट लगानी चाहिए।

उपरोक्त रीति से हुआ मतदान नामों सहित रिपोर्ट में लिख लिया जायगा। मत न देने वाले सभासदों के नाम भी लिख लिए जायँगे। समान मत आने पर अध्यक्ष को अपना अधिक मत देना चाहिए।

(४६) निर्णीत विषयों के सम्बन्ध में निर्णय की तिथि से लेकर तीन महीने तक किसी कार प्रस्ताव नहीं लाया जा सकता।

प्रश्नोत्तर के सम्बन्ध में बम्बई नगरपालिका के नियम

(१) धारा संख्या ३६ के अधीन बनाए गए नियम के अनुसार नगरपालिका के काम-काज के बारे में कमिश्नर से प्रश्न पूछे जा सकते हैं और वह उनका उत्तर देगा।

(अ) सात दिन पूर्व सेक्रेटरी नोटिस दे और नोटिस में प्रश्न का स्पष्ट रूप से उल्लेख हो।

(ब) १. मत-प्रदर्शन करने के लिए कहने वाला, तात्विक अभिप्राय (असली राय) पूछने वाला, कानून-विषयक अथवा किसी ग्रहीत परिस्थिति को ध्यान में रखकर किया गया प्रश्न नहीं पूछा जा सकता।

२. न्यायालय में प्रविष्ट मामले से सम्बन्धित प्रश्न नहीं पूछा जा सकता।

३. उनके अधिकारी अथवा सार्वजनिक रिश्ते से असम्बन्धित प्रश्न म्युनिसिपल अधिकारी और नौकरों के सम्बन्ध में नहीं पूछा जा सकता।

४. किसी व्यक्ति अथवा जाति के विरुद्ध आरोप करने वाला प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से बदनामी करने वाला प्रश्न नहीं पूछा जा सकता।

(२) संख्या १ में बताई गई मर्यादा का अतिक्रमण करने वाला प्रश्न नगराध्यक्ष अस्वीकृत कर देगा।

(३) प्रश्न मर्यादा में है अथवा नहीं, इस सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न हो

जाने पर नगराध्यक्ष निर्णय करेगा और उसका निर्णय अन्तिम माना जायगा।

(४) नगरपालिका के हित के लिए विघातक प्रतीत होने वाले प्रश्न का कमिश्नर उत्तर नहीं देगा। इसका व्यक्तिगत विश्वास प्राप्त करने पर भी वह ऐसी जानकारी के सम्बन्ध में पूछे गए प्रश्न का उत्तर नहीं देगा।

१. केवल साधारण सभा के पहले दिन ही प्रश्न पूछे जा सकते हैं।

२. नोटिस में यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि प्रश्न किस सभा में पूछे जायँगे।

३. कोई भी सभासद् एक सभा में तीन से अधिक प्रश्न नहीं पूछ सकता।

४. जो प्रश्न उचित नोटिस द्वारा आये हों और नगराध्यक्ष ने अस्वीकृत कर दिए हों, आने के क्रम से उनकी सूची सेक्रेटरी तैयार करेगा। वह सूची प्रश्नकर्ता के नाम सहित सभासदों में फिराई जायगी।

५. निर्धारित सभा के दिन कोई चुनाव का मामला हो तो उसके हो चुकने पर, प्रश्नों के लिए अध्यक्ष सूचीगत क्रमानुसार सभासदों को बुलायगा।

६. बुलाने पर उक्त सभासद् को अपनी जगह खड़े होकर सूचीगत-क्रमानुसार प्रश्न पूछने चाहिएँ।

७. यदि प्रश्नकर्ता अनुपस्थित हो और उसने किसी को अधिकार-पत्र दिया हो, वह अधिकार-पत्र सेक्रेटरी तक पहुँच गया हो तो जिसे यह अधिकार मिला हो उसे अध्यक्ष प्रश्नों की अनुमति देगा। बुलाने पर प्रश्नकर्ता ने प्रश्न नहीं पूछा, अथवा अधिकार-पत्र द्वारा भी किसी ने नहीं पूछा तो वह समाप्त हो गया, ऐसा माना जायगा।

निम्न प्रकार के प्रश्नों को नगराध्यक्ष अस्वीकृत करेगा:—

(८) १. एक प्रश्न की चर्चा होने के बाद अथवा एक-आध विषय के सम्बन्ध में उत्तर देने के बाद तीन महीने तक उसी से सम्बन्धित श्न।

२. कमेटी के सुपुर्द मामलों का प्रश्न, यदि कमेटी की रिपोर्ट आई हो तो।

३. निष्कारण लम्बा प्रश्न।

४. विचारक, व्यंजना, अनुमान अथवा तानेबाजी शब्दावली से युक्त प्रश्न।

५. बदनामी करने वाले, अपमान-कारक अथवा अन्य किसी दृष्टि से आक्षेपजनक प्रश्न।

इस प्रकार का प्रश्न पूछा गया हो तो उपस्थित सभासदों की स्वीकृति

से रिपोर्ट में से आक्षेपजनक वस्तु को निकाल देने का अध्यक्ष को अधिकार है।

६. धारा संख्या १६ में बताए अनुसार वह प्रश्न जिसमें प्रश्नकर्ता के स्वार्थ जुड़े हों।

७. वह प्रश्न, जिसमें वर्णित वस्तु की सत्यता का उत्तरदायित्व प्रश्न-कर्त्ता न ले।

८. वह प्रश्न, जिसका उत्तर नगरपालिका अथवा कमेटी की छपी हुई रिपोर्ट में ही आ गया हो।

९. नियम संख्या ४ के अनुसार निर्मित सूची के अन्तर्गत प्रश्नों का उत्तर लिखित रूप में दिया जायगा।

१०. प्रश्नोत्तरों पर बहस नहीं होगी।

११. उत्तर दिये जाने के बाद ऐसा उपप्रश्न पूछा जा सकता है, जो उत्तर के कारण उत्पन्न हो अथवा जिससे उत्तर के विषय का स्पष्टी-करण होता हो। परन्तु उप प्रश्न यदि नियम संख्या ८ में वर्णित स्वरूप का हो तो नगराध्यक्ष अस्वीकृत कर देगा। उपप्रश्न का उत्तर मौखिक दिया जा सकता है।

१२. कमिश्नर यह कह सकता है कि उप प्रश्न का उत्तर नोटिस के बगैर नहीं दिया जा सकता। उस अवस्था में उक्त उपप्रश्न को प्रश्न मानकर उचित नोटिस देकर अगली साधारण सभा में पूछा जा सकता है।

१३. कमिश्नर को यदि यह प्रतीत हो कि उप प्रश्न का उत्तर देना नगरपालिका के हित के लिए विघातक है, तो वह उप प्रश्न का उत्तर नहीं देगा। उप प्रश्न द्वारा पूछी गई जानकारी यदि विश्वास लेकर प्राप्त हुई हो तो उसे वह नहीं बतायगा।

१४. जिस प्रश्न का उत्तर लिखित अथवा मौखिक रूप में पूरी तरह दिया जा चुका हो उसे फिर नहीं पूछा जा सकता।

१५. साधारण-सभा के पहले दिन प्रष्टव्य प्रश्नों का उत्तर, यदि कमिश्नर कहे कि तैयार नहीं है और अगली किसी भी स्थगित सभा के दिन प्रश्नकर्ता उपस्थित हो तो वह उक्त प्रश्न का उत्तर दे सकता है।

१६. प्रश्नोत्तर के लिए सिर्फ आधा घंटा दिया जायगा, वह भी चुनाव-विषयक मामले के खत्म होने के बाद तथा अन्य किसी काम-काज के शुरू होने से पहले। इस समय ऐसे जो प्रश्न बच रहेंगे वे अगली स्थगित सभा में पूछे जा सकते हैं।

१७. सेक्रेटरी सभा की रिपोर्ट में प्रश्नोत्तरों को लिख रखेगा।

बम्बई-नगरपालिका की स्थायी कमेटी के काम-काज-सम्बन्धी नियमः–

(१) सेक्रेटरी प्रत्येक सभासद् के पास कार्यक्रम भेजेगा। कोई विषय तत्का विचारणीय हो और उसके लिए सभासदों की स्वीकृति हो तो कार्यक्रम में होने पर भी उसे ले लिया जायगा। इसे छोड़कर उन्हीं मामलों पर विचा होगा जो कार्यक्रम के अन्तर्भूत हों।

(२) पिछली सभा की रिपोर्ट सभासदों में फिराई जायगी तथा उसे स्वीकृ समझा जायगा। जब तक बहुसंख्यक सभासदों की माँग न हो उसे पढ़ा नह जायगा।

(३) रिपोर्ट में कोई गलती हो और उसे सभापति की नज़र में लाया जा तो वह उसमें उचित संशोधन कर देगा और उसके बाद उस पर उसके हस्त क्षर होंगे।

(४) ऐसा कोई मामला कार्यक्रम में हो, जिसके बारे में तीन दिन का नोटि न हो, उस पर चर्चा होने से पहले यदि दो सभासद् लिखित अथवा मौखि रूप में प्रार्थना करें तो उसे अगली सभा पर डाल दिया जायगा।

(५) प्रत्येक प्रस्ताव एवं संशोधन पेश किये जाने चाहिएँ तथा उन्हें अ मोदन प्राप्त होना चाहिए।

(६) ऐसा प्रस्ताव एवं संशोधन, जिसमें किसी गड़बड़ी की संभावना हं उपद्रव से बचने के लिए विभक्त करने का अधिकार सभापति को है।

(७) कानून-विषयक एवं सभा-संचालन-विषयक प्रश्नों का निर्णय सभाप को शीघ्र करना चाहिए।

(८) सभा के सामने प्रस्ताव आने पर कोई भी सभासद् उस पर संशोध पेश कर सकता है। एक संशोधन का निर्णय होने से पूर्व दूसरा संशोधन न लाया जा सकता। विवाद को स्थगित करने का प्रस्ताव लाया जा सकता है संशोधन के स्वीकृत हो जाने पर उसी को मूल प्रस्ताव समझकर पेश कि जायगा, एवं उस पर संशोधन पेश किये जा सकते हैं।

(९) विवाद को अथवा सभा के प्रस्ताव को तत्काल प्राथमिकता जायगी।

(१०) हाथ ऊपर करके मतदान करना चाहिए। प्रश्न के पक्ष में तथा विप में इस प्रकार दो बार मतदान होगा।

(११) प्रस्ताव लाने की इच्छा वाले सभासद् को सभा वाले दिन, ज प्रस्ताव पेश करना हो, उस से दो दिन पहले नोटिस देना चाहिए।

(१२) नियम संख्या ५ को छोड़कर शेष नियम उपसमितियों पर भी लागू हैं।

(१३) उपसमितियों को चाहिए कि उन्हें जो प्रश्न सौंपे गए हों उनके बारे में रिपोर्ट तैयार करके निर्णय के लिए स्थायी समिति के पास भेजे।

(१४) उपसमिति का कोई भी सभासद्, उपसमिति की रिपोर्ट से असहमत होने की अवस्था में, अपनी भिन्न मत-पत्रिका स्थायी समिति के सामने उपस्थित कर सकता है।